MAPS-08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सार्वजनिक नीति

MAPS - 08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सार्वजनिक नीति

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

- प्रो. वी. आर. मेहता
  अध्यक्ष,पूर्व कुलपति
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- (स्व.) प्रो. इकबाल नारायण
  4क 5, जवाहर नगर जयपुर (राज.)
- प्रो. ए.पी. राणा
  से.नि. आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग
  एम.एस.विश्वविद्यालय, बडोदरा (गुजरात)
- प्रो. शांति स्वरूप
  से.नि. आचार्या एवं अध्यक्ष,राजनीतिक विज्ञान विभाग
  पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)
- प्रो. थॉमस पेंथम
  आचार्य राजनीतिक विज्ञान विभाग
  एम.एस. विश्वविद्यालय, बडोदरा (गुजरात)
- डॉ. अनाम जैतली (संयोजक)
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा
- डॉ. लीलाराम गुर्जर
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

तदनन्तर नियुक्त संकाय सदस्य-डॉ,अशोक शर्मा,डॉ. कर्ण सिंह

पाठ्यक्रम निर्माण दल

- डॉ.एच.सी. शुक्ल
  राजनीतिक विज्ञान विभाग ,
  एम.एस. विश्वविद्यालय, बडोदरा
- डॉ.(श्रीमती) दीपिका गुप्ता
  राजविज्ञान अध्ययन शाला
  विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन
- डॉ.पी.एम. कामथ
  43, रीता अपार्टमेंन्टस
  देवीदयाल रोड़ मुलून्द(पश्चिम) मुम्बई
- डॉ. (श्रीमती) वी मोहन
  रूसी अध्ययन संस्थान
  मुम्बई विश्वविद्यालय मुम्बई

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

ISBN NO- 13/978-81-8496-285-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सार्वजनिक नीति

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	भारतीय राजनीति में केन्द्र राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में आवंटित प्रथमिकताएं	8–30
2.	स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन की लोकनीति के विशिष्ट संदर्भ में प्रशासनिक सुधार	31–45
3.	भारत में विकास नीतियां: औद्योगिक और कृषिगत नीतियों के विशेष संदर्भ में	46–61
4.	भारत में उभरते हुए नीति संबंधी विषय: एकीकरण ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं निर्धनता निवारण संबंधी कार्यक्रम	62–78
5.	उपयुक्त प्रोद्योगिकी का विकास एवं प्रसारण	79–95
6.	राष्ट्रीय एकीकरण की नीतियां: सांप्रदायिक सदभावना एवं राष्ट्रीय एकीकरण के विशेष संदर्भ में	96–121
7.	परिस्थितिकी एवं पर्यावरण, प्रदूषण विरोधी क़ानूनों की बाध्यता	122–132
8.	सामाजिक रूप में पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में आरक्षण	133–148
9.	भारत में कल्याणकारी नीतियां -स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा के विशेष संदर्भ में	149–157
10.	ऊर्जा संरक्षण एंव परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का पुनर्सृजन (कोयला, बिजली एवं तेल)	158–170

इकाई-1

भारतीय राजनीति में केन्द्र राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में आवंटित प्राथमिकताएँ एवं विकास

इकाई संरचना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में तय की गई प्राथमिकताएँ

1.4 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.5 केन्द्र-राज्य सम्बन्ध संवैधानिक व्यवस्था

1.5.1 विधायी सम्बन्ध

1.5.2 प्रशासनिक सम्बन्ध

1.5.3 वित्तीय सम्बन्ध

1.5.4 न्यायिक सम्बन्ध

1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.7 केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का क्रियान्वयन

1.8 भारतीय राजनीति में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का व्यावहारिक स्वरूप: केन्द्रीयकरण

1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.10 योजनाबद्ध विकास तथा केन्द्रीयकरण

1.11 इकाई सारांश

1.12 इकाईगत अभ्यास

1.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाओगे कि :- ।

1. संविधान निर्माताओं के सामने केन्द्र-राज्य सम्बन्ध तय करते समय कौन-कौन सी. प्राथमिकताएं थी ।
2. तय की गई प्राथमिकताओं के आधार पर क्या संवैधानिक व्यवस्था निर्धारित की गई ।
3. संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा किस प्रकार के केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में तय की गई प्राथमिकताओं को क्रियान्वित किया गया।
4. भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का यथार्थ रूप क्या रहा।
5. केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाले संवैधानिक तथा गैर संवैधानिक व्याख्यों की भूमिका क्या रही है ।

1.2 प्रस्तावना

प्राचीन काल, ग्रीक कालीन राजनैतिक व्यवस्था का स्वरूप नगर-राज्य था। ये नगर-राज्य अपने स्वरूप में छोटे एवं क्षेत्र में सीमित थे । यद्यपि ये स्वायत्त थे, किन्तु बाहरी दुनिया से इनका बहुत कम सम्बन्ध था । कालान्तर में चलकर विभिन्न कारणों के फलस्वरूप एक तरफ विस्तृत भू आकार वाले विशाल राज्यों जन्म हुआ तो दूसरी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति-संतुलन की दृष्टि से छोटे राष्ट्र अपने आपको असहाय महसूस करने लगे । फलत : यह महसूस किया जाने लगा कि एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था विकसित की जाय जिसमें एक तरफ बड़े राज्यों द्वारा उत्पन्न एकीकृतता की समस्या का समाधान किया जा सके तथा दूसरी तरफ छोटे राष्ट्र मिलकर अपने आपको एक सशक्त राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध कर सकें ताकि उनके अस्तित्व को खतरा उत्पन्न न हो । इन्ही दोनों आवश्यकताओं के फलस्वरूप “संघात्मक” राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई । दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि आधुनिक विश्व में आकार में विशाल एवं अधिकांश छोटे-छोटे राज्यों में संघात्मक राजनीतिक व्यवस्था लोकप्रिय दिखाई देने लगी ।

यद्यपि विश्व की राजनीतिक व्यवस्था में अनेक राज्यों ने संघीय प्रणाली अपनाई किन्तु विश्व की संघीय प्रणालियों में "रचना" की दृष्टि से मूलभूत लिता मिलता रहा है । संघ का निर्माण प्राय दो प्रकार की शक्तियों के विभाजन की प्रक्रिया द्वारा होता दिखाई दिया है ।. अभिकेन्द्र शक्तियों द्वारा या "अपकेन्द्री शक्तियों द्वारा. अभिकेन्द्र शक्तियों द्वारा संघ का निर्माण तब होता है जब सार्वभौमिक राज्य यह अनुभव करने लग जाते है, कि ऐसे कुछ सामान्य सुरक्षात्मक, राजनीतिक, आर्थिक हित या उद्देश्य है जिन्हें पारस्परिक सहयोग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, इस तरह के संघ नीचे से निर्मित होने के कारण बातचीत, सौदेबाजी, सामंजस्य और समझौते का परिणाम होते है । अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संघ इसी प्रकार निर्मित हुए है । अमेरिका जैसा संघ ने प्रभुत्व सम्पन्न और स्वतंत्र राज्यों के बीच सामान्य महत्व के कुछ विषयों के प्रशासन के लिए किए गये स्वैच्छिक करार के परिणामस्वरूप जन्म लिया है । यहां एक तथ्य और दृष्टव्य है, अमेरिका के राज्यों का संघीय ढांचे में संगठित होना बहुत कुछ सैनिक असुरक्षा से प्रेरित था, किन्तु वर्तमान की सभी संघात्मक व्यवस्थाओं के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है । परन्तु कई बार संघ का निर्माण अपकेन्द्री शक्तियों की प्रक्रिया द्वारा भी होता है अर्थात जब कोई विशाल आकृति वाला एकात्मक राज्य अपनी राज्य शक्ति को विभिन्न राज्यों में विभक्त कर लेता हो। कनाडा और भारत का संघ इसी प्रकार स्थापित किया गया है । इस प्रकार के संघ समझौते के परिणाम नहीं होते अपितु इस प्रकार के संघ केन्द्रीय सत्ता द्वारा महसूस की गयी आवश्यकता के परिणाम होते है । जैसा कि संविधान निर्मात्री सभा में डा. अम्बेडकर ने कहा था "भारतीय संघ इसके एककों में हुए समझौते का परिणाम नहीं । है । एककों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है ब्रिटिश भारत से प्रान्तों तथा देशी राज्यों को एक साथ एकत्र कर भारतीय संघ की स्थापना की गई है । लेकिन संघ के अवयवी एककों के बीच इस उद्देश्य से कोई समझौता नहीं हुआ है बल्कि एककों तथा संघों का निर्माण संविधान सभा में एक संविधान द्वारा किया है । संविधान । द्वारा प्रदत्त अधिकारों के

अतिरिक्त राज्यों को अन्य कोई अधिकार नहीं ' है । राज्यों. को संघ से अलग होने तथा उसे समाप्त कर देने का अधिकार नहीं है ?"

स्पष्ट है कि भारतीय संघ समझौते का परिणाम नहीं है । यहां की राजनीतिक व्यवस्था एकात्मक थी जिसकी राज्य शक्ति को संघ की इकाइयों में विभक्त कर दिया गया। इस प्रकार ऐकिक प्रणाली को संघीय प्रणाली में परिवर्तित करके संविधान में शक्ति विभाजन को उल्लिखित किया गया है ।

चूंकि संघ की विशेषता यह होती है कि एक लिखित संविधान हो और उस संविधान में केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों के मध्य शक्तियों के विभाजन का स्पष्टतः : उल्लेख हो । इसलिए भारतीय संविधान में भी केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों के मध्य विधायी (संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची), वित्तीय एवं प्रशासनिक शक्तियों को विभाजित कर अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को सौंप दी गयी है । केन्द्र राज्यों के कार्यक्षेत्र का स्पष्टतः सीमांकन कर इसके साथ-साथ ही केन्द्र-राज्य सम्बन्ध सहयोग एवं सद्भावना पूर्ण रहे तथा भारत के विकास की दिशा को गति प्रदान करें । फलत : यह समझना वांछनीय हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने किन-किन प्राथमिकताओं को सामने रख कर केन्द्र राज्य सम्बन्धों का निर्धारण किया ।

1.3 केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में तय की गई प्राथमिकताएं

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का निर्धारण करते समय भारतीय संविधान निर्मात्री सभा में विस्तृत विचार विमर्श हुआ। विचार विमर्श के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने राज्यों की तुलना में "शक्तिशाली केन्द्र" को प्राथमिक माना । शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में तर्क देते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संघीय समिति के अध्यक्ष के रूप में 20 अगस्त 1947 को संविधान सभा में कहा था "हम लोग इस विचार पर एकमत है कि कमजोर केन्द्रीय सरकार जो शान्ति की स्थापना, सामान्य मामलों का समन्वय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ होगी राष्ट्र के हित में हानिकारक होगा । साथ ही यह भी स्पष्ट है कि कई विषयों पर राज्य का अधिकार होना चाहिए, राज्यों के पास भी शक्तियां होनी चाहिए, जिनका स्पष्ट उल्लेख होना आवश्यक है । ऐसी राजनीतिक व्यवस्था जिसमें राज्यों का अस्तित्व ही न हो और सम्पूर्ण शक्तियां केन्द्र में निहित हों, राजनीतिक तथा प्रशासनिक दृष्टिकोण से अप्रगतिवादी होगा । इस प्रकार संविधान निर्माता एक संघीय राज्य की स्थापना के साथ-साथ केन्द्र को शक्तिशाली बनाना चाहते थे । संविधान निर्माताओं ने केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन में केन्द्र को प्राथमिकता दी इसके अनेक कारण थे । "

1. राष्ट्रीय कांग्रेस सदा से शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में थी । डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में घोषणा की "मैं एक शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में हूँ । यह 1935 ई. के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित केन्द्र से भी शक्तिशाली होगा ।" संविधान सभा के सभी सदस्यों ने डा. अम्बेडकर के मत पर सहमति व्यक्त की ।
2. भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इतिहास से शिक्षा ली तथा भविष्य में पैदा होने वाली समस्याओं को ध्यान में रखा । भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रारम्भ से ही

पृथकतावादी प्रवृत्तियां राष्ट्रीय एकता को चुनौती देती रही है । कमजोर केन्द्रीय सज्ञा के फलस्वरूप ही आक्रमणकारी भारतीय एकता को चुनौती देते रहे साथ ही देश के विभाजन में भारत की एकता को गहरा आघात पहुंचाया व सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयवाद, भाषावाद, आदि विघटनकारी प्रवृत्तियां प्रकट होने लगी । संविधान निर्मात्री सभा में के. एम. मुंशी ने इस सम्बन्ध में कहा कि "भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण दिन वे थे जबकि देश में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार रहती थी और सर्वाधिक दु:खमय दिन उस समय होते थे जबकि केन्द्रीय शासन प्रान्तों के विरोध के फलस्वरूप नष्ट हो जाता था" । संविधान निर्माता केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के तय करते समय इतिहास से सबक लेना चाहते थे वे इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होने देना चाहते थे । अत : राष्ट्र की एकता के हित में उन्होंने केन्द्र को राज्यों की तुलना में शक्तिशाली बनाना ही उचित समझा ।

3. देशी रियासतें भी संविधान निर्माताओं के लिए जटिल समस्या थी । वे स्वायत्ता, तथा स्वतंत्रता के लिए सतत प्रयत्नशील थे । अत. उनसे सदा यह भय था कि वे कभी विद्रोह का रूप धारण कर सकते है तथा देश की एकता नष्ट कर सकते है । केवल एक शक्तिशाली केन्द्र ही इस विघटनकारी प्रवृत्ति को अवरूद्ध कर सकता है ।
4. संविधान निर्माताओं की विचारधारा, विश्व में संघात्मक व्यवस्था की वर्तमान केन्द्रीयकृत प्रवृत्ति से प्रभावित हुई । सर अल्लादी ने, सदस्यों को इस तथ्य से अवगत कराया और संविधान निर्मात्री सभा ने भी इस तथ्य को ध्यान में रखा । फलत केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक व्याख्या पर भरोसा नहीं किया गया ।

अन्त में हम कह सकते है कि उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप शक्तिशाली केन्द्र के औचित्य को उचित ठहराया गया हो साथ ही कुछ बाधाऐं दूर न हो गयी होती और कुछ सहायक प्रवृत्तियां पृष्ठ भूमि में कार्यशील न होती तो सबल केन्द्र की स्थापना न हो पाती । देश के विभाजन से और भारतीय राजनीतिक क्षेत्र से मुस्लिम लीग के हार जाने से सबल केन्द्र की स्थापित करने की सबसे बड़ी बाधा स्वयं ही हट गयी । देशी राज्यों की समाप्ति ने दूसरी बाधा का अन्त कर दिया । दूसरी ओर, ब्रिटिशकालीन भारत का स्वरूप एकात्मक था, ब्रिटिशकाल में राज्यों की तुलना में केन्द्र सशक्त था । यहां तक कि सर 1935 ई. की संघात्मक योजना के अन्तर्गत संघ काफी शक्तिशाली था । तत्कालीन शासन स्वरूप को अपनाना संविधान निर्माताओं ने सरल तथा उचित समझा।

केन्द्रीय शासन को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से संविधान में अनेक प्रावधान किये गये । शक्तियों का आवंटन केन्द्र के पक्ष में किया गया, केन्द्र को प्रशासन तथा विधि-निर्माण के सम्बन्ध में अधिक शक्ति प्रदान की गयी । राज्य-प्रशासन तथा वित्त पर केन्द्र का नियंत्रण रखा गया । मौलिक मामलों में एकरूपता लाने के लिए सम्पूर्ण देश के लिए इकहरी व्यवस्थाएं अपनायी गयीं तथा अनेक निकायों की स्थापना का प्रावधान किया गया ।

एक शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण करने में संविधान निर्माताओं का यह मंतव्य कदापि नहीं था कि राज्यों की स्थिति अधीनस्थ भाग कर दी जाये । संविधान निर्माताओं का एक शक्तिशाली केन्द्र के साथ-साथ यह स्पष्ट अभिमत भी रहा कि प्रान्तों की भी स्वतंत्रता बनी रहे

और उनकी भाषाई एकता, क्षेत्रीय स्वायत्ता तथा सांस्कृतिक एकता पर आघात न हो । फलस्वरूप संविधान निर्मात्री सभा ने कुछ ऐसे विषय तय किये, जिन पर प्रान्तीय सरकारों को कानून बनाने एवं अपने प्राप्त विशेष की विशिष्टता बनाये रखते हुये शासन संचालन कर सकें । इन विषयों को "राज्य सूची का नाम दिया गया । इस “राज्य सूची" के प्रावधान के माध्यम से यह सुनिश्चित किया गया कि राज्य सरकार अपनी क्षेत्रीय, भाषायी सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता को बनाये रख सकें ।

यह सही है कि केन्द्र राज्य सम्बन्ध निर्धारित करते समय संविधान निर्मात्री सभा की प्राथमिकता केन्द्र को मजबूत कर राष्ट्रीय एकता एवं इसके साथ क्षेत्रीय स्वायत्ता रही । किन्तु साथ ही हम देखते है कि केन्द्र राज्य सम्बन्ध तय करने में भारतीय संविधान निर्माता कुछ ऐसे प्रावधान भी बनाना चाहते थे (इसके क्रम में पृष्ठ छः से पढ़ा जाना चाहिये)

1.4 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न 1. निम्नलिखित मे से कौन-सा वाक्य असत्य है?

क. केन्द्र राज्य सम्बन्ध तय करते समय संविधान निर्माता एक सशक्त केन्द्र की स्थापना करना चाहते थे ।

ख. केन्द्र राज्य सम्बन्ध तय करते समय संविधान निर्माता सशक्त राज्यों की स्थापना के पक्ष में थे ।

ग. अभिकेन्द्र शक्तियों की प्रक्रिया द्वारा स्वायत्त सत्य संघ की स्थापना करते हैं ।

घ. संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र राज्य सम्बन्धों का स्पष्टता : प्रावधान होता है।

ताकि केन्द्र और राज्यों में पारस्परिक सहयोग और समन्वय की भावना बनी रहे, जिससे लोकहित में श्रेष्ठतर नीतियों का निर्धारण हो सके । संविधान निर्माता इस तथ्य से परिचित थे कि कुछ विषय स्थानीय महत्व के तो अवश्य होते है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उनमें सामान्य कानूनों का होना वांछनीय समझा जाता है । इसलिए संविधान निर्माताओं ने ऐसे विषयों को केन्द्र और राज्य दोनों ही के क्षेत्राधिकार में रखना उचित समझा । इसी कारण भारतीय संविधान निर्माताओं ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में अपनी प्राथमिकताएं तय करते समय कुछ सीमित क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर समरूपता भी बनाये रखने का लक्ष्य तय किया । फलत: उन्होंने "समवर्ती सूची" का भी प्रावधान रखा । समवर्ती सूची के प्रावधान के माध्यम से आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र को स्थानीय महत्व के विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार संविधान निर्माताओं ने प्रदान किया।

यहां यह मंतव्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि संविधान निर्माता राज्यों को कुछ शक्ति प्रदान कर स्वायत्त बनाने के पक्ष में थे । समवर्ती सूची के विषयों पर संवैधानिक व्यवस्था यह है कि केन्द्र और राज्य सरकारें दोनों ही कानून बना सकती है, यदि कभी केन्द्र और राज्यों के मध्य समवर्ती सूची के विषयों पर कानून निर्माण सम्बन्धी कोई विवाद उत्पन्न हो तो ऐसी स्थिति में केन्द्र का कानून ही मान्य होगा । फिर यहां संविधान निर्माताओं ने राज्यों की तुलना में केन्द्र को प्राथमिकता प्रदान की ।

1.5 केन्द्र-राज्य सम्बन्ध संवैधानिक व्यवस्था

भारतीय संघ के संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्ति आवंटन में संविधान निर्माताओं का सुझाव केन्द्र की तरफ अधिक रहा, हालांकि इसमें पारंपरिक संघीय प्रणाली के बहुत से अपवाद है, फिर भी हमारे देश के शासन के आधारभूत ढांचे के रूप में संघीय प्रणाली अपनाई है । भारतीय संविधान से प्राधिकार प्राप्त करते है । संविधान ने विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय इन सभी शक्तियों का विभाजन इनके बीच किया है । यद्यपि न्यायिक क्षेत्र में एकल व्यवस्था को अपनाया गया है फलत : हम यह कह सकते है कि राज्य केन्द्र के प्रत्यायोजित नहीं है किन्तु फिर भी केन्द्र के पास बहुत से संवैधानिक अधिकरण और युक्तियां ऐसी है जिनके द्वारा अनेकों विषयों में राज्य पर नियंत्रण किया जा सकता है । इन अपवादों के अधीन रहते हुये संविधान द्वारा आवंटित अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र है । केन्द्र और राज्य दोनों समान रूप से संघ द्वारा अधिरोपित मर्यादाओं के अधीन है । उदाहरण के लिए विधायी शक्ति का प्रयोग मूल अधिकारों द्वारा मर्यादित है ।

न तो केन्द्र (संसद) और न ही राज्य विधानमण्डल, विधिक अर्थ में "प्रभुत्व सम्बल" है। प्रत्येक की संविधान के उपबन्धों द्वारा बनाई गई परिसीमाएं है । ये उपबन्ध इनके बीच शक्तियों का वितरण करते है । इसके अतिरिक्त मूल अधिकार और कुछ अन्य विनिर्दिष्ट उपबन्ध भी कुछ विषयों में उनकी शक्ति को निर्वाचित करते है । उदाहरण के लिए अनुच्छेद 276(2) (राज्य विधानमण्डल की किसी वृत्ति पर कर अधिरोपित करने की शक्ति की सीमा) और अनुच्छेद 303 (व्यापार और वाणिज्य से संबंधित विधानमण्डल दोनों की शक्तियों की सीमा) यदि केन्द्र या राज्य विधानमण्डल में से किसी के द्वारा भी संविधान में निर्धारित प्रावधानों का उल्लंघन किया जाता है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है ।

संविधान में विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों का स्पष्टतः उल्लेख कर केन्द्र और राज्यों के मध्य आवंटन कर दिया गया है । लेकिन फिर भी आवंटन की इस प्रक्रिया में कोई विषय संविधान में लिखने से छूट गया हो तो उसके लिए संविधान निर्माताओं ने संवैधानिक व्यवस्था दी है कि वह विषय केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में होगा और उस विषय पर केन्द्र का ही कानून मान्य होगा । केन्द्र राज्य सम्बन्धों को समझने के लिए आवश्यक है कि हम संक्षेप में विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों के संवैधानिक आवंटन को अलग-अलग देखें ।

1.5.1 विधायी सम्बन्ध

भारतीय संविधान द्वारा केन्द्र तथा उसकी इकाइयों (राज्यों) में वैधानिक शक्तियों को बांटा गया है। समस्त वैधानिक मुद्दों को विस्तृत रूप देकर उनको भिन्न-2 श्रेणियों में बांटा गया है तथा अवशिष्ट शक्तियों की व्यवस्था भी की गई है । वैधानिक शक्तियों को तीन सूचियों संघीय, राज्य तथा समवर्ती सूची में बांटा गया है संघीय सूची द्वारा केन्द्र को राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर एकान्तिक शक्ति प्राप्त है संघ सूची में 99 मद या विषय ऐसे है जिन पर केन्द्र को विधी बनाने की अनन्य शक्ति है । इसके अन्तर्गत प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, बैंक सेवा, मुद्रा

संघ के शुल्क और कर है । राज्य सूची में 61 मदें या प्रविष्टियां है जिन पर विधान बनाने का अधिकार राज्य विधानमण्डल को है । इनमें लोक व्यवस्था और पुलिस, स्थानीय प्रशासन, लोक स्वास्थ्य, कृषि, वन, मात्स्यिकी, राज्य के कर और शुल्क । समवर्ती सूची केन्द्र और राज्य विधान मण्डल को 52 विषयों पर समवर्ती शक्ति प्रदान करती है । जैसे दाण्डिक, विधि और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह, संविदा, अपकृत्य न्यास, श्रम कल्याण, बीमा, आर्थिक और सामाजिक योजना।

हमारे संविधान में अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी गई है । संविधान अवशिष्ट शक्ति ऐसे विषय पर जो तीनों सूचियों में से किसी में प्रमाणित नहीं है विधि बनाने की शक्ति केन्द्र (संसद) में निहित करता है, (अनुच्छेद 248) कोई विशिष्ट विषय अवशिष्ट शक्ति के अधीन आता है या नहीं, इस बात का निर्णय न्यायालय करेंगे ।

उपर्युक्त विवेचन विधायी शक्तियों के सामान्य वितरण का वर्णन है । लेकिन कुछ अपवादित संवैधानिक परिस्थितियां ऐसी है जिनमें वितरण की उपरोक्त संवैधानिक प्रणाली निलम्बित हो जाती है और केन्द्र (संसद) की शक्ति राज्य के विषयों पर छा जाती है, जैसे राष्ट्रीय हित, अनुच्छेद 249, आपात की उद्घोषणा के अधीन अनुच्छेद 250, राज्यों के बीच करार द्वारा अनुच्छेद 252, संधियों को क्रियान्वित करने के लिए अनुच्छेद 253, राज्यों में संवैधानिक तंत्र की असफलता की उद्घोषणा के अधीन अनुच्छेद 356(1)(अ) आदि ।

1.5.2 प्रशासनिक सम्बन्ध

केन्द्र और राज्यों के बीच कार्यपालिका शक्ति का वितरण विधायी शक्तियों के वितरण की अपेक्षा जटिल है ।

1. साधारणतया यह वितरण विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम का अनुसरण करता है । परिणामस्वरूप राज्य की कार्यपालिका शक्ति मुख्यतया विधायी शक्ति के समान विस्तारवान है, इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उसके अपने राज्य क्षेत्र पर होगा और ऐसे विषयों की बाबत होगा जिन पर उसकी विधायी क्षमता है (अनुच्छेद 162) इसके विपरीत केन्द्र की निम्नलिखित विषयों पर अनन्य कार्यपालिका शक्ति होगी - (क) उन विषयों पर जिनकी बाबत संसद को विधि बनाने की अनन्य शक्ति है (अर्थात् 7वीं अनुसूची की सूची । के विषय) और (ख) किसी संधि या करार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग (अनुच्छेद 73) दूसरी ओर राज्य को सूची 2 में सम्मिलित सभी विषयों पर विधायी शक्तियां होंगी (अनुच्छेद 162) ।
2. समवर्ती क्षेत्र में वितरण के सम्बन्ध में कुछ नवीनता है । समवर्ती विधायी सूची अर्थात् (सूची 3) में सम्मिलित विधायी शक्ति की बाबत सामान्यतया कार्यपालिका शक्ति राज्यों को होगी किन्तु संविधान या संसद की किसी विधि के केन्द्र को अभिव्यक्त रूप से ऐसे कृत्य प्रदत्त करने वाले उपबन्धों के अधीन रहते हुए ही राज्यों की शक्ति मिलेगी । भारत शासन अधिनियम 1953 के अधीन केन्द्र को प्रान्तीय कार्यपालिका को समवर्ती विषय से सम्बन्धित केन्द्रीय विधि के क्रियान्वयन के लिए निर्देश देने की शक्ति थी किन्तु निर्देश

देने की यह शक्ति निष्प्रभावी साबित हुई । इसलिए संविधान में यह उपबन्ध किया गया कि केन्द्र यदि ठीक समझे तो समवर्ती विषयों से सम्बन्धित केन्द्र की विधि का प्रशासन स्वयं कर सकेगा ।

परिणामस्वरूप समवर्ती विषयों से सम्बन्धित कार्य-पालिका शक्ति राज्यों के पास ई इसके दो अपवाद है ।

(क) जहां स्पष्ट रूप से यह निर्देशित कर दिया गया हो कि इसके क्रियान्वयन की शक्ति केन्द्र के पास होगी उदाहरणार्थ भूमि अर्जन अधिनियम 1894, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 । इन केन्द्र विधियों में विनिर्दिष्ट कृत्यों की बाबत कार्यपालिका शक्ति केन्द्र को होगी, राज्यों को नहीं । अन्य विषयों की बाबत कार्यपालिका शक्ति राज्यों को ही होगी ।

(ख) जहां संविधान के उपबन्ध कोई कार्यपालिका कृत्य केन्द्र को! सौंपते है जैसे -

1. किसी संधि या अन्तर्राष्ट्रीय करार को क्रियान्वित करने की कार्यपालिका की शक्ति अनन्यत: केन्द्र को है चाहे वह विषय केन्द्र राज्य या' समवर्ती सूची में हो (अनुच्छेद 73)(1) (ख) ।
2. केन्द्र को अपनी कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कुछ विषयों में राज्य सरकार को निर्देश देने की शक्ति है, ये विषय है -

सामान्यकाल में :

(क) उस राज्य में लागू केन्द्र विधि और विद्यमान विधियों के सम्यक अनुपालक को सुनिश्चित करने के लिए (अनुच्छेद 226)।

(ख) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करता है-(अनुच्छेद 257)(1)।

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार साधनों का राज्य द्वारा निर्माण किया जाएगा और उन्हें बनाए रखा जायेगा (अनुच्छेद 257)(2)।

(घ) राज्य के भीतर रेलों का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए (अनुच्छेद 257)(3)।

(ङ) निर्देशों में विनिर्दिष्ट ऐसी स्कीमों के बनाने और निष्पादन के लिए जो राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवश्यक समझें (अनुच्छेद 339)(9)।

(च) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं सुनिश्चित करने के लिए (अनुच्छेद 350)(क)।

(छ) हिन्दी भाषा का विकास सुनिश्चित करने के लिए (अनुच्छेद 351)।

(ज) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलायी जाए (अनुच्छेद 355)।

आपातकाल में :

(क) आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संघ की शक्ति का विस्तार यह निर्देश देने के लिए भी किया जाता है कि किस प्रकार किस विषय के सम्बन्ध में राज्य की कार्यपालिका शक्ति का

प्रयोग किया जायेगा। (अनुच्छेद 353)(क)। जिससे राज्य सरकार को निलम्बित किये बिना पूर्णत: संघ के नियंत्रण में ले आया जाता है।

(ख) राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा पर राष्ट्रपति राज्य की समस्त या किन्हीं कार्यपालिका शक्तियों को अपने हाथ में ले सकेगा (अनुच्छेद 356)(1)।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा के दौरान :

(1) वित्तीय औचित्य सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करने के लिए जो निर्देशों के अनुसार विनिर्दिष्ट किया जाये (अनुच्छेद 360)(3)।

(2) राज्य के कार्यकलाप के सम्बन्ध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों के जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी है वेतनों और भलों में कमी करने के लिए (अनुच्छेद 360)(4)(ख)।

(3) विधायी शक्तियों के बारे में केन्द्र (अनुच्छेद 252 को छोड़कर) और राज्यों को पारस्परिक सहमति से एक दूसरे की अनन्य अधिकारिता का अतिक्रमण करने की क्षमता नही है, किन्तु यह कार्यपालिका शक्ति के बारे में सम्भव हो सकता है जैसे किसी राज्य की सरकार की सहमति से केन्द्र किसी विषय से सम्बन्धित अपने कार्यपालिका कृत्य ऐसे राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को साँप सकता है (अनुच्छेद 258)(1)। इसके विपरीत केन्द्र सरकार की सहमति से राज्य सरकार उसे अपने कार्यपालिका कृत्य सौंप सकती है (अनुच्छेद 258)(क)।

(4) (अनुच्छेद 258)(2) के अधीन संसद द्वारा केन्द्र के विषय में बनाई गई विधि, केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत कर सकती है कि वह सरकार अपने कार्य या कृत्य राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को उसकी सम्मति लिए बिना भी प्रत्यायोजित कर दे।

1.5.3 वित्तीय सम्बन्ध

देश के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के पास पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन हों जिससे वे संविधान द्वारा आवंटित अपने- अपने उत्तरदायित्वों का सुचारू रूप से पालन कर सकें । सत्य तो यह है कि राज्यों के विधायी और प्रशासनिक अधिकारों के सफलतापूर्वक संचालन के लिए उनकी वित्तीय आत्मनिर्भरता - अत्यन्त आवश्यक है । भारतीय संविधान में भी केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय स्रोतों का आवंटन किया गया है यह आवंटन भारतीय सरकार अधिनियम 1935 की पद्धति के आधार पर किया गया है ।

1. सामान्य काल में -

भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय स्रोतों के वितरण की व्यवस्था की गई है। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर लगाये गये करों को राज्य एकत्रित करके अपने पास रख लेते है जबकि संघ सूची में वर्णित विषयों पर लगे करों में से कुछ केन्द्र अपने पास रखता है तथा कुछ करों को पूर्णत: या आशिक रूप से राज्यों में वितरित कर दिया

जाता है। संविधान में ऐसे चार प्रकार के करों का उल्लेख है जिन्हें पूर्णत: या आशिक रूप से राज्यों में वितरित किया जाता है -

(क) केन्द्र द्वारा लगाये जाने वाले किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहीत किये जाने वाले शुल्क (अनुच्छेद 268)

(ख) केन्द्र द्वारा लगाये और संग्रहीत किये जाने वाले किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर (अनुच्छेद 269)

(ग) केन्द्र द्वारा लगाये और संग्रहीत किये जा कर केन्द्र और राज्यों के मध्य वितरित किये जाने वाले कर (अनुच्छेद 270)

(घ) केन्द्र द्वारा संघीय उत्पादन शुल्कों का वितरण (अनुच्छेद 272)

2. राज्यों को केन्द्र से अनुमान -

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 265 यह उपबन्ध करता है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई भी कर लगाया या एकत्रित नहीं किया जा सकेगा। राज्यों के अपने कर्तव्यों पूर्ति में यदि धनाभाव का सामना करना पड़े तो ऐसी परिस्थिति में भारतीय संविधान में व्यवस्था दी गई है कि केन्द्र राज्यों को अनुदान प्रदान करे। अनुच्छेद 273 (पटसन व पटसन से बनी चीजों पर निर्यात-शुल्क के बदले अनुदान), अनुच्छेद 275 (उन राज्यों को जिन्हें संसद के अनुसार अनुदान की आवश्यकता है, विधि द्वारा निर्धारित कर उन्हें अनुदान) तथा अनुच्छेद 282 (सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए संघ या राज्य दोनों द्वारा अनुदान दिया जाता) आदि में अनुदान की व्यवस्था की गई है।

इनके अतिरिक्त अनुच्छेद 286 के अधीन राज्य सरकार की कर लगाने की शक्ति पर अनेक प्रतिबन्ध लगायें गये है। अनुच्छेद 285 केन्द्र की सम्पत्ति को राज्य के करों से विमुक्ति अनुच्छेद 287 व 259 राज्यों को केन्द्र पर विद्युत कर पर निषेध तथा अनुच्छेद 289 राज्य सम्पत्ति या आय को केन्द्रीय करों से विमुक्ति की व्यवस्था करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 292 केन्द्र द्वारा लेने तथा अनुच्छेद 293 राज्यों द्वारा उधार लेने की व्यवस्था करते है। अन्त में अनुच्छेद 294 से 300 केन्द्र और राज्यों से सम्बन्धित संपत्ति संविदाएं अधिकार दायित्व तथा अनुच्छेद 301 से 307 भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर व्यापार और वाणिज्य के उपबन्ध करते है।

अनुच्छेद 270,273,275,280 और 281 राष्ट्रपति द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय स्रोतों के वितरण से सम्बन्धित उपायों को सुझाने हेतु वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था करते है, उदाहरणार्थ आय कर का कितना प्रतिशत केन्द्र द्वारा राज्यों को दिया जाना चाहिए तथा राज्यों के बीच किस विधि से वितरित किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 280(3) के अनुसार आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि वह -,

(क) संघ तथा राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगम का जो इस अध्याय (संविधान का भाग 12 अध्याय 1 वित्त) के अधीन उनमें विभाजित होता है या होना है के बारे में तथा राज्यों के बीच ऐसे आगम के तत्सम्बन्धी अंशों के बोर में

(ख) भारत संचित निधि में से राज्य के राजस्वों के लिए सहायक अनुदान देने में पालनीय सिद्धान्तों के बारे में।

(ग) ठोस वित्तीय व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गए किसी अन्य विषय के बारे मैं।

आपात काल मे -

विधायी और प्रशासकीय क्षेत्रों की भांति ही वित्तीय मामलों में भी केन्द्र और राज्यों के बीच सामान्य सम्बन्ध आपात काल में परिवर्तित हो जाते है -

(क) जब अनुच्छेद 352(1) के अन्तर्गत आपात उद्घोषणा प्रवर्तन में है, राष्ट्रपति अनुच्छेद 354 के अन्तर्गत आदेश द्वारा निर्देश दे सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 268 से 279 तक (राजस्व के वितरण, कर व अनुदान सम्बन्धी अनुच्छेद) सभी या कोई एक उपबन्ध एक वित्तीय वर्ष की समाप्ति से अधिक नहीं तक की अवधि के लिए निलम्बित रहेंगे । अत : ऐसे आदेश के बाद राज्य भाग राज्य सूची के अन्तर्गत प्राप्त राजस्व तक ही सीमित हो जायेंगे अर्थात् केन्द्र से सहयोग निलम्बित हो जायेगा ।

(ख) यदि अनुच्छेद 360(1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपात की घोषणा की जाती है, तो केन्द्र राज्यों को जो निर्देश दे । उसके अन्तर्गत -

1. राज्य वित्तीय औचित्य सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करें जैसे कि निर्देशों में उल्लिखित हो, वाले निर्देश,
2. राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों सहित के वेतन और भत्तों में कमी वाले निर्देश।,
3. समस्त धन विधेयकों अथवा अन्य विधेयकों को ।। अनुच्छेद 207 के उपबन्ध लागू है, राज्य के विधान मण्डल के उनके पारित किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित करने वाले निर्देश शामिल है ।

1.5.4 न्यायिक सम्बन्ध

भारतीय संविधान में अनेक संघीय शासन प्रणालियों की न्यायिक व्यवस्था के विपरीत देश में एकल न्यायिक व्यवस्था की स्थापना की है । इस एकल न्यायिक व्यवस्था ने भारत में न्यायिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी एकता स्थापित की है, साथ ही समूचे देश के लिए एकल न्यायिक संवर्ग (   ) की भी स्थापना कर दी है । राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है राज्यों के आपसी विवादों का निपटारा भी उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है।

उच्चतम न्यायालय को अधिकार है कि वह राज्य के उच्च न्यायालयों को समय-समय निर्देश दें । उच्चतम न्यायालय के निर्णय नजीरों के रूप में राजकीय न्यायालयों द्वारा प्रयोग में लाये जाते है । उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को लागू करना राजकीय अधिकारियों का

संवैधानिक कर्त्तव्य है । सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया एक लेख समूचे देश में और विधि के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है ।

केन्द्र राज्य सम्बन्धों के विवेचन से स्पष्ट है कि विधायी, प्रशासनिक, वित्तीय और न्यायिक सभी क्षेत्रों में राज्यों की तुलना में केन्द्र को बहुत अधिक अधिकार प्रदान किए गये है । भारतीय शासन-व्यवस्था की सामान्य प्रकृति के अनुकूल ही संविधानिक उपबन्धों की योजना हुई है । राज्यों को केन्द्र का नेतृत्व स्वीकार झरना पड़ता है और केन्द्र को आदेशों का पालन भी करना पड़ता है । इन्हीं कारणों ' के फलस्वरूप के. सी. व्हीयर ने अपनी पुस्तक "फैडरल गवर्नमेन्ट" में माना है कि भारतीय संघ एक पूर्ण संघ न होकर, अर्द्ध संघ की स्थिति में आता है । के. सी. व्हीयर के अनुसार भारतीय संघ उन सभी संवैधानिक आधारों को पूरा नहीं करता है जो संघात्मक शासन व्यवस्था के लिए आवश्यक होते है । केन्द्र सूची में अधिक महत्वपूर्ण विषयों. का होना, राज्य सूची के विषयों पर प्रावधानों के तहत केन्द्र को कानून बनाने का अधिकार, समवर्ती सूची में केन्द्र और राज्यों के मध्य विवाद के समय केन्द्र का कानून प्रभावी होना, अवशिष्ट शक्तियों को केन्द्र को प्रदान किया जाना आदि ऐसे संवैधानिक प्रावधान है जो कि भारतीय व्यवस्था को संघात्मक व्यवस्था से दूर कर देते है । अत : के. सी. व्हीयर ने कहा हैं कि भारतीय संघ एक पूर्ण संघ न होकर अर्द्ध संघ की स्थिति में आता है । चाहे यहां केन्द्र के पास कितनी भी अधिक शक्तियां क्यों न हो लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी हो गयी है यहां बहुत सी ऐसी संवैधानिक व्यवस्थाएं है जो राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है केन्द्र तथा राज्यो में सहयोग और समन्वय का वातावरण उत्पन्न कर संघर्ष या मुकदमेबाजी के अवसर की बहुत कम गुंजाइश छोड़ती है । दूसरी तरफ कुछ ऐसे विचारक है जो भारत को पूर्ण संघ की स्थिति का दर्जा देते है । इनमें हम अलेक्जेन्ड्रोविज को ले सकते है । अलेक्जेन्ड्रोविज ने के. सी. व्हीयर से पूर्णत : मिल मान्यता अपनाते हुए कहा है कि अगर संघात्मक व्यवस्था की परिभाषा एवं विशेषताओं के आधार पर हम भारतीय संघ का मूल्यांकन करते है तो यह पूर्ण संघ की स्थिति का द्योतक है । किन्तु हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि के. सी. व्हीयर तथा अलेक्केड्रोविच दोनों ही अतिवादी स्थिति का विवेचन करते है । भारतीय व्यवस्था में केन्द्र राज्य सम्बन्धों का मूल्यांकन करते है तो हम पाते है कि न तो भारतीय संघ 'अर्ध संघ" की स्थिति में है और न ही "पूर्ण संघ. की स्थिति में केन्द्र राज्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय व्यवस्था की प्रकृति एवं उसके निर्धारक कारकों का विवेचन आगे करने का प्रयास करेंगे ।

1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न 2.1 निम्मलिखित में से कौन-सी पुस्तक के. सी. हीपर की है?

क. द इण्डियन कांस्टीट्यूशन : कार्नर स्टोन ऑफ ए नेशन।

ख. गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स इन इण्डिया ।

ग. फैडरल गवर्नमेन्ट।

घ. पॅलिटिक्स इन इण्डिया ।

उत्तर...

प्रश्न 2.2 निम्मलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए ।

प्रश्न 2.2 अ क्या भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों को स्पष्टतः बाँटा गया है ।

प्रश्न 2.2 ब समवर्ती सूची के बनाये गये विषय पर केन्द्र एवं राज्य के कानूनों मैं टकराव होता ' है तो केन्द्र का कानून मान्य होगा ।

प्रश्न 2.2 स "मुद्रा एवं बैंकिंग सेवा" राज्य सूची का विषय है ।

1.7 केन्द्र-राज्य सम्बंधों का क्रियान्वयन

प्रबल रूप से शक्ति सम्पन्न होने के बावजूद केन्द्र ने संविधान प्रदत्त अपने अधिकारों का दुरूपयोग नहीं किया है, उदाहरणार्थ संविधान में शक्तियों के वितरण में राज्यों की तुलना में केन्द्र को अधिक शक्तियां प्राप्त है । और योजना आयोग जैसे शक्तिशाली गैर संविधानात्मक माध्यमों द्वारा भी केन्द्र राज्यों पर अपना प्रभाव जमाए रखता है । यद्यपि यह आरोप अतिशयोक्तिपूर्ण है कि राज्यों की स्थिति अधीनस्थ मात्र होकर रह गई है । संघात्मक शासन व्यवस्था में शक्तियों का केन्द्रीयकरण होना अथवा केन्द्र का राज्य सरकारों की अपेक्षा अधिक सशक्त होना कोई नई बात नहीं है ।

भारतीय संविधान के केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर अब तक के क्रियान्वयन पर दृष्टि डाले तो व्यवहार में आपात शक्तियों के प्रयोग में अथवा विधायी प्रशासनिक और वित्तीय सम्बन्धों के क्षेत्र में राज्यों पर छा जाने की प्रवृत्ति केन्द्र में कभी नहीं रही है, अधिकांशत. राज्य केन्द्र की नीति को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करते रहे है, केन्द्र महत्वपूर्ण मसलों पर राज्यों के परामर्श को महत्व देता रहा है और सदैव यही प्रयास रहा है कि प्रत्येक राज्य को अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता से कार्य करने का अवसर मिलता रहे । जुलाई-सितम्बर, 1977 के "इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एड्मिनिसट्रेशन में पी. के. दवे ने अपने एक लेख में नीति निर्माण के क्षेत्र में केन्द्र राज्यों सम्बन्धों का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा था कि "केन्द्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर नीति-निर्माण के प्रश्न राजनीति निर्धारण के प्रश्न रहेंगे । किन्तु यह भी सही है कि नीति और प्रशासन में किसी भी एक की महत्ता कम नहीं की जा सकती । जैसे-जैसे सरकार अधिक जटिल बनती जा रही है, वैसे-वैसे ही नीति निर्माण की प्रक्रिया में उसका प्रशासनिक महत्व उतना ही बढ़ रहा है । " इस लेख द्वारा इस बात पर बल दिया गया था कि नीति निर्माण की प्रक्रिया में संगठित, सौद्देश्य और सहयोगात्मक साझेदारी की आवश्यकता यथा समय पहुंचाई जाये यह सब बाते केन्द्र और राज्य दोनों के स्तरों पर सरकारी अधिकारियों और विशेषज्ञों को समझनी होगीं । विधायी प्रशासनिक और वित्तीय तीनों क्षेत्रों में केन्द्र । की भूमिका नेतृत्व की भूमिका है और उसके परामर्श को उसी सीमा तक माना जाएगा तथा राज्यों से उसे उतना ही सहयोग प्राप्त हो सकेगा जिस सीमा तक वह अपनी इस नेतृत्व की भूमिका को प्रभावशाली ढंग से पूरा करता है ।

मोरिश जोन्स ने भारतीय संघ को सौदेबाजी पर आधारित संघ की संज्ञा दी है । मोरिशजोन्स ने लिखा है कि भारतीय संघात्मक व्यवस्था की प्रकृति केन्द्र और राज्यों की पारस्परिक सौदेबाजी की क्षमता पर निर्भर करती है । अगर केन्द्र शक्तिशाली है और कोई

विशिष्ट राज्य केन्द्र से सौदेबाजी करने में सक्षम नहीं है तो वही राज्य की स्थिति गौण रहती है । किन्तु अगर कोई राज्य केन्द्र से सौदेबाजी करने में सक्षम है तो वह न केवल अपने सभी कार्य केन्द्र के सम्मुख काफी मजबूत दिखाई देती है । उदाहरण के लिये प्रताप सिंह केरों के मुख्यमंत्री काल का पंजाब, मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्री काल का राजस्थान, सी. दी. गुप्ता के मुख्यमंत्री काल का उत्तर प्रदेश, बी.सी. राय के मुख्यमंत्री काल का पश्चिमी बंगाल केन्द्र से सौदेबाजी करने में काफी सक्षम था । अत : यह कहना कि भारतीय संघात्मक व्यवस्था मैं केन्द्र शक्तिशाली है और राज्य की स्थिति गौण है असत्य है । यह तो उस विशिष्ट राज्य की केन्द्र से सौदेबाजी करने की क्षमता पर निर्भर करता है ।

आपात शक्तियों के प्रयोग को लें तो राज्यों में राष्ट्रपति ने आपात स्थिति की घोषणा प्राय तभी की है जब सम्बन्धित राज्यपाल ने राज्य में संविधानिक तंत्र की असफलता का प्रतिवेदन उन्हें प्रस्तुत किया हो और यह स्थिति भी केवल राज्य में कानून और व्यवस्था के हालात पुन : पैदा न हो जाने तक ही चली है । यह अवश्य है कि कुछ अवसरों पर अनुच्छेद 356 का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया गया है जो केन्द्र और राज्यों तथा सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दलों के बीच तनाव का कारण बना है ।

विधायी सम्बन्धों को यदि हम देखें तो संसद की स्थिति यद्यपि प्रधानता की है और राज्य विधान सभाओं की विधायी शक्तियां मर्यादित है, फिर भी बहुत कम स्थितियों में केन्द्र ने राज्यों द्वारा उसकी अनुमति के लिए आए विधेयक को अस्वीकार किया है । राज्य सूची के विषयों में केन्द्र ने अनावश्यक हस्तक्षेप कभी नहीं किया और यदि कभी किया है तो भी राज्य सरकारों को अपने विश्वास में लेकर ही किया है । राज्य सरकारों के वे ही अधिनियम प्राय : निष्प्रभावी हुए है जो केन्द्रीय विधि से टकराते हों । न्यायपालिका ने अपने निष्पक्ष निर्णयों द्वारा सांविधानिक प्रावधानों की सदैव रक्षा की है । "बम्बई राज्य बना वासरा" के वाद में बम्बई मद्यनिषेद्य अधिनियम की साविधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह संघ सूची में वर्णित विषय "मादक द्रव्यों के आयात-निर्यात पर अतिक्रमण करता है लेकिन उच्चतम न्यायालय में अधिनियम को वैध ठहराया और कहा कि अधिनियम का मुख्य उद्देश्य राज्य सूची के विषय से सम्बन्धित है, संघ सूची से नहीं । यहां यह भी दृष्टव्य है कि महत्वपूर्ण विधायी मामलों में केन्द्रीय सरकार मुख्य मंत्रियों से प्राय : परामर्श करती रही है ।

प्रशासनिक सम्बन्धों के संदर्भ में भी हम यही पाते है कि केन्द्र में संविधान प्रदत्त अपने प्रभुत्व क्षेत्र का उल्लंधन करने की प्रवृत्ति नहीं रही है संघात्मक शासन व्यवस्था की शक्ति और सफलता केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकतम सहयोग और समन्वय पर निर्भर है और भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांशत. दोनों ही सरकारों ने अपने सम्बन्धों का कुशल समायोजन किया है । संविधान में केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक कर्त्तव्य सौंपे है और देश में शान्ति तथा व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुख्यत : केन्द्रीय सरकार पर है तो भी केन्द्र राज्यों पर अपना नियंत्रण थोपने की स्थिति से सदैव बचता रहा है । आपातकालीन स्थिति में राज्य सरकार जब पूरी तरह केन्द्रीय सरकार के अधीन कार्य करती है तो भी केन्द्रीय सरकर ऐसी स्थिति को प्राय टालती रही है कि राज्य सरकार के महत्व का लोप हो जाए । संविधान प्रदत्त शक्तियों के अधीन रहते हुए केन्द्र राज्यों को निर्देश दे सकता है, संघीय कार्यो

को राज्यों को सौंप सकता है, अखिल भारतीय लोक सेवाओं की व्यवस्था करता है केन्द्रीय अनुदान देता है, पर इन सब बातों के बावजूद उसमें यथासम्भव राज्यों की इच्छाओं का, राज्यों की स्वायत्ता का आदर किया है । अखिल भारतीय सेवाओं का उपयोग भारतीय एकता के हित में होता है । अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी राज्यों में उच्च पदों पर आसीन रहकर राज्य सरकार के प्रति पूरी निष्ठा से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते है और वह भी इस कुशलता के साथ कि 'ऐसे बहुत कम अवसर आये है जबकि उनकी अखिल भारतीय निष्ठा और किसी राज्य सरकार के प्रति निष्ठा में विरोध उत्पन्न हुआ तो जैसा कि 1967 में बंगाल में संयुक्त मंत्रिमण्डल में मतभेद होने पर उत्पन्न अस्पष्ट स्थिति में हुआ है ।" संविधान ने केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच मतभेदों को सुलझाने के लिए कुछ उपाय सुझाए है जो लोकतांत्रिक भावना के अनुकूल है । उदाहरणार्थ अन्तर्राज्यीय परिषद का प्रावधान अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत है जो राज्यों के परस्पर अथवा राज्य और केन्द्र के पारस्परिक विवादों पर विचार विमर्श करती है, क्षेत्रीय परिषदों में केन्द्र सरकार का गृह मंत्री, राज्य का मुख्यमंत्री और सम्बन्धित राज्य के राजपाल द्वारा मनोनीत दो अन्य मंत्री होते है ।

वित्तीय सम्बन्धों के क्षेत्र में केन्द्र प्रारम्भ से ही राज्यों को विभिन्न प्रकार से सहायता और सहयोग देता रहा है केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान देती रही है, तथापि उसकी भी अपनी सीमाऐं है । प्रति पाँचवें वर्ष वित्त आयोग की नियुक्ति की जाती है जो केन्द्र और राज्यों में विभाजित होने वाले करों से प्राप्त आय, केन्द्रीय अनुदान की राशि आदि के बारे में सिफारिशें करता है । राज्यों की प्राय यह शिकायत रही है कि केन्द्र पर उनकी वित्तीय निर्भरता बढ़ती जा रही है । अथवा राज्य की आवश्यकता के अनुरूप केन्द्रीय अनुदान नहीं मिल पाता आदि । लेकिन केन्द्र को सभी वित्तीय कदम राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर उठाने पड़ते है । केन्द्र के बार-बार आग्रह के बावजूद राज्यों के ग्रामीण क्षेत्र से अपने राजस्व साधन बढ़ाने में उदासीनता दिखाई है और साथ ही उनकी प्रवृत्ति अपने अनुत्पादक खर्चे को बहुत अधिक बढ़ाने की रही है । केन्द्र सरकार ने अपनी शक्तियों के प्रयोग में मनमानी नहीं को है - इसका ज्वलंत प्रभाव यही है कि देश में अभी तक किसी राज्य में कभी वित्तीय आपात की स्थिति लागू नहीं की गई है । केन्द्र वित्तीय क्षेत्र में राज्यों के प्रति निरन्तर उदार होता जा रहा है - इसका ज्वलंत प्रमाण सातवें और आठवें वित आयोग की वितीय सिफारिशें है ।

1.8 भारतीय राजनीति में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का व्यावहारिक स्वरूप: केन्द्रीयकरण

भारत में राजनीतिक व्यवस्था का व्यावहारिक रूप (अथवा समाज में संवैधानिक व्यवस्था) इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता है कि समाज में लिखित संविधान अथवा सामान्य कानूनी ढांचा बचा है, अपितु देश में पनप रहे उन अनेक सामाजिक. तथा आर्थिक कारणों पर होता है जो राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करते है । उन कारकों में राजनीतिक दल एक महत्वपूर्ण कारक है । क्योंकि भारत में कांग्रेस राजनीतिक दल का प्रभुत्व रहा है, इसलिए केन्द्र को विशेष रूप देने में कांग्रेस के प्रभाव की सहायक भूमिका रहा है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् कांग्रेस राजनीतिक दल ने सत्ता में आकर अपनी नीतियों को कार्यरूप देने तथा शासकीय अभिजात वर्ग की स्थिति को बचाए रखने के लिए शक्तिशाली केन्द्र का समर्थन किया। ऐसा लगता है कि कांग्रेस को संविधान में उपबन्धित केन्द्रीकृत संघ की व्यवस्था अपूर्ण तथा अपर्याप्त लगी. तभी तो उसने अपनी शक्तियों को सही तथा गलत तरीकों से बढ़ना आरम्भ कर दिया । इस सम्बन्ध में दो दिशाओं से प्रयास किए गए : - एक, जहां तक सम्भव हो सके राज्य में कांग्रेस दल का प्रभुत्व रहे दूसरा कांग्रेस ' दल मैं केन्द्रीय नेतृत्व की शक्ति को सुदृढ़ बनाए रखा जाए । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक तथा. अतिरिक्त संवैधानिक तरीका को अपनाने का. प्रयास भी कांग्रेस द्वारा किया है जिन तरीकों में राज्यपाल के पद तथा राष्ट्रपतियों की शक्तियों का प्रयोग भी सम्मिलित है । कुछेक उदाहरण इस तथ्य की, पुष्टि करते हैं ।

1952 के चुनावों के पश्चात् कुछ राज्यों जैसे ट्रावंकोर-कोचीन, मद्रास, तथा पैपसू में कांग्रेस अल्पमत में आ गई. उनमें सम्बन्धित राज्यपालों तथा राज प्रमुखों की सहायता से केन्द्र की कांग्रेसी सरकार ने गैर-कांग्रेसी सरकारें बनाने में बाधा अली और यदि ऐसा गैर कांग्रेसी सरकारें: बन भी गई तो उन्हें शीघ्र (जैसे कि पैपसू में) पदच्युत करने का. प्रयास किया गया । बाद में 1957 में जब केरल में -यम गैर कांग्रेसी सकार बनी तो कांग्रेस ने अन्दर से सीधी कार्यवाही तथा बाहर से हस्तक्षेप से तरीकों से ऐसा सरकार को हटाने के यत्न किये थे । 1957 में ही उडीसा में भी स्थिति कुछ ऐसी ही थी 1957 के चुनावों में कांग्रेस उड़ीसा में बहुमत तो प्राप्त न कर सकी परन्तु वह विधानमण्डल गे सबसे अधिक सदस्यों गरमा दल अवश्य था । झारखण्ड दल तथा अन्य स्वतंत्र सदस्यों की सहायता से कांग्रेस सरकार बनाने में सफल रही आठ स्वतंत्र दल के सदस्यों तथा एक साम्यवादी दल के सदस्यों ने कांग्रेस को समर्थन देने के लिए अपना दल छोड़ दिया । फिर दल बदलने का क्रम ऐसे आरम्भ हुआ जो कि अन्य दलों के समर्थन पर बनी सरकार अपना -बहुमत खो' बैठो मंत्रीमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया । परन्तु राजपाल ने त्यागपत्र स्वीकार नही किया । और कांग्रेस दल की सरकार बनी रही । तत्पश्चात् विधान सभा मे भी कांग्रेसी मंत्रीमण्डल पराजित हुआ। परन्तु फिर भी त्यागपत्र नहीं दिया । मंत्रीमण्डल अस्थिरता तब जाकर समाप्त हुई कि जब. अप्रैल 1959 में गुटबन्दी के फलस्वरूप कांग्रेस तथा गणतंत्र परिषद में मिलीजुली सरकार बनाई थी।

इसके बाद 1967 तक, मध्यप्रदेश की मंत्रीमण्डलीय अस्थिरता को छोडकर कांग्रेस का सभी राज्यों पर अधिपत्य रहा । इस समय तक समस्याओं तथा उनके 'समाधानों की रुपरेखा स्पष्ट तो चुकी थी कांग्रेस के अन्दर राज्यों की दलीय इकाइयों को गरिमा प्रदान करने तथा बाहर प्रतिक्रियावादी 'दलों का प्राथमिकता तथा क्रान्तिकारी दलों के साथ गठजोड़ करने के प्रयास किये जाने लगे इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दलबन्दी, दल बदलने तथा संवैधानिक यंत्र की विफलता की घोषणा जैसे साधनों को: अपनाया जानें लगा 1967 के चुनावों में कांग्रेस की हार से 1967-72 के बीच केन्द्र राज्य सम्बन्धों में काफी तनाव आया कुछ के राज्यों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हुआ था क्योंकि कांग्रेस को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत मिल गया था । इसलिए ऐसा समझा जाने लगा कि चुनौतियां क्षेत्रीय दलों की हैं जो देश के स्तर पर गठजोड़

नहीं बना पायेंगी । अखिल भारतीय स्तर पर क्षेत्रीय दलों के गठजोड़ के अभाव तथा कांग्रेस के विरूद्ध राष्ट्रीय विकल्प के अभाव का कांग्रेस ने खूब लाभ उठाया और राज्यों में गैर 'कांग्रेसी सरकारों को हटाने तथा कांग्रेसों सरकारों के बनाने का हर सम्भव यत्न किया । केवल तमिलनाडु में डी. एम. के. ही गैर कांग्रेसी सरकार बनाये रखने में सफल रही । राज्यपाल के पद का भरपूर लाभ उठाया गया । कुछ के राज्यपालों को छोडकर शेष सभी कांग्रेस दल के सदस्य रह चुके है जो या तो चुनाव हार चुके थे या ऐसे राजनीतिक थे जिन्हें अब अवकाश की आवश्यकता थी ।

यद्‌यपि एक दलीय शासन सार्वजनिक तनावों में कमी करता है, परन्तु ऐसी व्यवस्था में दल के अन्दर आपसी झगड़े स्वाभाविक होते है । 1967 में गैर कांग्रेसी दलों की विजय से कांग्रेस के अन्दर के गुटबन्दी झगड़े भी तीव्र हो गये इसमें संदेह नहीं है कि अन्तत : कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व की जीत होती थी । कांग्रेस हाई कमाण्ड अपनी अधीन राजकीय इकाइयों पर हावी रहता था । 1967 में कामराज प्लान छ : मुख्यमंत्रियों का त्यागपत्र (जिनको अपनी-अपनी विधान सभाओं का विश्वास प्राप्त था) प्राप्त करने में सफल रहा । उसके अतिरिक्त कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने अनेक अवसरों पर कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को अपने सहयोगी मंत्री चुनने की स्वतंत्रता नहीं दी । यह एक अलग तथ्य है कि पश्चिमी बंगाल में बी. सी. राय तथा अत्युले घोष उत्तरप्रदेश में सी. बी. गुप्ता तथा पंजाब में प्रतापसिंह कैरो को अपनी प्रभावशाली स्थिति के कारण कुछ विशेष छूट प्राप्त थी राज्य स्तर पर लगातार उभरते नेतृत्व, विशेष रूप से 1969 में नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात् स्थिति में विचित्र मोड़ आया । कांग्रेस में फूट का अभियान चला। यह नवम्बर, 1969 में हु आ -जबकि श्रीमती गांधी ने अपने लौकिक तथा वामपंथी हाव-भाव के माध्यम से न केवल कुछ कांग्रेसी नेताओं को जनता की नजर में गिराने का प्रयास किया अपितु इस कम' में साम्यवादी दलों व भाषायी अल्प वर्गों का समर्थन भी प्राप्त कर लिया । 1971-72 के चुनावों में विजय प्राप्त करने के पश्चात् श्रीमती गांधी ने एक प्रकार की राजनैतिक प्रक्रिया आरम्भ की जिसके अन्तर्गत शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के भाव को दोबारा स्थापित करने का प्रयास किया गया जो नेहरू जी की मृत्यु के बाद लुप्त होता जा रहा था । श्रीमती गांधी की और से आरम्भ की गई राजनीतिक प्रक्रिया की तीन विशेषताएँ थी - एक दल तथा सरकार में तला का अतिकेन्द्रीयकरण जिसमें निर्णय करने वाले खम्ब के शिखर पर प्रधानमंत्री होगा, इसका श्रीमती गांधी ने दल तथा सरकार के संघीय स्वरूप को बदलते हु ए उनमें केन्द्रीयकरण के सुझावों को प्राथमिकता दी ताकि सत्ता के केन्द्रीयकरण को और अधिक दृढ़ता प्राप्त हो, तीसरा श्रीमती गांधी ने कांग्रेस के समर्थन-आधार. को ऊपर से बदलने का असफल प्रयास करते हु ए युवकों, महिलाओं, बुद्धिजीवियों, अल्पवर्गों, पिछड़ी जाति व जनजाति तथा' निर्धनों 'जैसे. समाज के क्यों को कांग्रेस दल तथा कांग्रेसी विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व दिया । क्योंकि कांग्रेस दल तथा स्वयं भारतीय संविधान संगठन का औपचारिक ढांचा संघीय स्वरूप का होते हु ये भी एकात्मक प्रवृत्तियों वाला था, इसलिए श्रीमती ' गांधी द्‌वारा आरम्भ किए गये राजनीतिक प्रारूप को प्रमु ख संगठनात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं थी । आवश्यकता थी मंद पड़े उन संवैधानिक उपबन्धों को उभारने तथा इस यंत्रकला को पलटने की

जिनके फलस्वरूप राज्यों को सत्ता प्रयोग में भाग मिलता था तथा कांग्रेसी दलों के राजकीय नेताओं को स्वतंत्र व्यवहार करने की छूट मिलती थी ।

1975 की आपात की स्थिति ने भारतीय केन्द्र. राज्य सम्बन्धों पर महत्वपूर्ण छाप डाली प्रथम, यह आपात स्थिति में ही एक और (1971 से आरम्भ से हुई) आपात स्थिति थी । दूसरा पहली आपात स्थिति की उपेक्षा इस नई आपात स्थिति का राजनीति स्वतंत्राओं पर कष्टदायक प्रभाव पड़ा था जिसके कारण केन्द्रीय सरकार को कांग्रेस के अन्दर तथा बाहर के विरोध से निपटने में तथा किसी भी राज्य में प्रभावशाली सरकार बनाने में सहायता मिली । तीसरी, इस नई आपात स्थिति ने केन्द्रीय सरकार के केन्द्र राज्य सम्बन्धी ढांचे को प्रभावित करने वाले संविधान में दो महत्वपूर्ण संशोधन (38वां तथा 42वां) करने में सहायता दी । स्मरणीय है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धी ढांचे को प्रभावित करने तथा केन्द्र के पक्ष में पहले ही संविधान में तीसरा, पाँचवा, छटा, सातवां तथा बाईसवां संशोधन हो चुका था ।

38वें संशोधन द्वारा आपातकालीन स्थिति की घोषणा करने के राष्ट्रपति के अधिकार को न्यायिक पुन निरीक्षण से बाहर रखा गया । 42वें संशोधन में आपात स्थिति के आकार को बढ़ा दिया जबकि 352 धार की आपात स्थिति के अलग-अलग भागों में लागू करने की व्यवस्था की गई । इसका अर्थ यह है कि किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के बिना भी उस राज्य पर आपात स्थिति के उपबन्धों को लागू किया जा सकता था, यद्यपि उस राज्य के लिए केन्द्रीय सरकार को आपात कालीन आदेश, कानून निर्माण तथा प्रशासकीय शक्तियों के प्रयोग का अधिकार नहीं था । इस प्रकार की लागू की गई आपात स्थिति का प्रभाव. ऐसे भागों पर आपात स्थिति के बाद तक के काल में भी जारी रह सकता था ।

जनता पार्टी के उदय तथा कांग्रेस की फूट से 1977 तथा 1978 के चुनावों में नई राजनीतिक शक्तियों के गठजोड़ में स्फूर्ति उत्पन्न थी । कांग्रेस दल द्वारा केन्द्र तथा राज्यों में स्थापित प्रभुत्व समाप्त हो गया । यद्यपि जनता पार्टी विकेन्द्रीयकरण के लिए वचनबद्ध थी परन्तु इसके केन्द्रीय नेताओं ने यह स्पष्ट किया कि यदि उन्हें सत्ता प्राप्त होती है तो वे भारत में केन्द्रीय शासन का वैसा रूप लागू करने का प्रयास करेंगे जैसा कि अंग्रेजों के समय तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् कांग्रेस ने स्थापित किया था । जनता पार्टी के कुछ नेताओं ने तो सूर्यगुप्त, तथा मौर्य साम्राज्य जैसे केन्द्रीयकृत भारत की कल्पना करने का भी यत्न किया। उनकी दृष्टि में यशस्वी अतीत की पुन : प्राप्ति भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य था परन्तु जनता पार्टी अधिक दिन सत्ता में न रह सकी और उसका अधिकांश समय गुटबन्दी में समाप्त हो गया । फलत : वह शासन सम्बन्धी कोई प्रथाएं व परम्पराएं स्थापित न कर सकी । श्रीमती गांधी ने अपने नये राजनीतिक दल (कांग्रेस "ई ") के सत्ता में आने के बाद दल तथा सरकार में केन्द्रीय नियंत्रण को परिवर्तित तथा पुन : निर्मित किया । राज्यों की स्थिति नगर पालिकाओं जैसी बना दी गई । मुख्यमंत्रियों को ऊपर से थोपा जाने लगा उन्हें अपने सहयोगियों को चुनने की स्वतंत्रता नहीं दी गयी । गैर-कांग्रेसी शासित राज्यों की दलीय तथा राजकीय स्तर पर आलोचना की जाने लगी । ऐसे राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों को हटाने के प्रयत्न किये जाने लगे । इन्दिरा जी के बाद में राजीव गांधी शासन में भी

बिल्कुल यही स्थिति रही । राजीव ने भी राज्यों में मुख्यमंत्रियों को ऊपर से थोपा तथा राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों को गिराने का भरसक प्रयत्न किया। स्वाभाविक था कि गैर कांग्रेसी सरकारें राज्यों को और अधिक शक्तियां देने की मार्गों पर जोर देती ।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सुचारू संचालन तथा केन्द्र और राज्यों के मध्य सहयोग और सामंजस्य की स्थिति बनी रहे इस हेतु एक बार फिर प्रयास किया गया, फलत : 1983 में भारत सरकार द्वारा सरकारिया आयोग का गठन किया गया। सरकारिया आयोग को उन संवैधानिक प्रावधानों से सम्बन्धित शक्तियां; संचालन, तथा प्रशासनिक प्रावधान है । इस कारण से सरकारिया आयोग का कार्यक्षेत्र संवैधानिक प्रावधानों का मूल्यांकन करता रहा, और साथ ही अन्त : सरकारी कार्य संचालन की ' प्रक्रिया का मूल्यांकन बनाने का अधिकार भी आयोग को प्रदान किया गया। अत : सरकारिया आयोग ने केन्द्र-राज्यों के मध्य आये 'के स्रोतों के बंटवारे राज्यपाल की भूमिका अखिल भारतीय सेवाओं, योजना आयोग की स्थिति, कानून एवं व्यवस्था सें जुड़ी हुयी समस्याएं आदि से उत्पन्न केन्द्र एवं राज्यों के मध्य विवाद की स्थिति का समाधान करने का प्रयास किया । सरकारिया आयोग का सुझाव रहा है कि आपातकालीन प्रावधानों का कम से कम प्राप्त किया जाये, राज्यपाल राज्य के संवैधानिक प्रधान की हैसियत से कार्य -करें, राष्ट्रीय विकास परिषद को सक्षम बनाया जाये, वित्तीय आयोग का इस प्रकार से गठन किया जाये कि राज्यों को उपयुक्त मात्रा में वित्तीय स्त्रोत प्राप्त हो, अखिल भारतीय सेवाओं के लिए ऐसे प्रावधान किए जाए कि केन्द्र और राज्यों के मध्य समय-समय पर विचार-विमर्श हो सके इस हेतु 'एडवाइजरों काउन्सिल फॉर परसोनेल एडमीनिस्ट्रेशन फॉर द, आल इण्डिया सर्विसेज़' के गठन. हेतु कहा गया । राज्य के किसी विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजा जाये तो उसे वह अधिक समय तक नहीं रोके बल्कि प्रावधान सुझाये । सरकारिया आयोग का कहना ई कि अगर इस तरह के प्रावधान किये जाते है तो भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एक तरफ राज्यों की स्थिति प्रभावकारी बनेगी तो दूसरी तरफ केन्द्र एवं राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध भी मधुर बनेंगे तथा आपसी विवाद की संभावनाएं बहुत ही कम रहेगी जो भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की प्रक्रिया के सुचारू संचालन को कारगर बनायेंगे ।

दिसम्बर 1989 में हुये आम चुनावों मे, कांग्रेस की हार हुई औr संयुक्त मोर्चा की (जनता दल) की सरकार बनी। संयुक्त मोर्चा की सरकार बनने के उपरान्त केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित दो बातों का उल्लेख कर सकते है -

1. चूंकि यह सरकार अल्पमत की सरकार है अत. केन्द्र की आज वह स्थिति नही है जो कि कांग्रेस शासन के अधीन थी । अर्थात दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पर कुछ सीमा तक रोक लगी है किन्तु जिस तरह है राज्यपालों के इस्तीफे मांगकर के इस सरकार ने भी कांग्रेस सरकार के राज्यपाल के पद को राजनीति का मुद्दा मनाने की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है ।
2. अधिकांश राज्यों में चूंकि विरोधी दलों की सरकारें है अत: केन्द्र राज्यों को उस तरह निर्देश रही दे सकता है जैसा कि केन्द्र में जिस दल की सरकार उसी दल को सरकार राज्यों में होने पर दे सकता है ।

1.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न 3 निम्नलिखित वाक्यों में से कौन सा वाक्य सत्या/असत्य है ।

3.1 भारतीय राजनैतिक व्यवस्था को एकात्मक रूप देने में कांग्रेस पाटी। की अहम भूमिका रही है।

3.2 योजना आयोग जैसी गैर संवैधानिक संस्थायें केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाती है ।

3. 3 आपातकालीन प्रावधानों के माध्यम द्वारा केन्द्र की स्थिति पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता।

3.4 राज्यपालों ने व्यवहार में केन्द्र के एजेन्ट की अपेक्षा राज्य के संवैधानिक प्रमुख की भूमिका अधिक निभाई है ।

1.10 योजनाबद्ध विकास तथा केन्द्रीयकरण

राष्ट्रीय नेताओं द्वारा केन्द्रीयकरण पर बल देने का एक मुख्य तर्क यह है कि पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक व राजनैतिक पुन : निर्माण हेतु केन्द्रीय नियंत्रण अनिवार्य था। समाजवादी समाज की रचना, धन तथा आय के समान वितरण तथा क्षेत्रीय विषमताओं के हटने पर ही सम्भव हो सकती थी सामाजिक व आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विषयों को समवर्ती सूची में रखा गया था । भारतीय सरकार (जो केन्द्रीयकृत नियोजन के सोवियत प्रतिमान से प्रभावित थी) ने 1951 में योजना आयोग की स्थापना की ।

1950 में प्रचलित प्रथाओं के फलस्वरूप योजना आयोग के कार्य, कार्यविधि तथा शक्तियाँ विकसित होती रही है । क्योंकि नियोजन सम्बन्धी अधिकांश संशोधन केन्द्र के पास थे इसलिए योजना आयोग में केन्द्र की प्रभुत्वकारी स्थिति स्वाभाविक थी । हाल के वर्षो तक योजना आयोग में आधे सदस्य केन्द्रीय मंत्री तथा दूसरे आधे सदस्य उन मंत्रियों द्वारा मनोनीत किये जाते थे । कुछ वर्षो को छोडकर प्रधानमंत्री तथा नियोजन मंत्री क्रमश : योजना आयोग के सभापति व उपसभापति हुआ करते थे । राज्यों का योजना आयोग में कोई स्थान नहीं था । यद्यपि केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर राज्यों में योजना बोर्डों द्वारा प्रभावकारी राज्य योजना सम्बन्धी संगठन विकसित करने पर जोर दिया है । परन्तु व्यवहार में योजना - प्रक्रिया सदैव ऊपर से ही व्यवस्थित की जाती थी । दूसरे शब्दों में राज्य योजनाओं को केन्द्रीय योजनाओं के प्राथमिकताओं के दायरे मैं ही बनाना पड़ता है तथा केवल योजना आयोग की स्वीकृति पर ही राज्य योजनाओं को कार्यरूप दिया जाता है । जैसा कि सनथानम का कहना है कि “आर्थिक विकास के उद्देश्य से योजना आयोग ने जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है संविधान को भी वृथा कर दिया हैं ।”

इसके अतिरिक्त राज्यों को केन्द्र द्वारा सुझावित योजनाओं को लागू करना पड़ता है क्यों कि इन योजनाओं से सम्बन्धित सब धनराशि केन्द्र की ओर से प्राप्त होती है जिस पर वित्तीय आयोग का कोई दखल नहीं होता । योजना आयोग की ऐसी योजनाओं पर खर्च की जाने वाली धनराशि निश्चित करता है । इस सम्बन्ध में एक आम शिकायत यह रही है कि योजना आयोग राज्य के क्षेत्रीय स्वरूप तक ध्यान में रखते हुये उन पर एकरूपीय ठोस योजना

लागू करता है केन्द्र द्वारा राज्यों पर थोपी गई इन योजनाओं व वास्तविक प्रभाव इस तथ्य पर निर्भर करता है कि केन्द्र ऐसे राज्यों को इस सम्बन्ध में कितनी वित्तीय सहायता देता है । शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों को केन्द्र पर आश्रित रहना पड़ता है । स्वाभाविक है कि इस क्षेत्र में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा योजना आयोग के शिक्षा अनुभाग के विचारों को राज्यों के विचारों की अपेक्षा अधिक महत्व मिलेगा । इस प्रकार की स्थिति स्वास्थ्य के क्षेत्र की भी है । जिस पर -राज्यों को काफी खर्च करना पड़ता है और उस खर्च की धनराशि केन्द्र की ओर से प्राप्त होती है । अत : स्वास्थ्य क्षेत्र से सम्बन्धी विषयों पर केन्द्रीय प्रभाव बना रहता है सामुदायिक विकास योजनाओं पर केन्द्र द्वारा सुझावित प्रतिरूप अधिक मात्रा में स्पष्ट दिखाई देते है । केन्द्र सामुदायिक विकास मंत्रालय ने तो राज्यों, ग्राम सेवकों तथा विस्तार कर्मचारियों तथा खण्ड विकास कर्मचारियों से सम्बन्धित नियम राज्यों पर थोपने के प्रयास किये है । अनेक क्षेत्रों में केन्द्र ने समान अनुदान की आड़ में राज्यों की वित्तीय नीतियों को बदलने का यत्न किया है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार योजना आयोग ने अति केन्द्रीयकृत योजना पद्धति स्थापित करने की चेष्टा की है । जिसमें राज्यों की और से पहल के अवसरों का अभाव रहा है तथा जिसमें केन्द्र स्वीकृत योजनाओं को राज्यों पर यथार्थ रहित तथा वास्तविकता-रहित ढंग से थोपा गया है प्रशासनिक वृद्धि की प्रक्रिया के माध्यम से योजना आयोग ने एक अनावश्यक फैली हुई नौकरशाही खड़ी कर दी है । और उसके ऊपर योजना आयोग में मंत्रीय सदस्यों का प्रभुत्व उतना अधिक है कि मंत्रीगण अपने गैर मंत्रीय सदस्यों को अपना सेवक मानते है जिसका परिणाम यह होता है कि योजना आयोग के गैर मंत्रीय सदस्य आर्थिक व तकनीकी आधार पर विभिन्न प्रकार के सुझाव देने से कतराते है । निंदेह अनेक राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों के उदय तथा उनके दबाव के फलस्वरूप 1969 से राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय प्लान सहायता किन्हीं विशेष योजनाओं से न जोड़ी जाकर खण्ड अनुदान व ऋण अहदान के रूप में देने का निर्णय किया गया है । आशा है कि इसमें राज्यों द्वारा नियंत्रण करने की भावना :को प्रोत्साहन मिलेगा । राज्यों द्वारा अपनी योजनाओं पर नियंत्रण बढ़ाने हेतु केन्द्र सूझावित योजनाओं की संख्या में कमी कर दी गई है । फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि केन्द्र की अपेक्षा राज्यों का संसाधनों पर नियंत्रण कम है । क्योंकि वित्तीय आयोग राज्यों के प्लान रहित नियत मुद्दों की देख रेख करता है, इसलिए योजना सम्बन्धी मामलों में योजना आयोग (जो केन्द्र के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है) राज्यों पर अत्यधिक मात्रा में नियंत्रण करता है फलत: राज्यों को अपनी क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत को बनाये रखने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है । राज्यों को अपने क्षेत्र में सांस्कृतिक विकास को मूर्तरूप देने के लिए केन्द्र की और वित्तीय सहायता के लिए मुंह देखना पड़ता है ।

1.11 इकाई सारांश

भारतीय संविधान निर्माता केन्द्र राज्य सम्बन्ध तय करते समय एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिसके माध्यम द्वारा एक तरफ सशक्त केन्द्र की स्थापना हो सके तथा दूसरी तरफ विभिन्न राज्यों की विभिन्न्तायुक्त संस्कृति तथा उनका निजी स्वरूप भी बना रहे इसी के फलस्वरूप ऐसी संवैधानिक व्यवस्था की गई कि राष्ट्रीय महत्व के एवं उन एकीकृत विषयों को केन्द्र सूची में सम्मिलित किया गया जो विभिन्न राज्यों को एक सूत्रता की कड़ी में

बांधते थे । तथा दूसरी तरफ स्थानीय महत्व के विषय राज्यों को प्रदान किये । केन्द्र सूची में अधिक महत्वपूर्ण विषयों का होना विशिष्ट प्रावधानों के तहत राज्य सूची के विषयों पर संसद को कानून बनाने की शक्ति मिलना, समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र एवं राज्य के कानूनों में टकराहट होने की स्थिति में केन्द्र का कानून मान्य होना, अदशिष्ट शक्तियों का केन्द्र को प्रदान किया जाना आदि ऐसे प्रावधान है जो कि केन्द्र को एक सशक्त स्थिति प्रदान करते है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारतीय संघ की इकाइयों (राज्यों) का कोई संवैधानिक अस्तित्व ही नहीं है । भारतीय संविधान में वे सभी प्रावधान रखे गये है जो कि संघ की इकाइयों की महत्ता को बनाये रखते है ।

केन्द्र राज्य सम्बन्धों के निर्धारण में केवल संवैधानिक प्रावधान ही प्रभावशाली नहीं रहे वरन् क्रियान्वयन के स्तर पर गैर संवैधानिक कारकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इनमें हम मुख्य रूप से राजनीतिक दल विशेषत : कांग्रेस, योजना आयोग, वित्त आयोग राज्यपालों की राजनीति प्रशासकीय सुधार आयोग आदि उल्लेखनीय है । इन सभी निकायों एवं संस्थाओं द्वारा व्यावहारिक रूप से केन्द्र को अधिक सशक्त बनाने में योगदान दिया गया । किन्तु फिर भी स्वतंत्रता के उपरान्त कुछ ऐसे प्रयास किये गये जिनसे कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों के सुचारू संचालन को तय किया जा सकें, जैसे सरकारिया आयोग ।

1.12 इकाईगत अभ्यास

प्रश्न 1 भारतीय संविधान निर्माताओं ने केन्द्र राज्य सम्बन्ध तय -करते समय कौन-कौन सी प्राथमिकताएं तय की थी ।

प्रश्न 2 केन्द्र राज्य सम्बन्ध संवैधानिक स्थिति का मूल्यांकन करते हुये बताइये कि व्यवहार में उन प्रावधानों को किन-किन कारकों ने प्रभावित किया है ।

1.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1	(ख)
प्रश्न 2.1	(ग)
प्रश्न 2.2 (अ)	हाँ
प्रश्न 2.2 (ब)	हाँ
प्रश्न 2.2 (स)	न
प्रश्न 3.1	सत्य
प्रश्न 3.2	सत्य
प्रश्न 3.3	असत्य
प्रश्न 3.4	असत्य

1.14 संदर्भ ग्रंथ

1. के. सी. व्हीयर — फैड्ल गवर्नमेंट चौथा संस्करण
2. डा. सुशीला कौशिक (सम्पादक) — भारतीय शासन एवं राजनीति (अमरजीत सिंह नारंग का निबन्ध - भारत में राज्यों की राजनीति)

3. मोरिस जोन्स — द गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया
4. रजनी कोठारी — भारतीय सरकार एवं राजनीति
5. द इण्डियन जरनल ऑफ पॉलिटिकल साइन्स, वाल्यूम नम्बर .2 अप्रैल-जून 1989 में एस, का लेख पार्टीर्सिपेटिव सन्टरलाइजेशन: सरकारिया कमीशन्स। प्रेसक्रिप्सन फॉर यूनियन स्टेट रिलेशन इन इण्डिया।

इकाई-2

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत मे क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन की लोकनीति के विशिष्ट संदर्भ में प्रशासनिक सुधार

इकाई संरचना

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रशासनिक सुधारों का महत्व
2.3 प्रशासनिक सुधारों की अवधारणा
2.4 प्रशासनिक सुधारों के प्रकार
2.4.1 आर्थिक सुधार
2.4.2 राजनीतिक सुधार
2.4.3 सामाजिक सुधार
2.5 प्रशासनिक सुधारों का व्यापक समीक्षा
2.6 इकाई सारांश
2.7 इकाई गत अभ्यास कार्य
2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस 'इकाई' के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- विकासात्मक नीतियों और लक्ष्यों को जान सकोगे ।
- कार्यक्रम सूत्रीकरण और कार्यक्रम एवं परियोजनाओं का प्रश्न कर सकोगे ।
- प्रशासनिक संरचना और प्रक्रियाओं का पुनर्गठन कर सकोगे ।
- परिणामों का मूल्यांकन कर सकोगे ।
- विकासात्मक प्रयासों में जनता की सहभागिता को जान पायेंगे ।
- सामाजिक और राजनीतिक संरचना की प्रगति कर सकोगे ।
- प्रशासनिक सुधारों पर प्रभाव डालने वाले कारकों, उपलब्ध अवसरों तथा रुचियों के बारे में बता सकोगे ।

2.1 प्रस्तावना

लोक नीति के अध्ययन से पता चलता है कि यह विषय एक नागरिक की उन्नति के लिए, समाज की प्रगति के लिए, राष्ट्र की योजना को सफल बनाने के लिए, आर्थिक प्रगति तथा जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए हमें नीति, विधि, नियम समानता तथा स्वतन्त्रता आदि सब कुछ प्रदान करता है । प्रशासनिक-सुधार लोकनीति की वह शाखा है जो किसी देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास से सम्बन्धित है । यह एक नया विषय है जिसे

कुछ दशक पहले शायद ही कोई जानता हो । वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व के मानचित्र में एक भारी परिवर्तन आया क्योंकि कई देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी । अभी तक यह देश परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े हुये थे । इन देशों को काफी वर्षो पश्चात् स्वतन्त्रता में रहने का अधिकार प्राप्त हुआ था । सामान्यत ये देश लेटिन अमेरिका, एशिया, अफ्रीका आदि के अन्तर्गत आते है, जिन्हें तृतीय विश्व, अविकसित देश:, आधुनिकीकरणशील देश, संक्रांतिकालीन देश, विकासशील देश आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है । इन देशों का प्रमुख लक्ष्य विकास है । वर्तमान में वह प्रशासन जो इन विकासशील देशों के विकास एवं उन्नति के लिए होता है उसको हम प्रशासनिक सुधार कहते है ।

प्रशासनिक सुधार की प्रकृति भी अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह ही है । यह समाज से सम्बन्धित विषय है । वास्तव में सुधार (विकास) एक आवश्यक गतिशील परिवर्तनात्मक अवधारणा है । समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाना उसका लक्ष्य है । यह क्योंकि नियम परिवर्तनीय है, अत : सुधारात्मक शासन का अध्ययन भी समय अनुसार परिवर्तनशील होता है । वर्तमान में प्रशासनिक सुधार की जो प्रकृति है, वो सन 1960 और सन 1970 के दशक में ही थी । विकासशील देशों में विकास प्रशासन ज्यादा महत्वपूर्ण हो रहा है, क्योंकि इन देशों को अभी बहुत विकास करना है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकास की अवधारणा में भी परिवर्तन आता रहा है । सन 1970 के दशक में विकासशील देशों के सम्मुख जो समस्याएं थी वो आज नहीं है । समय के अनुसार समस्याएं भी परिवर्तनीय है । आज का युग तकनीकी युग है, जिसमें अणुशक्ति का विकास हो रहा है । विकासशील देशों को भी इस तकनीकी युग के अनुसार चलना पड़ता है । सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु भी, नयी प्रबन्ध तकनीक को अपनाना होता है । इस समय विश्व के समस्त देशों को आर्थिक-सामाजिक कार्यो हेतु एक-दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है । दूसरी ओर राजनीतिक स्तर पर विश्व विभिन्न समूहों में विभक्त होता जा रहा है । राष्ट्रीय निर्माण सुधार की प्रक्रिया है, जो राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक तत्वों से प्रभावित होती है । विकासशील देश परम्परागतवाद से आधुनिकवाद की ओर अग्रसर हो रहे है ।

प्रशासनिक सुधार, विकासशील देशों का प्रशासन है, जो देश में आर्थिक सामाजिक विकास लाये मैं लगा हुआ है । अपने व्यापक रूप में यह उन सब बातों एवं वस्तुओं से सम्बन्धित है जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक नीति से समाज के सांस्कृतिक मूल्य के रूप में हैं । यह विषय उद्देश्य एवं परिवर्तन अनुकूलित होता है । परिवर्तन एवं विकास के इस युग में प्रशासनिक सुधार जैसे गतियुक्त विषय का क्षेत्र निश्चित करना बहुत कठिन है । यह एक विस्तृत विषय है जिसका सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्थाओं से है । अत : इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत और परिवर्तनशील है । व्यावहारिक दृष्टि से इसके क्षेत्र के अन्तर्गत वे समस्त बातें आती है, जिन्हें प्रशासन विकासात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रयोग में ला सकते है । प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित साहित्य में सुधारात्मक प्रशासन को दो अर्थो में प्रयोग में लाया गया ।

(i) यह विकास के कार्यक्रमों में प्रशासन के रूप में देखा गया है ।

(ii) प्रशासन की क्षमता को बढ़ाने के रूप में इसका प्रयोग किया गया है ।

इसका अर्थ हुआ प्रशासनिक सुधार वह प्रशासन है जो विकास हेतु किये जाने वाले सभी कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं, परियोजनाओं आदि के निर्माण और क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इसके साथ ही प्रशासन विभिन्न समस्याओं को सुलझाने हेतु अपनी क्षमता एवं कुशलता को भी बढ़ाता रहता है ।

तृतीय विश्व के अध्येयता इस बात पर पूरी तरह से एक मत है कि नवीन देशों के सामाजिक-आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रशासन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अतएव प्रशासनिक सुधार पर पूर्णरूप से ध्यान दिया जाना चाहिए ।

2.2 प्रशासनिक सुधारों का महत्व

स्वतन्त्रता से पूर्व भी भारत में प्रशासन के ढांचे के पुनर्गठन और कार्य प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि प्रचलित प्रशासनिक संगठन और प्रक्रिया व्यवस्था देश के सम्मुख उपस्थित आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक चुनौतियों का मुकाबला करने में सर्वथा अक्षम है तथा इसमें अनुकूल परिवर्तन करना अनिवार्य है । राज्य कार्यों में वृद्धि, संविधान में निहित कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयास और आर्थिक विकास के लिए प्रजातांत्रिक आयोजन की प्रणाली अपनाने का निश्चय करने के फलस्वरूप प्रशासनिक संगठन और प्रक्रिया व्यवस्था मैं सुधार करना और भी आवश्यक हो गया है । पाई पानन्दीकर के अनुसार, भारत में प्रशासनिक तंत्र अपर्याप्त है तथा उसका संगठन एवं पदसोपान अति अविकसित है । इसके नियम, उपनियम आदि लक्ष्यों की कुशल एवं प्रभावपूर्ण प्रगति में बाधाएँ उत्पन्न करते है । क्रीन्ले साइड ने लिखा । है कि राष्ट्रीय अविकास की विशेषताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपर्याप्तता है जिस पर विजय पाना सर्वाधिक कठिन कार्य है । उसे सम्बद्ध सरकारी अधिकारियों द्वारा या तो पहचाना ही नहीं जाता, यदि पहचाना जाता है तो स्वीकार नहीं किया जाता है ।

जब उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये तब विकास की समस्या का सामना करना पड़ा लेकिन प्रशासनिक मशीनरी प्राप्त हुई जिनका उद्देश्य विकास करना नहीं। अपितु शासन करना था। सुधारात्मक कार्य के लिये उस समय की प्रशासनिक मशीनरी में दो प्रकार की कमियां नजर आयी पहली तो उसमें अक्षमता थी । हुक्म चलाना आता था सुधार करना नहीं । दूसरी इसमें अनिच्छा थी । आधारभूत समस्या यह थी कि अगर सुधारात्मक कार्य को क्रियान्वित करना है तो प्रशासकीय मशीनरी में किस तरह परिवर्तन लाये जाएं, क्या यह मशीनरी गोलछेद में चौकोर पिन ठोकने के समान थी यह समस्या मुख्य रूप से प्रशासनिक सुधार के सामने आयी । वास्तव में जहां विकास करने का प्रयत्न लगा हुआ था वहां यह जरूरी था कि विकास कार्य हेतु प्रशासनिक मशीनरी की क्षमता को बढ़ाया जाये । ये ही प्रशासनिक सुधार है । प्रशासनिक-सुधार का उद्देश्य प्रशासनिक मशीनरी की अक्षमता को खत्म करना तथा उसकी प्रभावशीलता का बढ़ाना है । प्रशासनिक सुधार, सुधारात्मक प्रशासन का ही एक भाग है । सुधारात्मक प्रशासन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता अनुभव की गई । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत में प्रशासनिक सुधार के लिए श्री ए. डी. गोरवाला, श्री पाल एपिलर्वा,

संघीय और राज्य सरकारों द्‌वारा नियुक्त - प्रशासनिक सुधार अथवा प्रशासनिक पुनर्गठन समितियों अथवा आयोगों आदि के अध्ययन और सिफारिशों के बावजूद जब लोकनीति के संगठन और प्रक्रिया वांछित अनुकूल सुधार सम्भव नहीं हुए तो संघीय सरकार ने सन 1966 में एक पूर्ण शक्ति प्राप्त आयोग की स्थापना की । इस आयोग को देश की प्रशासनिक व्यवस्था का परीक्षण एवं सुधार करने का कार्य सौंपा गया । श्री मोरारजी देसाई आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए ।

2.3 प्रशासनिक सुधारों की अवधारणा

'प्रशासनिक सुधार' भी एक नयी ही अवधारणा है, जिसका सरल अर्थ है प्रशासनिक व्यवस्था का विकास । वास्तव में विकास (सुधार) परिवर्तन का परिचायक है । प्रशासनिक सुधार का भी मुख्य सम्बन्ध विशेषत विकासशील देशों में लाये जाने वाले परिवर्तनों, लक्ष्यों, प्रयोजनों, कार्यक्रमों, संगठनों, प्रक्रियाओं, अभिकरणों, प्रविधियों एवं अधिकारियों से है । अत: विकासवादी प्रशासन क्रियोन्मुख एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक-व्यवस्था कहा जाता है और इसके हेतु प्रशासन को तैयार किया जाता है । इसमें विशिष्ट या निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रशासन उसकी संरचनाओं, प्रक्रियाओं, क्रियाविधियों, सेवी वर्ग तथा उनकी गतिविधियों को तैयार किया जाता है ।

प्रशासनिक सुधार भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक हे । रिग्स के अनुसार, 'प्रशासनिक सुधार' निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध साधनों को उपयोग करने की बढ़ती हुई प्रभावशीलता का प्रतिमान है । यह 'राजनीति- सुधार' से भिन्न है क्योंकि उमड़े मूल्यों-चयनों को अन्तग्रस्त करने वाले संगठनात्मक निर्णयों की वर्धित योग्यता है । श्री बंसल के मतानुसार प्रशासनिक विकास प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था की वह बढ़ती हुई योग्यता है जिसके द्‌वारा सामूहिक निर्णयों का क्रियान्वयन व उससे पहले निर्धारण किया जाता है । इस कार्य में प्रशासनिक तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । श्री रजनी कोठारी ने "भारत में राजनीति" का अध्ययन करते समय समाज के सरकारीकरण की प्रक्रिया को सामने रखा है जिसके कारण प्रशासनिक व्यवस्था का महत्व निरन्तर बढ़ता जाता है । वर्तमान में प्रशासक नीति निर्माण में सहायता देता है और उसके क्रियान्वयन के लिए स्वयं उत्तरदायी भी होता है । अत प्रशासनिक व्यवस्था का सुधार ही प्रशासनिक सुधार है । फ़्रैड डब्ल्यू रिग्ज के सुधारात्मक सिद्धान्त की मूल प्रस्तावना यह है कि व्यवस्थाओं में जितना अधिक संरचनात्मक विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण होगा, उसमें उतनी ही अधिक समस्याओं का सामना करने तथा लक्ष्य-प्राप्ति की क्षमता होगी । सुधार वास्तव में परिवर्तन का परिचायक होता है । सुधार हेतु प्रशासनिक व्यवस्था को तैयार किया जाता है । विकासशील देशों में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में प्रशासन-व्यवस्था की मुख्य भूमिका होती है । प्रशासनिक सुधार के लिये कहा जाता है कि यह प्रशासनिक परिवर्तन का ही एक प्रकार है । यह सुधार एवं प्रशासनिक परिवर्तन का संयुक्त रूप है । इसमें सुधार लक्ष्यों के संदर्भ में प्रशासन को संरचना एवं प्रक्रियाओं में समुचित परिवर्तनों, सुधारों, संशोधनों एवं पुन निर्माण को सम्मिलित किया गया है । वास्तव में प्रशासनिक सुधार सुधारात्मक लक्ष्यों अथवा तथाकथित विकास कार्यक्रमों के बिना ही घटित हो सकता है ।

'प्रशासनिक सुधार' नवीन मान्यताओं तथा विकास प्रधान लक्ष्यों के परिणाम स्वरूप प्रशासनिक संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं में किये जाने वाले सुनियोजित परिवर्तन को कहते है । संक्षेप में प्रशासनिक सुधार का अर्थ है प्रशासन के वर्तमान स्वरूप में गुणात्मक तथा मात्रात्मक परिवर्तन । इसका अर्थ नौकरशाही का विवेकीकृत करना तथा उसे उपलब्धि प्रधान बनाया जाना है । इसमें समूह भावना तथा उत्तरदायित्व को महत्व दिया जाता है । भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग ने ऐसे नवीन प्रशासनिक ढांचे के लिये आवश्यक न्यूनतम के स्थान पर सत्ता का अधिकतम हस्तान्तरण किये जाने की सिफारिश की है । प्रशासनिक सुधार में इसी कारण प्रशिक्षण एवं अभिमुखन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है । इसके परिणामस्वरूप प्रशासन सम्बन्धी अनेक परम्परागत धारणाऐं अनउपयुक्त एवं निरर्थक हो जाती है ।

प्रशासनिक सुधार की अवधारणा नौकरशाही की ओर नवीन दृष्टि से देखती है । वह उसमें नवीन-दृष्टिकोण, नई भावना, बदली हुई मनोवृत्तियां, व्यवसायिक कुशलता, उपयुक्त संरचनाओं तथा क्रियाविधियों को देखना चाहते है । प्रशासनिक सुधार पर्यावरण से स्थान अनुकूलन स्थापित करता है । वास्तव में देखा जाय तो वह प्रशासन पर पड़ने वाले राजनीतिक, शासनिक, कानूनी, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रभाव का परिणाम होता है। इस दृष्टि से वह विकासशील देशों में युग परिवर्तन का द्वार अथवा रूपान्तरण संयंत्र है । प्रशासनिक सुधार समाज की रूपान्तरण प्रक्रिया का ज्ञाता, प्रयोक्ता एवं अधिष्ठाता होता है । प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी कार्यात्मक सेवाओं तथा विशेषज्ञता क्षेत्रों की स्थापना की सुझाव दिया है । इस प्रकार समग्र विकास के लिये प्रशासनिक सुधार पर और अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है । यहां प्रशासनिक सुधार का उद्देश्य सुधारात्मक प्रशासन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है । परन्तु इन विकासशील देशों के सामने कुछ प्रशासनिक समस्याएं इस प्रकार की है कि यहां प्रशासनिक सुधार नहीं हो पा रहा है ।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1. निम्नलिखित में से 'प्रशासनिक सुधार' कौन से देशों का प्रशासन है

क. पूंजीवादी देशों का

ख. साम्यवादी देशों का [ ]

ग. विकासशील देशों का

घ. पिल्ले या अर्द्ध विकसीत देशों स

प्रश्न 2. भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग' की स्थापना की गयी थी?

क. 1966 में

ख. 1965 [ ]

ग. 1970

घ. 1968

प्रश्न 3. प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रथम अध्यक्ष थे?

क. श्री ए. डी. गोरवाला

ख. श्रीपाल एपिलबी

ग. ग श्री मोरारजी देसाई [ ]

घ. चौधरी चरणसिंह

2.4 प्रशासनिक सुधारों के प्रकार

2.4.1 आर्थिक सुधार

विकासशील देशों का आर्थिक सुधार वर्तमान शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है । इन देशों के अन्तर्गत एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के बहुत से देश आते है, जिन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्त हुई । आर्थिक सुधार की समस्या विश्व के अनेक देशों हेतु महत्वपूर्ण मानी जाती रही है परशु विकासशील देशों के लिए इसका विशेषरूप से महत्व है । वर्तमान समय में विकासशील देशों के लोग विकसित देशों की तुलना में अपनी गरीबी और पिछड़ेपन मे आज भी बहुत अधिक चिन्तित है ।

आज आर्थिक सुधार सभी राष्ट्रों का लक्ष्य एवं उनकी महत्वाकांक्षा बनता जा रहा है । आर्थिक सुधार स्वयं एक जटिल प्रक्रिया है जिसे समझना आसान नहीं है । प्राय : 'आर्थिक वृद्धि', 'आर्थिक सुधार' और 'आर्थिक प्रगति' शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है । संसार के कुछ अर्थशास्त्रियों ने इनमें अन्तर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । यह लोग आर्थिक वृद्धि को एक स्वाभाविक एवं सामान्य प्रक्रिया मानते है, जिसके लिए समुदाय का कोई विशेष प्रयत्न नहीं होता है । इसके विपरीत आर्थिक सुधार की प्रक्रिया हेतु संरचनात्मक परिवर्तनों का होना अत्यन्त आवश्यक है, जिसके बिना सामाजिक व्यवस्था की निश्चलता का मुकाबला करके भूतकाल से निश्चित सम्बन्ध-विच्छेद करना असम्भव है । अत : उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका की प्रगति को हम आर्थिक वृद्धि तथा रूस, और एशिया व अफ्रीकी देशों की प्रगति को आर्थिक सुधार कहेंगे, क्योंकि इन देशों की प्रगति उनके निश्चित प्रयासों का परिणाम होता है । सामान्यत : आर्थिक वृद्धि को हम एक स्वत : प्रक्रिया के रूप में देखते है, जबकि आर्थिक सुधार प्रेरित होता है । इनमें से प्रथम विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति को बतलाता है और द्वितीय विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति का सूचक है ।

'आर्थिक वृद्धि' और 'आर्थिक प्रगति' में भी अन्तर किया जाता है । 'आर्थिक प्रगति' से अभिप्राय प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि से होता है और 'आर्थिक वृद्धि' जनसंख्या और कुल वास्तविक आय दौरों की वृद्धि को बतलाती है । आर्थिक सुधार विकासशील देशों हेतु आवश्यक है । इन देशों का आर्थिक सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से विकास करना है ।

आर्थिक सुधार एक लम्बी परिवर्तन की प्रक्रिया होती है, जिसका कोई सन्तोषजनक एवं सर्वमान्य सूचक निश्चित करना असम्भव और कठिन है । आर्थिक सुधार एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय दीर्घकाल में बढ़ती है । वैसे कुछ मानदण्ड होते है, जिनसे यह जाना जा सकता है कि आर्थिक सुधार हो रहा है अथवा नही । प्रो. लिप्से (Lipsey) ने माना है कि किसी देश के विकास की मात्रा के बहुत से सम्भावित माप हो सकते है - प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति पूंजी, प्रति व्यक्ति बचत, अशोषित साधनों का अनुपात,

'सामाजिक पूंजी' की मात्रा जैसे सड़कें, रेलें, स्कूल तथा विभिन्न वर्गों की शिक्षा की मात्रा आदि। आर्थिक सुधार के कुछ सामान्य सूचक निम्नलिखित है :

(i) राष्ट्रीय उपज में होने वाली वृद्धि,

(ii) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय,

(iii) लोगों के रहन-सहन का स्तर,

(iv) समुदाय क सामान्य आर्थिक कल्याण,

(v) राष्ट्रीय आय,

(vi) सकल राष्ट्रीय उत्पादन आदि ।

आर्थिक सुधार के नापने के इन सूचकों से ज्ञात होता है कि आर्थिक सुधार के विश्लेषण प्रमुख रूप से वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि पर केन्द्रित होना चाहिए। इसके साथ-साथ इस वृद्धि का मुकाबला जनसंख्या वृद्धि से कर सकते है और प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के परिवर्तनों को देख सकते है । गरीब एवं विकासशील देशों में आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना विकसित देशों के हित में भी है । वर्तमान समय में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस तथा कुछ यूरोपीय देशों द्वारा इस ओर ध्यान दिया गया है और विकासशील देश इन देशों की विदेश नीति क प्रमुख भाग बन गये है । अब इनका आर्थिक सुधार अमीर देशों की आशिक जिम्मेदारी समझा जाने लगा है । यह आर्थिक सुधार, सुधारात्मक प्रशासन के अन्तर्गत ही आता है ।

संसार द्वारा राजनीतिक सुधार की अवधारणा के द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के देश स्वतन्त्र हुये जो पहले साम्राज्यवादी शोषण का शिकार थे। इन देशों को कई नामों से सम्बोधित किया जाता है, जैसे 'संक्रमण कालीन देश', 'विकासशील देश', उभरते हुए राष्ट्र', 'तृतीय विश्व के देश', आदि । संयुक्त राष्ट्र संघ में भी इनकी संख्या में वृद्धि हुई । अत. यह स्वाभाविक था, कि पश्चिमी राजनीतिज्ञों एवं विद्वानों का ध्यान इन देशों की व्यवस्थाओं की ओर आकर्षित होता । इनकी समस्याएं पश्चिमी देशों से भिन्न प्रकार की थी। इनका अध्ययन पश्चिमी ढंग से नहीं किया जा सकता था और पुरानी, अवधारणायें तथा सिद्धान्त भी इनके अध्ययन हेतु अपर्याप्त से जान पड़े । इन को सामान्य भाषा में विकासशील देशों' के नाम से ही सम्बोधित किया जाता । विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था का क्रमबद्ध अध्ययन भी अभी हाल ही में शुरू हुआ है । इस प्रकार के अध्ययनों को शुरू एवं बढ़ावा देने का श्रेय मुख्य रूप से जिन विद्वानों को था, उनमें से प्रमुख थे जैसे लूसी मेयर (Lucy Mair)।, डेविड टेट (David Tait), जी. ए. आमंड (G. A. Almand),जी. वी. पॉवेल (James Coleman), जेम्स कौलमेन आदि । इन विद्वानों ने विभिन्न ग्रंथ क्षेत्रों की राजनीतिक (The Politics of Developing Area) जीवन से सम्बन्धित लिखे। इनमें से सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण ग्रंथ आमंड और कोलमेन द्वारा सम्पादित विकासशील क्षेत्रों की राजनीति है । इस ग्रंथ में बर्मा, भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, थाईलैड़, अल्जीरिया, घाना, सूडान, नाइजीरिया, ब्राजील आदि देशों की राजनीतिक व्यवस्था का गहन अध्ययन दिखाई पड़ता है ।

राजनीतिक सुधार के वास्तविक अर्थ के बारे में सभी विचारक एक मत नहीं हो सके थे। इसलिए राजनीतिक सुधार के भारत मे अलग-अलग अर्थ बताते है:-

1. राजनीतिक सुधार आर्थिक सुधार की पूर्व शर्त है -

इस परिभाषा के आधार पर यदि किसी राष्ट्र का राजनीतिक सुधार हो गया तो उसका आर्थिक सुधार आसान हो जाता है अर्थात् आर्थिक सुधार आसान हो जाता है अर्थात् आर्थिक सुधार के पहले राजनीतिक सुधार होना चाहिये । परन्तु भारत के संदर्भ में देखा गया हैं कि आर्थिक सुधार व राजनीतिक बारे में विशेष समानता नहीं है ।

2. राजनीतिक सुधार औद्योगिक सुधार के रूप में -,

इस परिभाषा के प्रमुख समर्थक डब्ल्यू. डब्ल्यू. रस्टोव (W.W.Restow) है । इनका कथन है, कि राजनीतिक सुधार तथा औद्योगिक सुधार भी होते है । जहां पर औद्योगिक सुधार होगा वहां पर राजनीतिक सुधार भी होगा क्योंकि औद्योगिक सुधार से हर प्रकार के परिवर्तन आते है जैसे गांव के लोग शहर आते है, उनका जान बढ़ता है, समाचार पत्र पढ़ते है, यूनियन बनती है, राजनीतिक समाजीकरण होता है ।

3. राजनीतिक सुधार राष्ट्र निर्माण का पर्यायवाची है -

इस विचारधारा को मानने वालों का विचार है कि जिस राष्ट्र में एकता हो तथा राजनीतिक कार्यो का एक -स्तर हो, जनता राजनीति तथा अपने राष्ट्र के प्रति सजा हो, अन्तर्रास्ट्रीय जगत में मान्यता हो वही राजनीतिक सुधार है ।

4. राजनीतिक सुधार लोकतंत्र के निर्माण के रूप मे -

इस विचारधारा के समर्थक यह मानते हैं कि जहाँ पर लोकतंत्र होगा वहीं राजनीतिक सुधार भी होगा। एडवर्ड शिल्स (Edward Shills) ने 'राजनीतिक लोकतंत्र' (Political Democracy) को ही 'राजनीतिक सुधार' का नाम दिया है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते है, कि राजनीतिक सुधार की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं है। विकासशील देशों हेतु हम कोई 'बना-बनाया मॉडल' प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं है। लुशियन पाई ने भारत जैसे राष्ट्र के लिए अपनी पुस्तक 'आस्पेक्टस ऑफ पोलिटिकल डेवलेपमेनट' (Aspects of Political Development) में राजनीतिक सुधार के लक्ष्य या सुधार समष्टि या उद्देश्य बताने की चेष्टा की है। इनके अनुसार कुछ निर्णायक तत्व हैं, जो कि राजनीतिक सुधार के लक्ष्य या सुधार समष्टि (Syndrome) या उद्देश्य के रूप में माने जाते हैं। ये तत्व निम्नलिखित है -

1. समानता -

यह राजनीतिक सुधार का पहला तत्व है। समानता भी तीन अर्थो में होनी चाहिए

(i) जन सहयोग तथा प्रतिबद्धता राजनीतिक सुधार में होनी चाहिए। जनता का सहयोग एवं साझेदारी होनी चाहिए।

(ii) कानून की व्यापक समानता हो तथा कानून सबको व्यापक तथा समान रूप से संरक्षण प्रदान करे।

(iii) सभी सरकारी पद सबके लिये समान रूप से खुले हुए हों। उनका आधार जाति, धर्म, भाषा, अमीर, गरीब न होकर योग्यता हो अर्थात् चयन हेतु प्रतियोगिता की खुली व्यवस्था हो।

2. क्षमता -

राजनीतिक सुधार का दूसरा तत्व राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता है। यहां पर क्षमता से तात्पर्य राजनीतिक व्यवस्था में 'निर्गत' (Out puts) की क्षमता से है। ईस्टन के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में 'निवेश' (Inputs) और 'निर्गत' (Out puts) पाये जाते हैं। 'निदेश' से अभिप्राय मांगे (Demand) और समर्थन (supports) और 'निर्गत' से अभिप्राय नीतियों (Policies) और निर्णयों (Decisions) से है।

3. **विभेदीकरण (Differentiation) तथा विशिष्टीकरण (Specialization) -** राजनीतिक व्यवस्था में अधिकांश कार्यों के लिये विभक्तिकृत संरचनाएं आवश्यक है। इसके साथ-साथ सूत्रबद्धता तथा एकीकरण भी हो। वास्तव में कार्य कुशलतापूर्वक किये जा सकें इसके लिये विभिन्न कार्यो हेतु अलग-अलग संरचनाएं अत्यावश्यक है। राजनीतिक व्यवस्था की विभिन्न संस्थाएं अपने विशेष तथा सीमित कार्यों को करें, उनके बीच श्रम विभाजन हो किन्तु उनमें सूत्रबद्धता हो तथा उद्देश्यों की प्राप्ति में उनका निश्चित मात्रा में योगदान हो। विकासशील देशों में विभेदीकरण तथा विशिष्टीकरण को राजनीतिक सुधार का एक आवश्यक तत्व माना जाता है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, विकासशील देशों का राजनीतिक सुधार एक आवश्यक है। इसका सुधार आज विश्व के हित में है।

2.4.3 सामाजिक सुधार

तृतीय विश्व के नाम से सम्बोधित होने वाले राष्ट्रों को एक लम्बे कष्ट तथा संघर्ष के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्त हुई । स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इन देशों के लोगों के मन में यह उत्पन्न हुआ कि अब इन्हें जीवन की न्यूनतम आवश्यकतायें जैसे - वस्त्र, भोजन, आवास, चिकित्सा सुविधायें, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि सुलभ होंगी । इन देशों का शिक्षित वर्ग सामाजिक सेवा तथा सामुहिक कार्यों द्वारा पददलित वर्ग की सहायता करेगा । यद्यपि इन देशों में इस ओर काफी प्रयास किया गया । परन्तु इनमें से अधिकांश आशायें मिथ्या सिद्ध हो चुकी है । वास्तव में विकासशील देशों के विकास के अन्तर्गत सामाजिक सुधार भी एक आवश्यक अवधारणा है, जो आर्थिक सुधार के ज्यादा पास है । वास्तव में एक विकसित राजनीतिक देश में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया हेतु आर्थिक और सामाजिक सुधार साथ-साथ चलता है । सामाजिक सुधार से हमारा तात्पर्य समाज में रहने वाले लोगों के सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाते हुये उन्नति करने से है। सामाजिक सुधार और सामाजिक परिवर्तन प्रगैतिहासिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की विशेषता रही है, भले ही उसकी गति कहीं तीव्र तो कहीं मद हो सकती है । यद्यपि सभी समाजों में सामाजिक-परिवर्तन शुरू से ही होता रहा है, परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के कारण उसकी गति बढ़ी है।

सामाजिक सुधार के सूचक - सामाजिक सुधार के सूचक डैनियल लर्नर (Deniel Lerner) के अनुसार निम्नलिखित हैं: -

(i) नगरीयकरण (Urbanization)

(ii) समानुभूति (Empathy)

(iii) जन-सहभागिता (Mars Participation)

(iv) शिक्षा (Literacy)

सामाजिक सुधार समाज में रहने वाले लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारना है। सभी राष्ट्रों की अपनी-आनी सामाजिक नीति होती है, जिसके कुछ नियत कार्य होते हैं। इस नीति के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख नियत कार्य निम्नलिखित है जैसे -

(i) सामाजिक सेवाओं का प्रसार एवं उनका गुणात्मक सुधार उदाहरणार्थ शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, आवास व पोषाहार आदि में,

(ii) कमजोर वर्ग के लोगों का कल्याण और विकास उदाहरणार्थ जनजाति, अनुसूचित जाति आदि,

(iii) सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान,

(iv) सामाजिक परिवर्तन,

(v) स्थानीय स्तर और स्थानीय समुदाय के विकास हेतु पूरक कल्याण सेवाएं आदि।

(vi) सामाजिक बुराई को दूर करना उदाहरणार्थ - जातिवाद, दहेजप्रथा, बाल विवाह, छुआछूत आदि।

वर्तमान में सामाजिक सुधार हेतु भारत सरकार द्वारा विभिन्न विषयों से सम्बन्धित नीतियां, कार्यक्रम, योजनाएं एवं परियोजनाएं आदि का निर्माण करवाया जाता है । सुधार के कारण ही इनका क्रियान्वयन होता है । उदाहरणार्थ वर्तमान में कार्यरत 'बीस-सूची कार्यक्रम' प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, परिवार कल्याण कार्यक्रम, ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि । इनके अलावा भारतीय संविधान के भाग चार में वर्णित नीति निर्देश तत्वों में भी सामाजिक सुधार से सम्बन्धित प्रावधानों का उल्लेख है । विकासशील देशों हेतु सामाजिक सुधार एक आवश्यकता है। इन देशों में पिछड़ेपन के कारण सरकार एवं प्रशासन चाहते हुए भी सुधार और प्रगति नही कर पाए हैं। वास्तव में यहां शिक्षा का अभाव है, जिसके कारण जन-सहभागिता एवं जन-सहभागिता एवं जनसहयोग का भी अभाव है । जनता परम्पराओं एवं पिछड़ेपन से ग्रस्त है क्योंकि इन देशों में शिक्षा का अभाव है। सामाजिक सुधार हेतु सहयोग, समन्वय, शिक्षा, वहभागिता आदि अत्यन्त आवश्यक होती है । विकासशील देशों की जनता अन्य देशों की तुलना में गरीबी, बेरोजगारी, पिछड़ेपन, अशिक्षा आदि से ग्रस्त है । अत: यह अपनी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाते हुए विकास करना चाहते हैं। विकास हेतु सामाजिक सुधार की अवधारणा आवश्यक तत्व है। विकासशील देशों का विकास वर्तमान में विश्वहित में है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 4. आर्थिक सुधार से हमारा तात्पर्य है : -

क. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि से होता है।

ख. जनसंख्या और कुल वास्तविक आय दोनों की वृद्धि [ ]

ग. को बतलाती है।

घ. एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय दीर्घकाल में बढ़ती है।

ङ. आर्थिक सुधार से प्रेरित होता है।

प्रश्न 5. भारत में राजनीतिक सुधार की अवधारणा उपज है।

क. द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्

ख. स्वतन्त्रता के पश्चात् [ ]

ग. प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात्

घ. वर्तमान समय में

प्रश्न 6. निम्नलिखित वाक्यों के आगे इंगित कीजिए कि वे सही है या गलत?

क. राजनीतिक सुधार आर्थिक सुधार की पूर्व शर्त है।

ख. राजनीतिक सुधार औद्योगिक सुधार के रूप में।

ग. राजनीतिक सुधार लोकतंत्र के निर्माण के रूप में है।

घ. सामाजिक सुधार समाज में रहने वाले लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारने से है।

2.5 प्रशासनिक सुधारों की व्यापक समीक्षा

प्रशासनिक सुधार की अवधारणा के स्पष्टीकरण का मूल लोक नीति के वैज्ञानिक विश्लेषण एवं अध्ययन में सहायता करना है । विशेषत : सुधार की धारणा को सुधारात्मक प्रशासन से अलग रखा जाना चाहिए । वैसे सुधारात्मक प्रशासन की धारणा भी उतनी स्पष्ट नहीं है, जितनी होनी चाहिये और अनेक विषयों, परिप्रेक्ष्यों, पद्धतियों आदि का समावेश हो गया है । विलियम वुड अनेक कारणों से सुधारात्मक प्रशासन की प्रचलित धारणा का विरोध किया है। इससे जहां एक ओर नियामक प्रशासन की अवहेलना है, वहां दूसरी ओर उसमें कार्यरत लोक सेवकों का मनोबल गिरा है । ऐतिहासिक दृष्टि से सुधारात्मक प्रशासन को नये की स्वतन्त्रता प्राप्ति से जोड़ देना भी उपयुक्त है । इससे यह भावना बल पकड़ है कि नियामक प्रशासन एक बाधक मात्र है । ला पलम्बरा ने भी इसी प्रकार 'आधुनिकता' या 'आधुनिकीकरण' जैसे शब्दों को समस्यात्मक माना है । कभी-कभी उसे सुधार का पर्याय । बना दिया जाता है । एक आधुनिक व्यवस्था के अनेक अर्थ बताये जाते है जैसे शहरी एवं प्रौद्योगिक, उच्च मात्रा में राजनीतिक बहुलता, राष्ट्रीय उत्पादन का सूचकांक, राज में लोकप्रिय सदभाग आदि से युक्त व्यवस्था । ला-पलम्बरा के अनुसार दोनों धारणाऐं संस्कृति बद्ध, निर्धारणात्मक, एक मार्गीय तथा अस्पष्ट है । वेबरीय प्रारूप भी सही दिशा निर्देश नहीं करता। बौद्धिकता एवं योग्यता पर आधारित नौकरशाही असन्तुलन अन्य कर सकती है । इसमें राजनीति शक्ति एवं विचारवाद को गौण बना दिया जाता है । इसलिए तथाकथित आधुनिकीकृत नागरिक सेवा विकास के लिये अनुपयुक्त सिद्ध हो है । लोकनीति की दृष्टि से 'आधुनिकीकरण' की धारणा ने राजनैतिक एवं आर्थिक तत्वों को प्रधान बनाकर उसका अपने मूल विषय से ध्यान हन दिया है ।

अत: प्रशासनिक सुधार की अवधारणा को इन सबसे पृथक् मानकर अध्ययन किया जाना चाहिए । यह प्रशासनिक सुधार प्रशासनिक परिवर्तन का एक रूप है जिसमें यथास्थिति को

छोडकर प्रशासन आगे की ओर बढ़ता है । वह इस योग्य हो जाता है कि प्रदत्त लक्ष्यों को प्राप्त कर सके । ये लक्ष्य सुधार सम्बन्धी विकासोत्तर भी हो सकते है । इसमें सभी प्रकार के प्रशासन नियामक विकासात्मक आदि आ जाते है फिर भी यह धारणा विकासशील देशों के सन्दर्भ में अधिक प्रयोग की जाती है । इसका निहितार्थ यह भी है कि विकसित देशों में भी प्रशासनिक सुधार होता है । यह मूलत : एक आन्तरिक धारणा है । इसमें प्रशासन को राजनीति, अर्थव्यवस्था । आदि के बजाय प्रशासन की ही दृष्टि से देखा जाता है । सुधार का स्त्रोत स्वयं प्रशासन अथवा बाहरी हो सकता है । किन्तु उसका स्वरूप स्वाभाविक एवं आकृत्रिम होना चाहिये । व्यवहार में प्रशासनिक सुधार संगठन, संरचनाओं, भर्ती, प्रक्रियाओ, क्रियाविधियों, प्रशिक्षण, पद्धतियों, व्यवसायिक कुशलताओं आदि से अभिव्यक्त होता है । इसका प्रारम्भ है, किन्तु अन्त नहीं । प्रशासनिक सुधार परिपक्वता ग्रहण करने पर लक्ष्योमुखता एवं स्वायत्ता की ओर बढ़ने लगता है । यह देखने में आया है कि अभी तक अनेक देशों में यह स्थिति नहीं आयी है । इसी कारण प्रशासनिक सुधार की धारणा को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

2.6 इकाई सारांश

प्रशासनिक सुधार नागरिकों की उन्नति के लिए, समाज की प्रगति के लिए, राष्ट्र की योजना को सफल बनाने के लिए, आर्थिक प्रगति, तथा जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए हमें नीति, विधि, नियम समानता तथा स्वतन्त्रता आदि सब कुछ प्रदान करता है । प्रशासनिक सुधार लोकनीति की वह शाखा है जो किसी देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सुधार से सम्बन्धित है । यह एक नया विषय है जिसे कुछ दशक पहले शायद ही कोई जानता हो । प्रशासनिक सुधार के अन्तर्गत प्रमुख रूप से तीन तरह के सुधार आते है ।

(i) आर्थिक सुधार

(ii) राजनीतिक सुधार

(iii) सामाजिक सुधार

इन तीनों का अध्ययन हम पीछे पृथक-पृथक रूप में कर चुके है ।

वर्तमान समय में सुधार की अवधारणा ने सभी विकासशील देशों में प्रशासन की व्यवस्था को प्रभावित कर लिया है । सुधार को सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने वाला अभिकर्ता माना गया है । इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है । सभी विकासशील देशों द्वारा स्वयं के विकास एवं हेतु सुधार की अवधारणा को अपनाया गया है । सन 1960 से यह अवधारणा ज्यादा महत्वपूर्ण बन गयी है ।

भारत में प्रशासनिक सुधार का महत्व इतना हो गया है कि यहां इसको प्रशासनिक संरचनाओं, संगठनों, नीतियों, योजनाओं, कार्यों, परियोजनाओं आदि निर्धारित सुधारात्मक उद्देश्यों और लक्ष्यों के रूप में जाना गया है । प्रशासनिक सुधार वर्तमान में भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तंत्र के सम्पूर्ण सुधार में लगा हुआ है । अत : हम कह सकते है कि प्रशासनिक सुधार वह प्रशासन है जो मानवीय और सामाजिक सुधार की ओर अभिमुख है । यह परिवर्तन का सक्रिय अभिकर्ता है ।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर आते है, कि सुधार की यह प्रक्रिया विकासशील देशों हेतु आवश्यक है । वर्तमान में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के विकास एवं प्रगति की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए । प्रशासनिक सुधार का विचार आज समस्त लोकनीति सम्बन्धी साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण हो रहा है । किन्तु प्राय : यह देखने में आ रहा है कि प्रशासनिक सुधार की अवधारणा का उपयोग विकासशील राष्ट्रों द्वारा हो रहा है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन की चुनौती का सामना कर रहे है । वास्तव में सुधारात्मक कार्यक्रमों की सफलता या असफलता जन सहभागिता और जन-सहयोग पर निर्भर करती है ।

2.7 इकाईगत अभ्यास कार्य

प्रश्न 7. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में प्रशासनिक सुधार की व्याख्या करो ।

प्रश्न 8. आर्थिक सुधार के बारे में तुम क्या जानते हो? वर्णन करो ।

प्रश्न 9. लोकनीति के संदर्भ में भारत में प्रशासनिक सुधार के प्रकारों की व्याख्या करो ।

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न (1) स, (2) अ, (3) स, (4) स, (5) अ, (6) अ सही, ब सही, स सही, द सही

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. महता, वाकई.अस : एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड रिफोर्मस, (जयपुर छिगया प्रकाशन 1973)
2. खान, जियाउद्दीन, वर्मा, एस.एल : प्रशासनिक विचारधाराएं, भाग-2, (जयपुर, राजस्थन हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1979)
3. भट्टाचार्य, मोहित : ब्यूरोक्रेसी एण्ड डिवेलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, (नई दिल्ली, उप्पल प्रकाशन, 1979)
4. सप्रू, आर. के. : डिवेलपमेंट एण्ड डिवेलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, (चंडीगढ़, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिशर्स,1977)
5. कैडन, गैरलडई : "द डायनमिक्स ऑफ पब्लिक पॉलिसी गाइड लाइन्स टू करेन्ट ट्रान्सफरमैशन्स इन थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस", (न्यूयार्क, होल्ट, राइन हाट एण्ड विन्सटन, सन्स, 1971)
6. चटर्जी, एस. के. : डिवेलपमैन्ट एडमिनिस्ट्रेशन : विद् स्पेशल रेफरैन्स टू इण्डिया, (नई दिल्ली, सुर्जीत पब्लिकेशन्स, 1981)

(1) सुधार प्रतिवेदन

गोरवाला प्रतिवेदन :

सन 1951 में श्री ए. डी. गोरवाला ने भारतीय लोकनीति का अध्ययन कर 70 पृष्ठों वाला एक प्रतिवेदन 'लोकनीति' पर प्रतिवेदन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री गोरवला ने भारत में विद्यमान लोकनीति की व्यवस्था और नौकरशाही ढांचे की मौलिक धारणाओं को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए विद्यमान ढांचे में व्याप्त बुराईयों को दूर करने एवं उसे और अधिक दृढ़ तथा सक्षम बनाने का सुझाव दिया । श्री गोरवालाने भारत में प्रशासकीय कार्यो की गति को दूत बनाने के लिए मुख्य रूप से निम्मलिखित सुझाव दिए थे:

(क) नीति निर्माण और उसकी क्रियान्विति में स्पष्ट अंतर करना,

(ख) नियुक्तियों के लिए चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग करना,

(ग) आर्थिक असैनिक सेना की स्थापना करना,

(घ) अखिल भारतीय सेवा के कर्मियों की अपने राज्य से दूसरे राज्य में नियुक्तियां करना,

(ङ) मंत्रियों का उच्च असैनिक पदाधिकारियों से परामर्श करना,

(च) लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता परीक्षा में सामान्य प्रश्नपत्रों के लिए अधिक अंक निर्धारित करना,

(छ) नियोजन में उत्तरदायित्व की विकेंद्रीकृत व्यवस्था को स्थापित करना,

(ज) सचिवालय द्वारा विभागाध्यक्षों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना,

(झ) संसदीय नियंत्रण का लोक लेखा और प्राक्कलन समितियों के माध्यम से उचित संगठन करना।

एपिलबी प्रतिवेदन :

सितम्बर सन 1952 में सरकार ने भारत में प्रशासनिक सुधारों पर विचार करने के लिए भी पाल एपिलबी की नियुक्ति की । श्री एपिलबी ने विभिन्न सरकारी दस्तावेजों और पत्रों का अध्ययन किया, सैकड़ों अधिकारियों और मंत्रियों से समालाप किया, भारत में 9 ,000 मील का दौरा किया तथा दिल्ली से बाहर 10 राज्यों में भी भ्रमण किया। 15 जनवरी, सन 1953 को श्री एपिलबी ने 30,000 शब्दों का प्रतिवेदन 'भारत में लोकनीति सर्वेक्षण का प्रतिवेदन' सरकार को प्रस्तुत किया । प्रतिवेदन के कुछ सुझाव इस प्रकार है :

(क) प्रशासनिक क्षेत्र में प्रत्याधिकृत का सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए,

(ख) नियंत्रक महालेखा पाल द्वारा प्रशासकीय कार्यो में कम हस्तक्षेप किया जाना चाहिए, उसका प्रतिवेदन छोटा एवं चयनात्मक होना चाहिए,

(ग) मंत्रालयों में वित्तीय एवं बजट मामलों की योग्यता का विकास किया जाना चाहिए। यह कार्य वित्त अधिकारी की देखरेख में होना चाहिए,

(घ) संघीय सचिवालय मे कार्यो को शीघ्र निपटाने के लिए अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए,

(ङ) लोकसेवा आयोग द्वारा भर्ती के कार्यो को ठीक प्रकार से संचालित करने के लिए अधिक अमला दिया जाना चाहिए। इसकी नियुक्ति के लिए योग्य प्रत्याशी का रजिस्टर रखना चाहिए,

(च) लोक उपक्रमों से सम्बन्धित लेखा परीक्षा पद्धति में परिवर्तन किया जाना चाहिए, नियन्त्रक महालेखा पाल के स्थान पर यह कार्य लोक उपक्रम द्वारा, ही किया जाना चाहिए ।

संथानम् समिति प्रतिवेदन :

भ्रष्टाचार भारतीय प्रशासन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा है । सन 1962 में सरकार ने भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विद्यमान रोधकों की जांच करने और विरोधी कदमों को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए आवश्यक उपाय सुझाने, लिए श्री के. संथानम् की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की । सन 1964 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । समिति ने भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए अनेक सुझाव प्रस्तुत किए है जिनमें से दो सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है । प्रथम, केन्द्रीय आयोग की स्थापना और द्वितीय, मंत्रियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की । जांच करने के लिए राष्ट्रीय नायिका की स्थापना करना। समिति ने सतर्कता आयोग। के सम्बन्ध में निम्मलिखित सुझाव दिए है.

1. केन्द्रीय सतर्कता आयोग को अपने कार्यो के संपादन में सरकारी नियन्त्रण से पूर्णतः मुक्त रखा जाना चाहिए । प्रशासनिक दृष्टि से उसे गृह मंत्रालय के अधीन रखा जा सकता है परन्तु वह किसी भी मंत्री, के प्रति उत्तरदायी नहीं होना चाहिए ।
2. आयोग का सम्बन्ध प्रशासन की दो महत्वपूर्ण समस्याओं से चाहिए । प्रथम भ्रष्टाचार की रोकथाम और नागरिक सेवकों में प्रामाणिकता को रखना, द्वितीय यह देखना कि विपिन अधिकारियों को जिन नियमों के अन्तर्गत अधिकार दिए गए है उनका न्यायोचित और उचित रूप से पालन किया जा रहा है अथवा नहीं।
3. सतर्कता आयोग में तीन निदेशालय होने चाहिएं । प्रथम नागरिकों की साधारण शिकायतों पर विचार करे, द्वितीय निदेशालय सतर्कता सम्बन्धी विषयों पर और तृतीय निदेशालय केन्द्रीय पुलिस सेवा का कार्य करे ।

इकाई - 3

भारत में विकास नीतियां: ओद्यौगिक और कृषिगत नीतियों के विशेष संदर्भ में

इकाई की रूपरेखा

3.0 - उद्देश्य

3.1 - प्रस्तावना

3.2 - भारत में विकास नीतियां

3.2.1 राष्ट्रीय योजना समिति की रिपोर्ट

3.2.2 विकास की बम्बई योजना

3.2.3 जनता योजना

3.2.4 विकास संबंधी संवैधानिक दिशा निर्देश

3.2.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था

3.2.6 विकास की नेहरूवादी नीति

3.2.7 विकास की गांधीवादी नीति

3.2.8 विकास की वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीति

3.2.9 पंचवर्षीय योजनाएं

3.3 - भारत की औद्योगिक नीति- 1

3.3.1 सन् 1948 की औद्योगिक नीति

3.3.2 सन् 1956 की औद्योगिक नीति

3.3.3 जनता सरकार की औद्योगिक नीति: 1977

3.3.4 कांग्रेस सरकार की औद्योगिक नीति: 1980

3.3.5 मोर्चा सरकार की औद्योगिक नीति: 1990

3.4 - भारत की औद्योगिक नीति- 2: नई औद्योगिक नीति तथा उदारीकरण की प्रक्रिया

3.5 - भारत की कृषिगत नीति- I

3.6 - भारत की कृषिगत नीति- II: नई राष्ट्रीय नीति

3.7 - 'गेट' व विश्व व्यापार संगठन का प्रभाव

3.7.1 सामान्य परिचय

3.7.2 औद्योगिक क्षेत्र में प्रभाव

3.7.3 कृषि क्षेत्र में प्रभाव

3.8 - सारांश

3.9 - अभ्यास प्रश्न

3.8 - संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

यह इकाई भारत में आर्थिक विकास संबंधी नीतियों की व्याख्या से संबन्धित है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. भारत में विकास संबंधी विभिन्न नीतियों को समझ सकेंगे ।
2. भारत की प्रारंभिक औद्योगिक नीति की जानकारी के साथ ही नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत उदारीकरण की प्रक्रिया द्वारा आर्थिक विकास का विश्लेषण कर सकेंगे ।
3. भारत की पूर्व कृषिगत नीति तथा वर्तमान नीति के विभिन्न पक्षों की पहचान कर सकेंगे ।
4. विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गठित किए गए "गेट" समझौता और उसके पश्चात गठित विश्व व्यापार संगठन की सामान्य जानकारी प्राप्त करने के साथ ही भारत के औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों के प्रभावों से परिचित हो सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

विकास की दृष्टि से विश्व दो भागों में विभाजित किया गया। है- (1) विकसित देश, तथा (2) कम विकसित या विकासशील देश । यह विभाजन सामान्यतया किसी देश की प्रति व्यक्ति आय पर आधारित किया जाता है । भारत को कम विकसित अथवा विकासशील देशों की श्रेणी में रखा जाता है । विश्व बैंक की सन 2003 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार प्रति व्यक्ति 755 डालर या इससे कम आय वाले देश कम विकसित या विकासशील देश माने गए । सन् 2002 में भारत की प्रति व्यक्ति आय (जी.एम.पी.) 460 डॉलर आंकी गई ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने सन् 1951 में नियोजित विकास का मार्ग अपनाया है । भारत में विकास संबंधी नीतियों के अंतर्गत औद्योगिक व कृषिगत नीतियां मुख्य हैं । भारतीय अर्थव्यवस्था विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता व सामाजिक न्याय के कारण विकासशील देशों में सबसे अधिक विकसित अर्थव्यवस्था मानी जाने लगी है । सन् 1991 से भारत में उदारीकरण की नीति अपनाई जा रही है । इसके कारण औद्योगिक व कृषिगत नीतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है । "गेट" व विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार के नियम निर्धारित करने का प्रयास किया जा रहा है । इसका व्यापक असर भारत की औद्योगिक व कृषि नीति पर पड़ा है । विदेश कंपनियों को भारत में निवेश करने पर बढ़ावा दिया जा रहा है तथा देश में निजी क्षेत्रों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

3.2 भारत में विकास नीतियां' -

आजादी के पहले भारत की अर्थव्यवस्था गतिहीन व पिछड़ी हुई थी । सन् 1947 से भारत में इस दिशा में प्रगति के प्रयास किए गए । विशेषकर पंचवर्षीय योजना के द्वारा आर्थिक विकास हेतु कई कदम उठाए गए । भारत के विकास हेतु अनेक नीति दस्तावेज प्रस्तुत किए गए तथा राज्य द्वारा विकास नीतियां बनाई गई । इनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं ।

3.2.1 राष्ट्रीय योजना समिति की रिपोर्ट

जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में सन 1938 में गठित राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु कई रिपोर्टे प्रकाशित की । समिति ने अर्थव्यवस्था के औद्यौगिकरण पर बल दिया । आधारभूत एवं बड़े उद्योगों तथा खनिज संसाधन, रेल, जल व नौ परिवहन, दूरसंचार, पेट्रोलियम आदि पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण स्थापित किए जाने की बात की । कुटीर उद्योगों को संरक्षण देने को कहा गया । जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की सिफारिश के साथ ही सहकारी खेती को बढ़ावा देने तथा कृषकों को उपज का न्यूनतम गारंटी मूल्य देने का प्रस्ताव किया । ऋण के रूप में विदेशी पूंजी प्राप्त करने पर भी जोर दिया गया । स्वतंत्र भारत की औद्योगिक व कृषि नीति पर इस समिति की सिफारिशों का अच्छा प्रभाव दिखाई देता है ।

3.2.2 विकास की बम्बई योजना

सन् 1944 में देश के आठ बड़े उद्योगपतियों ने भी आर्थिक विकास की एक योजना तैयार की थी जो बम्बई योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई । इस योजना में अनेक बातें राष्ट्रीय योजना समिति जैसी ही थी । परन्तु निजी क्षेत्र को पर्याप्त भागीदारी दिए जाने तथा राज्य के स्वामित्व को सीमित रखने पर जोर दिया गया । इस योजना में 1944 से 1959 के 15 वर्षों में औद्योगिक उत्पादन 500 प्रतिशत, कृषि उत्पादन 23 प्रतिशत एवं सेवाओं को 200 प्रतिशत बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया । इन दोनों योजनाओं में भारी व पूंजीगत उद्योगों को उच्च प्राथमिकता देते हुए विदेशी पूंजी के उपयोग का समर्थन किया गया तथा आधारभूत ढांचे के विकास पर जोर दिया गया ।

3.2.3 जनता योजना

सन् 1944 में ही 'जनता योजना' के नाम से एक विकास नीति का दस्तावेज रखा गया था । इसमें श्रम की उत्पादकता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई । इस योजना में कृषि के पश्चात उपभोक्ता वस्तुओं को व अंत में पूंजीगत वस्तुओं को प्राथमिकता दी गई ।

3.2.4 विकास संबंधी संवैधानिक दिशा निर्देश

भारत के संविधान में उल्लेखित नीति निदेशक सिद्धांतों में देश के विकास से संबंधित दिशा निर्देश शामिल है । इनके अनुसार समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व का नियंत्रण व वितरण इस तरह किया जाए कि सबका भला हो । धन व उत्पादन के साधन कुछ ही हाथों में न रहें । पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान रूप से जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों। रोजगार व शिक्षा का अधिकार, बेरोजगारी, बुढ़ापा व अभाव की स्थिति में राज्य सहायता, 14 वर्ष तक निशुल्क शिक्षा, नागरिकों का जीवन स्तर ऊंचा करना, कृषि व पशुपालन को संगठित करना, पर्यावरण व अन्य जीवों की सुरक्षा, ग्राम पंचायतों का गठन, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का विकास आदि के लिए भी इन सिद्धांतों में निर्देश दिए गए हैं ।

3.2.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारत में विकास की नीति के अंतर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया है । मिश्रित अर्थव्यवस्था से तात्पर्य है- जहां सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों को आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने का अवसर दिया जाए । भारत में जहां सरकार द्वारा संचालित उद्योग व अन्य उपक्रम हैं, वहीं पर निजी क्षेत्र के उद्योग भी कार्यरत हैं । मिश्रित अर्थव्यवस्था में संपूर्ण आर्थिक प्रणाली तीन भागों में विभाजित हो जाती है । कुछ उद्योग ऐसे हो सकते हैं जो पूर्णतया सरकारी स्वामित्व में हो तथा कुछ उद्योगों में राज्य एवं निजी उद्यम का साझा स्वामित्व व प्रबंध हो सकता है । कुछ अन्य उद्योग पूर्णतया निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिए जाते हैं, परन्तु इन पर भी राज्य का सामान्य नियंत्रण व नियमन होता है । मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी एवं समाजवादी दोनों विचारधाराओं का मिश्रित उपयोग देश के विकास में किया जाता है । भारत को मिश्रित अर्थव्यवस्था का अच्छा उदाहरण समझा जा सकता है । कृषि तथा लघु उद्योगों के साथ ही अनेक बड़े उद्योगों तथा टेक्सटाइल, ऑटो, इलेक्ट्रीकल व इलेक्ट्रोनिक्स, इस्पात, खाद्यान्न आदि अनेक क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को पर्याप्त छूट दी गई है । परन्तु आधारभूत संरचना के क्षेत्र में तथा सिंचाई, दूरसंचार, विद्युत, रेल परिवहन, पेट्रोलियम तथा अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण बीमा व बैंकिंग और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उद्योगों में सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई है । कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए अनिवार्य वस्तुओं के वितरण पर भी सरकार का निमंत्रण रखा गया । मिश्रित अर्थव्यवस्था वस्तुत: एक 'नियोजित अर्थव्यवस्था' (Planned economy) होती है । अत: पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा इस व्यवस्था का संचालन किया गया । परन्तु सन् 1991 से उदारीकरण की नीति अपनाए जाने के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के लिए निर्धारित अनेक उद्योगों तथा पेट्रोलियम, दूरसंचार, बैंकिंग आदि को निजी क्षेत्र के लिए भी खोला जा रहा है ।

3.2.6 विकास की नेहरूवादी नीति-

भारत में आजादी के पश्चात देश के विकास हेतु बड़े उद्योगों का विकास करने की नीति अपनाई गई । इसे विकास का नेहरू मॉडल भी कहते हैं । नेहरू का मानना था कि विकास के लिए अर्थव्यवस्था की बुनियाद मजबूत की जाए । नेहरू की इसी रणनीति के कारण विश्व के ओदयोगिक राष्ट्रों में भारत का दसवां स्थान बना । इस नीति के मुख्य पक्ष हैं-

1. सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करते हुए औद्योगिक क्षमता का विकास करना
2. बीज-खाद तकनीक का उपयोग कर कृषि उत्पादकता बढ़ाना ।
3. सिंचाई, शक्ति, परिवहन व संचार आदि आधारभूत सुविधाओं का विकास करना ।
4. आधुनिक औद्योगिक ढांचे के विकास हेतु विज्ञान एवं तकनीकी का विकास करना ।

नेहरू विकास के लिए बड़े बांधों, बड़े कारखानों, आधुनिक प्रोद्यौगिकी व विदेशी पूंजी के उपयोग के समर्थक थे । देश की स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1977 तक यानि 40 वर्षों तक नेहरूवादी विकास नीति भारत की अर्थव्यवस्था का आधार बनी रही ।

3.2.7 विकास की गांधीवादी नीति-

आचार्य श्रीमन् नारायण ने सन् 1944 में गांधीवादी विकास की योजना प्रस्तुत की थी। विकास की गांधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज को अधिकतम आत्म निर्भर बनाना था । इस हेतु कृषि में सुधार करना, ग्रामोद्योगों का पुनर्गठन व विकास करना तथा ग्राम स्वराज की स्थापना करना प्रमुख कार्य माने गए । खाद्यानों में राष्ट्रीय आत्म निर्भरता और खाद्य पदार्थों में अधिकतम क्षेत्रीय स्वावलंबिता प्राप्त करना लक्ष्य रखा गया । भू स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन, काश्तकारी प्रणाली में बदलाव, जोतों की चकबंदी, डेयरी उद्योग को बढ़ावा देने को कहा गया । कुटीर उद्योगों को सब प्रकार से बढ़ावा देने की नीति के साथ ही कुछ मूल उद्योगों यथा प्रतिरक्षा, जल, विद्युत, खानें, मशीनरी, भारी इंजीनियरिंग व भारी रसायन के महत्व को भी स्वीकार करते हुए इनको सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् सरकारी स्वामित्व व प्रबंध में रखा जाना प्रस्तावित किया गया । देश में सन् 1975 के आपातकाल के पश्चात सन् 1977 में सत्ता में आयी जनता पार्टी की सरकार ने नेहरू मॉडल की अपेक्षा गांधीवादी योजना पर कार्य करने का प्रयास किया । इसके कुछ विचार छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में सम्मिलित किए गए ।

3.2.8 विकास की वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीति-

जुलाई, 1991 में देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव व वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के कार्यकाल में आर्थिक सुधारों की नई नीति अपनाई गई । गेट व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (WTO) के अंतर्गत बदलती हुई विश्व- अर्थव्यवस्था के परिदृश्य से सामंजस्य करते हुए निजीकरण पर जोर दिया जाने लगा । प्रतिस्पर्धा व कार्यकुशलता बढ़ाते हुए देश के विकास हेतु उदारीकरण की नीति स्वीकार की गई । प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा दिया गया । उद्योगों के क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण को कम करते हुए निर्यात पर प्रतिबंध कम किए गए तथा बीमार सार्वजनिक उद्योगों के विनिवेश का मार्ग अपनाया गया । विकास की इस नीति के अंतर्गत निजी क्षेत्र को महत्व प्रदान करते हुए निर्यात प्रेरित नीति अपनाई गई । इस संबंध में आगे इकाई अनुभाग 13.4 में भी विस्तार से चर्चा की गई है ।

3.2.9 पंचवर्षीय योजनाएं-

सन् 1951 से भारत ने नियोजित विकास का मार्ग अपनाया गया । देश के समग्र विकास की दृष्टि से पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई । प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता व सामाजिक न्याय की प्राप्ति विशिष्ट उद्देश्य तय किए गए । इस दृष्टि से विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि, सिंचाई, शक्ति, परिवहन, आधारभूत व बड़े उद्योगों का विकास, निर्धनता का उन्मूलन, आत्मनिर्भरता, कृषिगत उत्पादन व रोजगार संवर्धन, पेयजल, पंचायत राज संस्थाओं का विकास, पर्यावरण सुरक्षा, महिलाओं, अनुसूचित जाति व पिछड़े वर्ग के विकास आदि कार्य हाथ में लिए गए । वर्तमान में दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002 - 2007) में विकास दर को बढ़ाने के साथ ही निर्धनता

अनुपात को घटाना, लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना, जनसंख्या दर में कमी, शिशु मृत्यु एवं मातृत्व मृत्यु दर घटाना, प्राथमिक शिक्षा का पूर्ण विस्तार, साक्षरता दर में वृद्धि, वन विस्तार, पेयजल सभी गांवों तक पहुंचाना तथा बड़ी नदियों की सफाई करवाना आदि लक्ष्य रखे गए हैं। दसवीं पंचवर्षीय योजना में विकास की औसत दर 8 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया है। इस हेतु विनियोग की दर 32.6 प्रतिशत करना तय किया गया। यह सकल घरेलू बचत से 2.8 प्रतिशत ज्यादा होने के कारण विदेशी निवेश को बढ़ाना होगा। विनिवेश प्रक्रिया जारी रखते हुए अनेक सरकारी उपक्रम निजी क्षेत्र को देने होंगे। लघु उद्योगों के लिए आरक्षण नीति समाप्त करते हुए विनियोग के विस्तार का लक्ष्य रखा गया है।

3.3 भारत की औद्योगिक नीति- 1

देश के आर्थिक विकास में औद्योगिक नीति का अत्यधिक महत्व होता है। औद्योगिक नीति से सरकार की विभिन्न औद्योगिक प्राथमिकताओं की जानकारी होती है। समयानुसार औद्योगिक नीति में बदलाव भी आवश्यक होता है ताकि देश को तेजी से विकास की ओर ले जाया जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात समय-समय पर निम्नलिखित औद्योगिक नीतियों को लागू किया गया।

3.3.1 सन् 1948 की औद्योगिक नीति-

6 अप्रेल 1948 को औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था को स्वीकार किया गया अर्थात् निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र साथ-साथ कार्य करेंगे। जिससे औद्योगिक विकास तीव्र गति से बढ़ सके। इस नीति के अंतर्गत बड़े उद्योगों की चार श्रेणियां बनाईं। प्रथम श्रेणी में अस्त्र-शस्त्र, अणु शक्ति, रेल यातायात शामिल थे। जिन पर सरकार का स्वामित्व माना गया। द्वितीय श्रेणी में लोहा व इस्पात, कोयला, समुद्री जहाज व वायुयान, दूरसंचार सामान व खनिज तेल थे। जिनको दस वर्षों तक निजी क्षेत्र हेतु रखा गया। परन्तु इनके लिए नए कारखाने सरकार ही खोलेगी। तीसरी श्रेणी के 18 उद्योग यथा सूती व ऊनी वस्त्र, कागज, रासायनिक, सीमेंट आदि निजी क्षेत्र में रहते हुए भी सरकार के नियंत्रण में रहेंगे। शेष उद्योग चौथी श्रेणी में रखे गए। जो उद्योगपतियों द्वारा चलाए जा सकेंगे। परन्तु राज्य का सामान्य नियंत्रण रहेगा।

3.3.2 सन् 1956 की औद्योगिक नीति

सन् 1956 में औद्योगिक नीति संबंधी दूसरा प्रस्ताव रखा गया। जिसमें समाजवादी ढांचे पर आधारित आर्थिक नीतियों को स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव के अंतर्गत उद्योगो का वर्गीकरण, निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाईयों को राज्य की सामाजिक- आर्थिक नीतियों के अनुरूप कार्य करने का परामर्श, ग्रामीण और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों का संतुलित एवं समन्वित विकास आदि पर बल दिया गया। बदली हुई परिस्थिति के अनुसार बड़े उद्योगों की तीन श्रेणियां बनाई गईं। प्रथम सूची के आधारभूत ढांचे, परिवहन व खनिज से संबंधित 17 उद्योगों के भावी विकास का दायित्व सरकार को दिया गया।

सरकार निजी क्षेत्र का भी सहयोग ले सकेगी । दूसरी सूची में रखे गए । 12 उद्योगों को (खाद, मशीन, दवा, समुद्री व सड़क परिवहन आदि) के लिए तय हुआ कि इन्हें धीरे- धीरे सरकार अपने स्वामित्व में लगी । शेष उद्योग निजी क्षेत्र के लिए छोड़े गए । परन्तु राज्य भी इस क्षेत्र में चाहे तो प्रवेश कर सकेगा । सन् 1973 में लाईसेंस नीति में संशोधन कर उदारीकरण की शुरुआत की गई । 19 उद्योग समूहों में बड़े औद्योगिक घरानों व विदेशी कंपनियों को प्रवेश की अनुमति दी गई । इस नीति, के फलस्वरूप सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र का भी विस्तार हुआ ।

3.3.3 जनता सरकार की औद्योगिक नीति: 1977

23 दिसम्बर, 1977 को जनता सरकार ने एक नई औद्योगिक नीति घोषित करते हुए इस नीति- वक्तव्य में कहा कि पिछली नीति के कारण बेरोजगारी, ग्राम व नगर की असमानता और रुग्ण औद्योगिक इकाइयों की संख्या में वृद्धि हुई तथा बड़े नगरों से दूर औद्योगीकरण का प्रसार बहुत धीमा रहा है । इस औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य लघु तथा कुटीर उद्योगों को बढ़ावा व उनके लिए उचित तकनीक का विकास, खादी तथा ग्राम उद्योगों को पुन: व्यवस्थित करना, बड़े व्यापारिक औद्योगिक घराने की एकाधिकार प्रवृत्ति को रोकने, तकनीकी आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने एवं रुग्ण औद्योगिक इकाइयों के प्रति चयनात्मक दृष्टिकोण अपनाने तथा स्वामित्व एवं प्रबंध में श्रमिकों का सहयोग आदि मुख्य थे । इस नीति के अंतर्गत उद्योगों को जिला केन्द्रों तक ले जाया गया । जिला उद्योग केन्द्र जिलों में कच्चे माल, मशीनरी व वित्त की व्यवस्था करेंगे । इस नीति से विनियोग का माहौल बना, पूंजीगत माल का आयात बढ़ा और उद्योगों में नई इकाइयां प्रारंभ हुई ।

3.3.4 कांग्रेस सरकार की औद्योगिक नीति: 1980

जनवरी, 1980 में सरकार परिवर्तन के पश्चात कांग्रेस पार्टी की सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की । इस नीति के मुख्य उद्देश्य आधुनिकीकरण, विस्तार और पिछड़े क्षेत्रों का विकास थे । इस नीति के अंतर्गत समन्वित औद्योगिक विकास, छोटी औद्योगिक इकाइयों की पुन: परिभाषा, ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगों का विकास तथा क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने आदि उपाय किए गए । इस नीति के अंतर्गत मार्च 1985 में 25 उद्योगों को लाईसेंस से मुक्ति देकर औद्योगिक उदारीकरण को बढ़ावा दिया गया । 1984 में कम्प्यूटरों व इससे संबंधित उत्पादन व आयात-निर्यात की नीति स्पष्ट की गई । मार्च 1985 में ही नई इलेक्ट्रोनिक्स नीति की घोषणा कर इलेक्ट्रोनिक्स के विकास का मार्ग प्रशस्त किया । इस औद्योगिक नीति के द्वारा विकास को प्रेरित किया गया । बड़े व्यापारिक घरानों को लाईसेंस प्रदान किए गए किन्तु इससे छोटी इकाईयों का विकास अवरुद्ध हो गया ।

3.3.5 मोर्चा सरकार की औद्योगिकी नीति: 1990

31 मई, 1990 को राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इस नीति में रोजगार के अवसरों में वृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों का फैलाव, छोटे उद्योगों को

बढ़ावा देने संबंधी निर्णय लिए गए । लाईसेंस के नियमों में उदारता अपनाई गई । निर्यातोन्मुख इकाइयों को शत प्रतिशत व पिछड़े क्षेत्रों में 75 करोड़ रुपए तक तथा अन्य क्षेत्रों में 25 करोड़ रुपए तक निवेश वाली नई औद्योगिक इकाइयों को लाईसेंस से छूट दी गई । विदेशी कंपनियों को 40 प्रतिशत इक्विटी निवेश की छूट दी गई । इस प्रकार औद्योगिक उदारता की नीति को जारी रखा गया । सरकार की इस औद्योगिक नीति की काफी आलोचना की गई, क्योंकि इसने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रवेश की स्वीकृति प्रदान की थी । इसे राष्ट्रीय हितों के विपरीत माना गया । राष्ट्रीय मोर्चा सरकार गिराने के साथ ही यह नीति भी समाप्त हो गई । सन् 1991 में उदारीकरण की नई औद्योगिक नीति लागू की गई, जिसका वर्णन अगली इकाई में किया गया है।

3.4 भारत की औद्योगिक नीति- 2: नई औद्योगिक नीति तथा उदारीकरण की प्रक्रिया

नरसिंह राव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार ने जुलाई, 1991 में नई औद्योगिक नीति घोषित की । इस नीति का मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण की नीति को लागू करना तथा विदेशी विनियोग पर लगे हुए प्रतिबंधों को हटाना था । हालांकि भारत में औद्योगिक क्षेत्र में उदारता की नीति 1973 से प्रारम्भ हुई और धीर- धीरे यह बढ़ती गई । सन् 1991 में नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत उदारीकरण, आर्थिक विकास में निजी क्षेत्रों को बढ़ावा देने तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ने हेतु कदम उठाए गए । उपरोक्त सुधारों को ध्यान में रखते हुए (i) औद्योगिक लाईसेंस प्रणाली (ii) विदेशी विनियोग (iii) विदेशी तकनीक (iv) सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति नीति., तथा (v) एम. आरटीपी एक्ट (एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार अधिनियम) में परिवर्तन किए गए ।

नई औद्योगिक नीति का क्रियान्वयन मुख्य रूप से आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992 - 97) में किया गया । इसके अंतर्गत निजी क्षेत्र को औद्योगिक विकास के क्षेत्र में बढ़ावा दिया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र को छः उद्योग समूहों तक सीमित कर दिया गया । इन उपक्रमों मे सुधार के लिए प्रबंध व्यवस्था में आधुनिकीकरण तथा रुग्णता की स्थिति से मुक्ति के लिए प्रयास किए गए । सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश किया जाने लगा ।

बदली हुई अंतर्राष्ट्रीय परिस्थतियों के अनुकूल निजी क्षेत्र को प्रतिस्पर्धा हेतु सक्षम बनाने के उद्देश्य से 18 उद्योगों तक की लाईसेंस व्यवस्था सीमित कर दी गई । अप्रेल 1993 में इस व्यवस्था के अंतर्गत 15 उद्योग ही रह गए थे । सन् 1997 - 98 में अनिवार्य लाईसेंस वाले उद्योगों की संख्या घटकर 9 हो गई है । सार्वजनिक क्षेत्र के सुरक्षा सामान, ऊर्जा, रेल परिवहन व कुछ खनिज पदार्थ ही आरक्षित सूची में रखे गए । 35 उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत तक विदेशी विनियोग की छूट दी गई । आधारभूत सरंचना के उद्योगों को यथा विद्युत, सड़क, संचार, जहाजरानी, बंदरगाह, हवाई अड्डे आदि से निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया गया । कई क्षेत्रों में विदेशी विनियोग को उदार बनाया गया । इनमें भारतीय मूल के व्यक्तियों को 100 प्रतिशत अंश पूंजी की स्वीकृति दी गई । सुरक्षा क्षेत्र के उद्योग में भी

निजी उद्यम की इजाजत देते हुए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा 26 प्रतिशत तक रखी गई । सीमा शुल्क को हटाया गया और ब्याज दरें भी कम की गई है । नई औद्योगिक नीति के परिणाम स्वरूप सन् 2000 - 2001 में भारत सॉफ्टवेयर निर्यात में विश्व प्रमुख देश बना । अगस्त 2002 में अनिवार्य लाईसेंस वाले उद्योगों की संख्या 4 तक सीमित कर दी गई । प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी को आकर्षित करने का प्रयास किया गया । उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्र में 51 प्रतिशत तक पूंजी निवेश की छूट दी गई । अब तक 40 प्रतिशत निवेश की ही छूट थी ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस नई नीति से विदेशी । और निजी उद्योगों को प्रोत्साहन मिल सकता है । किन्तु पिछले कुछ वर्षो से कृषि का महत्व होता जा रहा है ।

3.5 भारत की कृषिगत नीति- 1

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि और कृषि संबंधी कार्यों में संलग्न है । प्रारम्भ में कृषि क्षेत्र में भूमि सुधारों पर दिया गया, जिनके अंतर्गत मध्यस्थ वर्ग की समाप्ति, लगान का नियमन, चकबंदी व सीमा निर्धारण के प्रयास भी किए गए । भूमि सुधारों के क्रियान्वयन में काफी कमियां रही है, जिससे किसानों को पूरा लाभ नहीं मिल पाया ।

परम्परागत कृषि में खाद, हल, पुराने कृषि औजारों व बैलों आदि का प्रयोग होता है । जबकि आधुनिक कृषि व्यवस्था में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, उन्नत किस्म के बीजों, आधुनिक यंत्रों, सिंचाई के लिए डीजल और विद्युत शक्ति का उपयोग किया जाता है । यह सभी साधन कृषि क्षेत्र से बाहर उत्पादित किए जाते हैं । 1960-70 के मध्य से भारत में कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक और यंत्रीकरण को अपनाया जाने लगा । कृषि के आधुनिकीकरण ने कृषि और उद्योग के संबंध को सुदृढ़ किया गया है । किन्तु आधुनिक तकनीक संपूर्ण देश के लिए उचित नहीं है । आज भी अधिकांश कृषक वर्षा की अनिश्चितता पर निर्भर है । सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए गहन खेती पर बल दिया। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के बड़े, मध्यम तथा लघु साधनों के विकास,। पर जोर दिया गया । परिणामत: भारत के सिंचित क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई । 1951 - 52 में कृषिगत क्षेत्र का मात्र 174 प्रतिशत भाग ही सिंचाई सुविधायुक्त था । 1995 -96 में सिंचित क्षेत्र बढ़कर 38.3 प्रतिशत हो गया । योजना काल में उत्तम किस्म के बीजों का उत्पादन में वृद्धि हुई है । निजी क्षेत्र में भी अच्छे बीजों का उत्पादन किया गया।

सन् 1966 में हरित क्रांति की शुरुआत हुई, जिसके अंतर्गत उन्नत किस्म की उपज, सिंचाई उर्वरकों के अधिक उपयोग को बढ़ावा दिया गया । परिणामस्वरूप देश में खाद्यान का उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा और आत्मनिर्भरता उत्पन्न होने लगी । भारत में कृषकों को पानी, बिजली, उर्वरक, बीज आदि पर सब्सिडी दी जाती है । इससे सरकार पर सब्सिडी का भार काफी बढ़ गया है । पिछले वर्षों में सहकारी, प्रादेशिक, ग्रामीण व व्यापारिक बैंकों द्वारा किसानों को ऋण सहायता के रूप में अरबों रुपये दिए गए । कृषि क्षेत्र को दीर्घकालीन, मध्यम अवधि व

अल्प अवधि कर्ज के रूप में 1991 - 92 में 112 अरब रुपयों का कर्ज दिया गया है । यह कृषि ऋण 2000 - 2001 में बढ़कर 535 अरब रुपये हो गया । इसी प्रकार न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषिगत पदार्थों की वसूली व सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सरकार ने किसानों के हितों का ध्यान रखने का प्रयास किया है । कृषक हितों की रक्षा के लिए प्रति वर्ष कृषकों हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा वसूली मूल्य घोषित किए जाते हैं । इस प्रकार सरकार द्वारा इन मूल्यों पर कृषकों से कृषि उत्पादनों की खरीद की गारंटी दी जाती है । ताकि घोषित से कम मूल्य पर अपनी पैदावार न बेचनी पड़े । सरकार इन वसूली मूल्यों पर खाद्यान्नों की खरीद करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से वितरण करती है । सन् 2002 में सरकार के पास 6.3 करोड़ टन का खाद्यान भण्डार था । भारत से चाय, काफी, अनाज, मसाले, फल सब्जी, कपास आदि कृषिगत उत्पादनों का निर्यात भी किया जाता है । सरकार ने कृषि निर्यात बढ़ाने के पर्याप्त उपाय किए हैं । फिर भी कृषिगत नीति में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें विकास की आवश्यकता है । जैसे मोटे अनाजों (चावल, दाल) व खाद्य तेलों के उत्पादन में वृद्धि तथा सिंचाई और जल प्रबंधन की नई विधि अपनाने की आवश्यकता है ।

3.6 भारत की कृषिगत नीति II: नई राष्ट्रीय नीति

पिछले पृष्ठों में आप पड़ चुके हैं । कि जुलाई, 1991 से देश में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई है । इससे कृषिगत नीति में क्या परिवर्तन हुए यह जानना आवश्यक है। पिछले वर्षों में नई कृषिगत नीति घोषित करने का प्रयास किया गया, किन्तु इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई । जुलाई, 2000 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषिगत नीति प्रस्तुत की । इस नीति के अंतर्गत कृषि विकास वर्तमान दर 1.5 प्रतिशत बढ़ा कर सन् 2005 में 4 प्रतिशत से अधिक प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है । कृषि निजीकरण के लिए ठेके पर खेती, उच्च तकनीक का हस्तांतरण, भूमि को लीज पर देने की व्यवस्था बनाये रखना, तिल हन, कपास व फलों के उत्पादन द्वारा बाजारों का विस्तार आदि लक्ष्य रखे गए । इस नीति के अंतर्गत कृषि अनुसंधान, फसलों के उत्पादन, प्रबंधन व विपणन के लिए निजी क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन दिया जाएगा । ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि के साथ ही पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन व दुग्ध व्यवसाय को प्राथमिकता देते हुए राष्ट्रीय पशुधन विकास की नीति तय की गई । इस नई कृषि नीति के अंतर्गत अनुसंधान व ब्रीडिंग को प्रोत्साहित कर पौधों की नई किस्मों को सुरक्षा प्रदान की जाएगी कृषक खेती से शेष रहे बीजों को अपने पास रख सकेंगे । कृषि हेतु संस्थागत ऋण तथा ग्रामीण विधुतिकरण करते हुए राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना का विस्तार किया जाएगा । निष्कर्ष रूप में कहा जा है कि इस नई कृषिगत नीति से भारतीय कृषि क्षेत्र का पर्याप्त विकास होगा । यद्यपि इसको लागू करने में पर्याप्त वित्तीय साधनों तथा प्रशासनिक तैयारी की आवश्यकता होगी ।

3.7 गैट व विश्व व्यापार संगठन का प्रभाव

3.7.1 सामान्य परिचय

विश्व के विभिन्न देशों में निर्बाध व्यापार को प्रोत्साहन करने हेतु सन 1948 में गैट यानि टेरिफ एवं व्यापार पर सामान्य संधि (General Agreement on Tarrif and Trade-GATT) की स्थापना जिनेवा में की गई थी । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ावा देने हेतु आठ दौर (Round) हुए । गैट के सदस्य देशों के बीच प्रारम्भ के दौर की वार्ता के दौरान विभिन्न देशों द्वारा लगाए गए व्यापार अवरोधों तथा गैट टेरीफ़ प्रतिबंधों समाप्त या कम करने का प्रयास किया गया ।

गेट वार्ता का आठवां दौर (उरुग्वे वार्ता) ।

बहुपक्षीय व्यापार के संबंध में सितम्बर, 1986 में दक्षिण अमेरिका के उरुग्वे में गैट वार्ता का आठवां दौर प्रारम्भ हुआ, जो सात वर्षों तक चला । इस दौर में, टैरिफ़ गैर टैरिफ, प्राकृतिक संसाधन आधारित वस्तुएं टेक्सटाइल, कृषि, राज्य सहायता (Subsides) बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार सहित 15 क्षेत्रों के संबंध मे सदस्य देशों के मध्य मंत्री स्तर पर वार्ता की गई । इस वार्ता के दौरान सदस्य देशों में गंभीर मतभेद उभर कर सामने आए । गतिविधियों को तोड़ने के लिए गेट के महानिदेशक आर्थर डंकल ने एक विस्तृत दस्तावेज प्रस्तुत किया । जिसे 'डंकल प्रस्ताव' कहा जाता है । डंकल प्रस्तावों को अंतिम अधिनियम (Final Act) का रूप 15 दिसम्बर, 1993 को दिए जाने के साथ ही उरुग्वे वार्ता का दौर समाप्त हुआ । डंकल प्रस्ताव यानि गैट समझौते का भारत में तत्कालीन सत्तारूढ़ दल कांग्रेस को छोड़ कर सभी संत्तारूढ दलों तथा मजदूर संगठनों एवं स्वदेशी के पक्षधर संगठनों ने तीव्र विरोध किया और इसे भारतीय व्यापार, कृषि व भारत की सम्प्रभुता के लिए हानिकारक बताते हुए सरकार से इस समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करने को कहा । किन्तु भारत ने सन् 1994 में विश्व के अन्य 124 देशों के साथ इस गेट समझौते पर हस्ताक्षर किए ।

विश्व व्यापार संगठन

गैट के स्थान पर पर 1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation, WTO) की स्थापना की गई । इसका मुख्य उद्देश्य गैट के उद्देश्य को ही आगे बढ़ाना था अर्थात् विश्व व्यापार को मुक्त व बिना रोक टोक के प्रोत्साहित करने हेतु सदस्य देशों में आपसी विचार विमर्श कर तत्संबंधी निर्णय लेना है । कतर को दोहा शहर में नवम्बर, 2001 में WTO का चतुर्थ मंत्री स्तरीय सम्मेलन हुआ जो कृषिगत सब्सिडी, सेवाएं निवेश, पेटेंट, टेक्सटाइल्स आदि पर सदस्य देशों में मतभेद के कारण असफल रहा । सितम्बर, 2003 में मैक्सिको के शहर कैनकुन में WTO के सदस्य देशों की पांचवीं मंत्री स्तरीय वार्ता भी असफल रही । विकासशील देश चाहते थे कि विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को दी जा रही औसतन प्रति दिन एक अरब डालर की सब्सिडी को कम किया जावे । इतनी सब्सिडी के कारण विकासशील राष्ट्रों के किसान न केवल विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते वरन् अपने बाजार में भी आयातित सस्ते खाद्यानों के कारण बाहर हो जाते ।

3.7.2- भारत के औद्योगिक क्षेत्र पर प्रभाव

गैट व विश्व व्यापार संगठन के समझौते से भारत के औद्योगिक क्षेत्र पर निम्नलिखित प्रभावों का आकलन किया गया है-

निर्यात वृद्धि-

अनुमान लगाया गया था कि गैट समझौते के कारण विश्व व्यापार में वृद्धि होगी तथा भारत का निर्यात भी सामान्य वृद्धि के अलावा 1.5 से 2 अरब डालर की अतिरिक्त वृद्धि दर्ज करेगा । इसके परिणाम स्वरूप रोजगार व आमदनी में वृद्धि होगी और 6-7 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकेगा । परन्तु विश्व व्यापार में 1990 - 95 की अवधि में दर्ज की गई 7.8 प्रतिशत की वृद्धि दर 1995 - 2000 में घटकर 5.4 प्रतिशत ही रही ।

विकासशील देशों को इस नयी विश्व व्यवस्था से आशा थी कि वे गारमेंट्स टेक्सटाइल व कृषिगत उत्पाद विकसित देशों को ज्यादा निर्यात कर सकेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। 1995 - 2000 के मध्य उनके निर्यातों का इकाई मूल्य लगभग 20 प्रतिशत घट गया ।

दवा उद्योग पर प्रभाव-

गैट समझौते के कारण भारत को अपना पेटेंट कानून बदलना होगा । कुछ आलोचकों का मानना है कि इसका सबसे बुरा असर दवा उद्योग पर पड़ेगा । आम जनता के काम में आने वाली दवाओं के दामों में अत्यधिक वृद्धि होगी । परन्तु सरकार का कहना है कि वर्तमान में प्रचलित 10-15 प्रतिशत दवाएं ही पेटेंट के अंतर्गत आती हैं, अत: सभी दवाएं गैट से प्रभावित नहीं होगी । कीमतों में वृद्धि भी प्रतिस्पर्धा के कारण ज्यादा समय तक टिक नहीं सकेगी ।

लघु उद्योगों को क्षति व बेरोजगारी में वृद्धि-

आयात शुल्क कम किए जाने के कारण विदेशी सामानों की भारत में बाढ़ आ गई है । विदेशी निवेश की छूट व सुविधा देने के कारण हजारों विदेशी कम्पनियों ने भारत में अपना व्यापार प्रारम्भ कर दिया है । अपने बेहतर प्रबंधन, उच्च तकनीक व विज्ञापन क्षमता सहित बाजार प्रबंधन के कारण उपभोक्ता बाजार पर ये कम्पनियां कब्जा करती जा रही है । उनका मुकाबला कुछ बड़ी व्यापारिक औद्योगिक कम्पनियां अवश्य कर पा रही हैं । परन्तु प्रतिस्पर्धा में न टिकने के कारण लाखों लघु उद्योग बंद हो गए हैं । लघु उद्योगों के लिए संरक्षित क्षेत्र लगभग समाप्त कर दिया गया है । परिणामत: लाखों श्रमिक भी बेरोजगार हो गए हैं । हजारों बुनकरों, लुहारों, मोचियों ने वैश्वीकरण की वजह से अपने रोजगार गंवा दिये हैं ।

उपभोक्ता सामान सस्ता-

गैट समझौते के परिणामस्वरूप हुए वैश्वीकरण की प्रक्रिया के चलते उपभोक्ता को अवश्य अच्छा सामान कम मूल्य पर उपलब्ध हो रहा है । कम्पनियों में परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण मूल्य कम हो रहे है। विदेशी बैंकों के प्रतिस्पर्धा में आने के कारण उपभोक्ता को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध हो रहा है और वह ऐशो-आराम का सामान खरीदने में लग गया है । देश में इलेक्ट्रीकल, इलेक्ट्रोनिक्स एवं ऑटो के क्षेत्र में उत्पादों की बाढ़ सी आ गई है ।

सरकारी उपक्रमों का विनिवेश-

गैट समझौते के अनुपालना में सरकार ने अपनी औद्योगिक इकाइयों का विनिवेश करना प्रारम्भ कर दिया है । इसके परिणामस्वरूप भारत की मिश्रित अर्थ व्यवस्था अब समाप्ति की ओर है तथा निजी क्षेत्र को सरकारी क्षेत्र पर बढ़त प्राप्त हो गई है । इसके कारण भी बेरोजगारी में वृद्धि हुई है ।

विदेशी निवेश में वृद्धि- औद्योगिक विकास को गति

गैट समझौते में विदेशी पूंजी, विदेशी निवेशकर्ताओं व विदेशी कम्पनियों पर लगाये गए सभी प्रतिबंधों को समाप्त करने का प्रावधान है । कच्चे माल के आयात पर सभी प्रतिबंध हटाए जा रहे हैं । विदेशी निवेशकर्ता पर स्थानीय उत्पाद व सामग्री के उपयोग संबंधी कोई रोक नहीं होगी । विदेशी कम्पनियां लाभांश, ब्याज और रायल्टी का अपने देश में प्रत्यावर्तन कर सकेंगी । प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित किया जा रहा है । विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) तथा औद्योगिक नीति में अनेक परिवर्तन किये गए हैं । इससे ढांचागत सुविधाएं अवश्य बड़ी हैं । भारत में औद्योगिक विकास भी गति प्राप्त करता दिखाई दे रहा है । परन्तु गैट समझौते के प्रस्तावों के कारण विदेशी निवेश को बढ़ावा देकर विदेशी मुद्रा अर्जित करने की संभावना समाप्त हो गई है । आलोचकों का मत है कि विदेशी निवेश की निर्बाध इजाजत देने पर देश की अर्थव्यवस्था और स्थानीय उद्योगों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा ।

पेटेंट संरक्षण के प्रभाव-

गैट समझौते के अंतर्गत पेटेंट-कानून के प्रस्ताव भारतीय अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालेंगे । पेटेंट संरक्षण का विस्तार सूक्ष्म जीवों, गैर जैविक और सूक्ष्म जैविक प्रक्रियाओं या पौधों की विभिन्न किस्मों तक किया गया है । अत: समस्त औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र पेटेंट कानून के अंतर्गत आ गया है । भारत में अभी तक प्रक्रिया पेटेंट लागू था । अब उत्पाद पेटेंट भी लागू होगा । देश में निर्मित व आयातित दोनों प्रकार की वस्तुएं पेटेंट कानून के अंतर्गत होंगी । अर्थात् उत्पादन एकाधिकार के साथ ही आयात एकाधिकार भी स्थापित हो जाएगा । इसके परिणामस्वरूप सरकार आयातित वस्तुओं पर किसी प्रकार का मूल्य नियंत्रण लागू नहीं कर पाएगी । दवा उद्योग व किसानों पर प्रस्तावित पेटेंट कानून विपरीत प्रभाव डालेगा ।

3.7.3 कृषि क्षेत्र में प्रभाव-

भारतीय कृषि पर गैट समझौते के कारण निम्नलिखित प्रभावों का आकलन किया गया है-

सब्सिडी व बीज पेटेंट-

यह माना जा रहा है कि गैट समझौते के कारण किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी में कमी करनी पड़ेगी । बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास बीजों का पेटेंट होने के कारण भारतीय किसान अपनी फसल में से बीज नहीं रख सकेंगे और ऊंचे दामों पर बीज खरीदने होंगे । विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को प्रतिदिन एक अरब डालर की भारी सब्सिडी दिए जाने के कारण विदेशी कृषिगत उत्पादन सस्ते होंगे । गैट समझौते के कारण कृषि उपज का कम से कम 3 प्रतिशत आयात करना होगा । अत: भारतीय किसान प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाएंगे । परिणामत: वे बेरोजगार हो जावेंगे । दूसरी ओर कहा जा रहा है कि गैट समझौते के कारण कुल उपज के

मूल्य की 10 प्रतिशत तक सब्सिडी दी जा सकेगी । जबकि भारत में वर्तमान में सब्सिडी 5-6 प्रतिशत ही है । अत: कृषि पर गैट समझौते का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा । परन्तु पश्चिमी देश अपने किसानों को दी जा रही भारी सब्सिडी को कम नहीं करना चाहते । इसी कारण से सितम्बर, 2003 के कैनकुन सम्मेलन की मंत्री स्तरीय विश्व व्यापार संगठन की वार्ता इस बिन्दु पर असफल हो गई है ।

कृषिगत निर्यात

गैट समझौते ने कृषिगत उत्पादों के निर्यात का अवसर उपलब्ध कराया है । परन्तु यदि उत्पादन नहीं बढ़ा तो निर्यात के कारण घरेलू बाजार में कृषि उत्पादनों का मूल्य बढ़ जाएगा । विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी के कारण उनका कृषि उत्पाद सस्ता है और भारत जैसे देश उनकी स्पर्धा नहीं कर सकेंगे ।

भारतीय वनस्पतियों का विदेशी पेटेंट-

विदेशों में भारतीय नीम, तुलसी, हल्दी, बासमती चावल के उपभोग का पेटेंट करा लेने की घटनाएं सामने आई हैं । इससे भारत के हितों पर विपरीत असर होगा । वस्तुत: जो चीज पहले से ही अस्तित्व में है उसका पेटेंट नहीं हो सकता । अमेरिका के पेटेंट कार्यालय द्वारा अगस्त, 1997 में हल्दी पावडर का पेटेंट कर लिए जाने को भारत द्वारा चुनौती दी जाने पर इसे वापिस ले लिया गया है । अत: भारत को इस संबंध में सावधान रहने की आवश्यकता है ।

वस्तुत : गैट समझौता एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण घटना है । इसके दूरगामी प्रभाव होंगे । विश्व व्यापार संगठन द्वारा आयेजित पांचों मंत्री मंडलीय स्तर के सम्मेलनों में वार्ता असफल हो गई है । विकासशील देशों को विश्व व्यापार वार्ता में अपने हितों के लिए संगठित प्रयास करने होंगे । अपने हितों की रक्षा के लिए जागरूक रहना होगा । भारत जैसे विकासशील देशों की सफलता मुख्यत: अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति व क्षमता बढ़ाने पर निर्भर करेंगी । आज कोई भी देश विश्व व्यापार संगठन से बाहर नहीं रह सकता । यदि कोई देश इस संगठन से बाहर आता है तो उसे प्रत्येक देश के साथ द्विपक्षीय व्यापार समझौते करने होंगे जो कि एक कठिन कार्य है । डब्ल्यू.टी.ओ के अंतर्गत ही विकासशील देश एकजुट होकर विकसित देशों की चालों का मुकाबला कर सकेंगे ।

3.8 सारांश

पिछले पृष्ठों में आपने पढ़ा कि स्वतंत्रता पूर्व भारत की अर्थ व्यवस्था गतिहीन व पिछड़ी हुई थीं । देश को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु नीति निर्माण का कार्य सन् 1938 में गठित राष्ट्रीय आयोजना समिति की रिपोर्ट से ही प्रारम्भ हो गया था । भारतीय संविधान के नीति निदेशक सिद्धांतों में भी देश के विकास हेतु दिशा निर्देश दिए गए । भारत में पूंजीवादी व समाजवादी दोनों व्यवस्थाओं पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई गई ।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू जी ने देश को औद्योगिकरण की दिशा में बढ़ाया । उन्होंने बड़े उद्योगों, बड़े बांधों, आधुनिक प्रोद्योगिक व सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर जोर दिया ।

आचार्य श्रीमन नारायण द्वारा प्रस्तुत गांधीवादी विकास नीति के अंतर्गत ग्रामोद्योगों के विकास, कृषि क्षेत्र में सुधार व ग्राम स्वराज्य पर जोर दिया गया । सन् 1991 से देश में वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीति अपनाई गई । पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश का नियोजित विकास करने का प्रयास किया गया । सन् 1956 में लागू औद्योगिक नीति व सन् 977 में जनता सरकार द्वारा लागू औद्योगिक नीति में अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । उदारीकरण की नीति, जो कि 1991 से लागू की गई, वह विदेशी विनियोग को आकर्षित करने में सक, हो सकती है । परन्तु कई अर्थशास्त्री इस नीति को देश की आर्थिक स्वायत्तता के लिए खतरा बताते हैं तथा इससे रोजगार क्षेत्र में अवसरों की कमी आएगी ऐसी संभावना व्यक्त करते हैं ।

कृषिगत क्षेत्र में भूमि सुधारों के साथ ही रासायनिक उर्वरकों,, उन्नत बीजों व आधुनिक यंत्रों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इससे खाद्यान्न के उत्पादन में हुई। सन् 2000 में प्रस्तुत नई राष्ट्रीय कृषि नीति में भी निजीकरण को प्रोत्साहन देते हुए के 'आधुनिकरण व विकास पर जोर दिया गया है । ।

गैट समझौते व विश्व व्यापार संगठन के कारण भारत पर प्रभाव होंगे । विदेशी पूंजी के निर्बाध आगमन के कारण 'आधारभूत संरचना के क्षेत्रों व बड़े उद्योगों का विकास होगा । लोगों को उपभोक्ता सामग्री गुणवतायुक्त व सस्ती प्राप्त होगी, परन्तु लाखों लघु उद्योगों के बंद हो जाने के कारण बेरोजगारी में अत्यधिक वृद्धि होने की संभावना है । किसानों को महंगा बीज उपलब्ध होगा और भारत सब्सिडी के कारण सस्ते विदेशी कृषिगत उत्पादनों के कारण भारतीय कृषि को क्षति होगी । पेटेंट कानून के कारण दवाईयां महंगी हो सकती हैं। निजी क्षेत्र को बढ़त प्राप्त होगी । वैश्वीकरण व उदारीकरण के युग में सरकार द्वारा सावधान रहने पर औद्योगिक विकास गतिमान हो सकता है ।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारत की औद्योगिक नीति विषय पर संक्षेप में एक लेख लिखिये ।
2. भारत की औद्योगिक नीति पर उदारीकरण की प्रक्रिया के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए ।
3. भारतीय कृषिगत नीति की समीक्षा कीजिए तथा गैट व विश्व व्यापा संगठन के कृषि क्षेत्र में प्रभावों को समझाइये ।
4. " गैट " व विश्व व्यापार संगठन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

1. दत्त, रूप एवं सुन्दरम, के.पी. 1998: भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि.नई दिल्ली।
2. नाधूरामका, लक्ष्मीनारायण 2002, भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाऊस प्रा.लि. जयपुर
3. कपिला, उमा (संपादित), इंडियन इकोनोमी सिंस इन्डिपेंडेंस, 2001-2002
4. जालान, बिमल, इण्डियाज इकानोमिक इन द न्यू मिलेनियम- सलेक्टेड एसेज, 2002

5. केलकर, विजय, इण्डियाज इकोनोमिक चैलेंजेज, (लेख), ई.पी.डब्ल्यू. नं. 33, अगस्त 14-20, 1999
6. पारिख, कीर्ति एस. इंडिया डवलपमेंट रिपोर्ट, 2002 ।

इकाई - 4

भारत में उभरते हुए नीति संबंधी विषय: एकीकरण ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं निर्धनता निवारण संबंधी कार्यक्रम

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (अर्थ एवं प्रकृति)

4.2.1 उद्देश्य

4.2.2 कार्य नीति

4.2.3 संगठन

4.2.4 महत्व एवं उपलब्धियां

4.2.5 मूल्यांकन

4.3 निर्धनता निवारण संबंधी कार्यक्रम

4.3.1 पंचवर्षीय योजनाएं

4.3.2 राष्ट्रीयकरण की नीति

4.3.3 बीस सूत्री कार्यक्रम

4.3.4 विशेष निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम

4.3.5 अन्त्योदय योजना

4.3.6 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

4.3.7 गरीबी हटाओ कार्यक्रम

4.3.8 जवाहर रोजगार योजना

4.3.9 शिक्षित बेरोजगारों हेतु योजना

4.3.10 प्रधानमंत्री रोजगार एवं संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास प्रश्न

4.6 संदर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

यह इकाई भारत में नीति संबंधी उभरते हुए विषयों से संबंधित है । इस इकाई में निर्धनता और बेरोजगारी निवारण संबंधी कार्यक्रमों का विश्लेषण किया गया है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के उद्देश्य, संगठन एवं कार्य नीति से परिचित हो सकेंगे ।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता एवं बेरोजगारी की समस्या के धान में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम कहां तक सहायक रहा है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे ।
3. स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक भारत में निर्धनता निवारण के लिए चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों से अवगत हो सकेंगे तथा इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त था, जैसे निर्धनता बेरोजगारी, आय का असमान वितरण, अशिक्षा और विकास की धीमी गति । विशेषकर, ग्रामीण क्षेत्रों में ये समस्याएं और भी उग्र रूप से दिखाई देती हैं । गुलामी के काल में भारतीय ग्राम धीरे- धीरे वैमनस्यता, रूढ़िवादिता, अस्वस्थता, गंदगी, ऋणग्रस्तता, जातिवाद, बाल विवाह आदि समस्याओं से ग्रसित होते चले गए । भारत को विदेशी दासता से मुक्ति के पश्चात देश के नीति निर्धारकों पर देश को विकास पथ की ओर तेजी से अग्रसर करने का दायित्व आया । नीति संबंधी ऐसे अनेक विषय उभरकर आए जो देश के विकास में अहम भूमिका रखते हैं । सन् 1991 के पश्चात वैश्वीकरण व उदारीकरण का युग प्रारम्भ हुआ । जिसके कारण नीति विषयक अनेक नए विषय सामने आए । इन विषयों को सामाजिक व आर्थिक श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है । नीतिगत उभरते सामाजिक विषयों में साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, जेन्डर न्याय, महिला सशक्तिकरण, बाल कल्याण, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का विकास जैसे विषय शामिल किए जा सकते हैं । आर्थिक श्रेणी में निर्धनता निवारण, एकीकृत ग्रामीण विकास, आय की असमानता या पूंजी व साधनों की केन्द्रीयभूत प्रवृत्ति का अंत, आधारभूत संरचना सुविधाओं यथा विद्युत, परिवहन, संचार आदि का विकास व पर्यावरण आदि नीतिगत विषय उभरकर सामने. आए हैं ।

इस इकाई में भारत के आर्थिक क्षेत्र के ऐसे दो विशिष्ट विषयों (1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा। (2) निर्धनता निवारण कार्यक्रम के बारे में विवेचना की गई है ।

14.2 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (अर्थ एवं प्रकृति)

भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या ग्रामों में रहती है, जहां कृषि से लोगों को पूर्ण रोजगार नहीं मिल पाता । गांवों में बेरोजगारी अथवा अल्प बेरोजगारी की समस्या व्याप्त है, जिससे निर्धनता की समस्या उत्पन्न होती है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए अनेक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किए । इनमें से एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं- एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme-IRDP) । यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनतम परिवारों की निर्धनता रेखा से ऊपर उठाने व आय बढ़ाने के लिए साधन उपलब्ध कराने तथा ऋण सुविधाएं प्रदान करने के लिए वर्ष 1978-79' मे प्रारम्भ किया गया । 2 अक्ट्बर, 1980 से देश के सभी 5011 सामुदायिक विकास खण्डों में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया । यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व निर्धनता को कम करने, उत्पादन के साधन उपलब्ध कराने व ग्रामीणों को

निर्धनता रेखा से ऊपर उठाने तथा ग्रामीण क्षेत्रों की अंतसंबंधित समस्याओं को एकीकृत ढंग से हल करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया ।

"एकीकृत या समन्वित ग्रामीण विकास" की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम विश्व बैंक के द्वारा एक अध्ययन के अंतर्गत किया गया । इसका उद्देश्य ग्रामीणों के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन का एकीकृत रूप से विकास करना था । वी.के.आर.वी. राव के अनुसार 'एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम' एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक एवं मानवीय स्रोतों का अधिकतम उपयोग करके ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार लाने का पूरा प्रयत्न किया जाता है । इस कार्यक्रम में लक्षित समूह का अर्थ है- निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले वे लोग जिनको आर्थिक सहायता पहुंचाई जानी है । लक्षित समूह में अनुसूचित जाति, जनजाति, कृषिहर एवं गैरकृषिहर, ग्रामीण दस्तकार, सीमान्त एवं लघु कृषक आदि को लिया जाता है । छठी योजना में निर्धनता रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों में ऐसे परिवारों को लिया गया था । जिनकी वार्षिक आय 3,500 रुपए से कम थी । सातवीं योजना में यह सीमा बढ़ाकर 4, 800 रुपए तथा 16 दिसम्बर 1985 को 6,400 रुपए कर दी गई । एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम में जिन परिवारों को आर्थिक सहायता के लिए चुना जाता है, उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है । प्राथमिक, गौण एवं तृतीय । प्राथमिक क्षेत्र के अंतर्गत कृषि, गौण क्षेत्र के अंतर्गत वन खण्ड तथा तृतीय क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग, हाथकरघा एवं दस्तकारी आदि को लिया जाता है । किन्तु यह सभी परिवार निर्धनता रेखा से नीचे ही होने चाहिए ।

4.2.1 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के उद्देश्य

ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन परिवारों का चयन करके उन्हें निर्धनता रेखा के ऊपर उठाने के लिए प्रारम्भ किए गए इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं: -

1) ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर आधारित ऐसे उद्योगों की स्थापना करना जिससे रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हो सकें । कृषि क्षेत्र में उत्पादकता को बढ़ाने के लिए उन्नत बीज व उर्वरकों की व्यवस्था की जावे । पशुपालन, डेयरी उद्योग, मछली पालन व रेशम उद्योग को बढ़ावा दिया जावे जिससे निर्धन ग्रामीणों की आय में वृद्धि करके उनकी स्थिति में सुधार लाया जावे ।
2) कृषि पर जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए करीब 7.5 करोड़ बेरोजगारों व अर्द्धबेरोजगारो को रोजगार देने के उद्देश्य से औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना करना ।
3) पूर्ण रोजगार एवं भौतिक साधनों के विकास हेतु एक निश्चित कार्यक्रम बनाना जो उत्पादन बढ़ाने में समर्थ हो ।
4) गांवों के अत्यधिक निर्धन परिवारों का चयन कर उन्हें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना तथा उनकी आय में वृद्धि करके उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर उठाना ।
5) विकास की प्रक्रिया में निर्धन कृषकों की सहभागिता को बढ़ाना, उन्हें। आत्मनिर्भर बनाना तथा आर्थिक असमानताओं को कम करना ।

6) ग्रामीण जनता के कार्य व चिंतन संबंधी परम्परागत तरीकों को वैज्ञानिक। दृष्टिकोण में बदलना । आधुनिक विज्ञान व तकनीकी सहायता से ऐसी परिस्थितियां निर्मित करना जिसका लाभ ग्रामीण निर्धन वर्ग को मिल सके ।
7) भूमि और जल संसाधनों के विकास हेतु प्रयास करना तथा कार्य स्तरों का निर्धारण करना ।
8) ग्रामीण समाज की वर्तमान एवं भविष्य संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उत्पादकता एवं कार्य क्षमता के न्यूनतम प्रभाव निर्धारित करना ।,
9) ग्रामीण निर्धन वर्ग में अधिकतर भूमिहीन कृषक व सीमांत कृषक हैं । इन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से आय सृजित करने वाली परिसंपत्तियां निमार्ण करना तथा ऋण तथा अन्य साधन जैसे स्वरोजगार, मजदूरी व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना ।

14.2.2 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम की कार्य नीति

एकीकृत ग्रामीण विकास की कार्य नीति (strategy) के महत्वपूर्ण पक्ष निम्नलिखित है:-

1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिलों के स्थान पर विकास खण्डों को इकाई माना गया । प्रारम्भ में 2300 विकास खण्डों में इस कार्यक्रम को लागू किया गया । प्रत्येक वर्ष नए 300 विकास खण्डों को इसमें शामिल करने का निर्णय लिया गया।
2) इस कार्यक्रम से सबसे अधिक निर्धन परिवारों और उनकी महिलाओं को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य हेतु विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए । इसमें लक्षित वर्ग के सदस्य को ही लाभ प्राप्त हो इसके लिए व्यक्ति के स्थान पर परिवार पर ध्यान दिया गया । लक्षित वर्ग में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लघु एवं सीमांत कृषक, कृषि एवं गैरकृषि मजदूर दस्तकार, अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों को सम्मिलित किया गया ।
3) कृषि विस्तार संबंधी सेवाएं कृषकों को उपलब्ध कराई गई । यह निर्णय लिया गया कि लघु और सीमांत कृषकों को कृषि के क्षेत्र में उचित मार्गदर्शन दिया जावे ।
4) इस कार्यक्रम में कृषि के अतिरिक्त सिंचाई, डेयरी उद्योग, पशुपालन, मछली पालन, वन बीज व उर्वरकों के विकास पर जोर दिया गया ।
5) सरकार द्वारा जिला स्तर पर 'जिला ग्रामीण अभिकरणों' की स्थापना की गई, जिनमें परियोजना निदेशक नियुक्त किए गए । इन अभिकरणों द्वारा गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे परिवारों का चयन कर इनके विकास हेतु पंचवर्षीय व वार्षिक योजना बनाने का कार्य किया जाता है । इन योजनाओं को विकास से संबंद्ध अधिकारियों के पास अनुमोदन हेतु भेजा जाता है । अनुमोदन के पश्चात क्रियान्वयन के लिए इन योजनाओं को बैंकों के पास भेजा जाता है ।
6) कार्यक्रम का व्यवस्थित रूप से संचालन करने हेतु तथा जिला, खण्ड और ग्राम स्तर पर गरीबों को प्रतिनिधित्व देने के लिए जिला ग्रामीण अभिकरण सलाहकार समिति व जिला परियोजना निदेशक की नियुक्ति आदि व्यवस्थाएं की जाती हैं ।

7) इस कार्यक्रम से संबंधित योजनाएं राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत की जाती है । इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन राज्य स्तर पर 'समन्वय समिति' द्वारा किया जाता है । राज्य का मुख्य सचिव इस समिति का अध्यक्ष होता है ।
8) जिला स्तर पर इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन 'जिला ग्रामीण विकास अभिकरण' द्वारा किया जाता है । 'खण्ड विकास अधिकारी' ब्लाक स्तर पर इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करता है ।
9) इस कार्यक्रम में निर्धन परिवारों के पोषाहार, प्राथमिक शिक्षा, परिवार कल्याण, प्रौढ़ शिक्षा, बाल व महिला कल्याण आदि पर भी बल दिया गया है । एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम की दो महत्वपूर्ण योजनाएं हैं :- (1) ट्राइसम (TRYSEM)- Training of Rural Youth For Self employment और (2) डवकरा (DWCRA) Development of women and children in Rural Areas)

ट्राइसम योजना (TRYSEM)

स्वरोजगार दिलाने हेतु ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण देने की यह योजना 15 अगस्त, 1979 को प्रारम्भ की गई । अभी तक निर्धनता की रेखा से नीचे के 6.9 लाख से अधिक परिवारों के सदस्यों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है । प्रशिक्षण के लिए गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में से 18 से 35 वर्ष की उम्र के युवाओं को चयन किया जाता है । इनमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति के 30 प्रतिशत युवक तथा 33 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए । प्रारम्भ में खण्ड विकास अधिकारी अपने क्षेत्र के लक्षित वर्ग के युवाओं से आवेदन पत्र आमंत्रित करते हैं । जांच के पश्चात जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को सूची भेजी जाती है । जिला स्तर के अधिकारियों से परामर्श के पश्चात आवश्यक व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है ।

डवकरा योजना (DWCRA)

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा शिशुओं के विकास हेतु यह योजना बनाई गई है । इस कार्यक्रम को वर्ष 1982-83 में सभी राज्यों के 50 जिलों में प्रारम्भ किया गया । अभी तक इस योजना को 106 जिलों में क्रियान्वित किया जा चुका है । इस योजना द्वारा 3,93,641 महिलाओं को लाभान्वित किया गया है । यह कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्तर को सुधारने में सहायक बने इसके लिए महिला व बाल विकास, स्वास्थ्य व परिवार कल्याण तथा शिक्षा विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है ।

4.2.3 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का संगठन

इस कार्यक्रम को 20 सूत्री योजनाओं को और लघु कृषक विकास अभिकरण से संबद्ध किया गया है । यह कार्यक्रम केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना है । जिसमें केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 5०-5० प्रतिशत व्यय किया जाता है । कार्यक्रम को चार स्तरों केन्द्र, राज्य, जिला व खण्ड में विभाजित किया गया है ।

केन्द्रीय स्तर पर

केन्द्रीय स्तर पर ग्रामीण विकास मंत्री इस कार्यक्रम से संबंधित नीतियों या निर्धारण करते हैं और कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध कराते हैं ।

राज्य स्तर पर

राज्य स्तर पर इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन राज्य स्तरीय समन्वय समिति द्वारा किया जाता है । इस समिति का अध्यक्ष राज्य को मुख्य सचिव होता है । यह समिति खण्ड स्तर की विकार योजना को स्वीकृति प्रदान करती है । कार्यक्रम की प्रगति, उपलब्धियों का मूल्यांक्न और जिला अधिकारियों को आवश्यक निर्देश देने हेतु राज्य स्तरीय समन्वय समिति की समय-समय पर बैठकें होती रहती है ।

जिला स्तर पर

जिला स्तर पर ग्रामीण विकास अभिकरणों का गठन किया गया है । इसमें परियोजना निदेशक की नियुक्ति की जाती है । कार्यक्रम को लागू करने का कार्य इसी अभिकरण का है । यही अभिकरण विभिन्न खण्डों के लिए विकास योजनाएं बनाती तथा उन्हें क्रियान्वित करती है । इस अभिकरण में तीन सदस्य होते हैं, जिसमें एक अर्थशास्त्री अथवा सांख्यिकीविद्, एक ऋण योजना बनाने वाला नियोजन अधिकारी तथा एक लघु व कुटीर उद्योग अधिकारी होता है । यह तीनों एक नियोजन दल के रूप में कार्य करते हैं ।

खण्ड स्तर पर

खण्ड स्तर पर एकीकृत ग्रामीण विकास योजना को सामुदायिक विकास अधिकारी द्वारा लागू किया जाता है । खण्ड विकास अधिकारी ग्राम सेवकों की सहायता से पांवों का सर्वेक्षण कराके सर्वाधिक निर्धन परिवारों का चयन करता है । कृषि, पशुपालन, मछली पान, कुटीर उद्योग, वानिकी आदि के लिए 3,000 रुपयों तक ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं । इसमें से आधा ऋण लाभार्थी परिवार चुकाता है और आधी राशि को सरकारी सहायता के रूप में दिया जाता है । ऋण चुकाने के पश्चात उन्हें 3,000 का ऋण पुन: स्वीकृत किया जा सकता है, जिसमें से 1, 500 रुपए पुन: सरकारी सहायता के रूप में बदल दिए जाते हैं । दिसम्बर, 1985 से अनुदान की राशि 3,000 रुपये से बढ़ाकर 6,000 रुपये प्रति परिवार कर दी गई है।

4.2.4 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का महत्व एवं उपलब्धियां

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक ऐसी योजना है जो सभी प्राकृतिक व आर्थिक साधनों का उपयोग करने हेतु अधिक विस्तृत, क्रमबद्ध वैज्ञानिक एवं समन्वित तरीकों को अपनाने पर बल देती है । यह प्रत्येक व्यक्ति को समाजोपयोगी तथा उत्पादक व्यवसायों में इस प्रकार लगाने योग्य बनाती है कि वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु पर्याप्त आय कमा सके । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इस कार्यक्रम की उपलब्धियां निम्नलिखित रही है : -

(1) निर्धनता कम करने में सहायक

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम निर्धनता उन्मूलन का सर्वोपरि कार्यक्रम माना गया है । छठी योजना काल (1980-85) में 1 करोड़ 50 लाख परिवारों को लाभान्वित करने के लक्ष्य की तुलना में लक्ष्य से अधिक 1 करोड़ 45 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाया गया । सातवीं योजना (1985-90) में 2 करोड़ परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराकर उनकी निर्धनता दूर करने का लक्ष्य था, जबकि इस काल में लक्ष्य से कुछ कम 1.82 करोड़ परिवार लाभान्वित हुए । वर्ष 1993-94 में 25.4 लाख, 1997-98 में 17.1 लाख और वर्ष 1998-99

में 16.6 लाख परिवार लाभान्वित हुए । स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम द्वारा लाभान्वित परिवारों को अपनी निर्धनता कम करने का अवसर मिला ।

(2) बेरोजगारी कम करने में सहायक

इस कार्यक्रम के अंतर्गत ऋण उपलब्ध कराकर जिन परिवारों को स्वरोजगार में लगाया गया उन परिवारों में बेरोजगारी भी दूर हुई । इसके अलावा ट्राइसम योजना के अंतर्गत वर्ष 1979 में लाखों युवक-युवतियां को स्वरोजगार का प्रशिक्षण देकर उनकी बेरोजगारी दूर करने का प्रयास किया गया । छठी पंचवर्षीय योजना में 9.4 लाख व सातवीं योजना में 10 लाख ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया । वर्ष 1992-93 में 2.76 लाख, वर्ष 1997-98 में 3 लाख एवं 1998-99 में 5 लाख ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षित किया गया ।

(3) आर्थिक असमानता कम करने में सहायक

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में चल रहे सामुदायिक विकास कार्यक्रम का लाभ बड़े किसानों एवं प्रभावशाली लोगों को ही मिला था । इस कमी को दूर करने हेतु इस कार्यक्रम के अंतर्गत निर्धनतम परिवारों को ऊपर उठाने का प्रयास किया गया । परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता को कुछ सीमा तक कम करने में सहायता मिली है । इस कार्यक्रम ने निर्धनतम परिवारों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराये हैं, जिससे उनका आर्थिक स्तर सुधरा है ।

(4) अनुसूचित जाति-जनजातियों के कल्याण में सहयोगी

इस कार्यक्रम में लघु कृषक, सीमांत कृषक एवं भूमिहीन कृषकों के रूप में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के परिवारों का चयन किया जाता रहा है । जहां अन्य वर्गों के लघु कृषकों को 25 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है तथा सीमांत कृषकों, कृषि मजदूरों व ग्रामीण कारीगरों को 33.3 प्रतिशत, वहीं पर अनुसूचित जनजाति के लोगों को 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है । प्रति परिवार निर्धारित अधिकतम सब्सिडी भी अनुसूचित जाति के परिवार के लिए अन्य वर्गों से ज्यादा है । आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) काल के कुछ 108 लाख परिवारों को आर्थिक सहायता दी गई थी, इनमें से 50 प्रतिशत परिवार अनुसूचित जाति एवं जनजाति से संबंधित थे।

(5) ग्रामीण महिला एवं शिशु कल्याण में सहायक

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम ने ग्रामीण निर्धन महिलाओं के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । ट्राइसम व डवकरा योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार व, आर्थिक सहायता प्रदान करने तथा शिशुओं के कल्याण हेतु प्रयास किए गए हैं । डवकरा योजना के अंतर्गत 4 'लाख से अधिक ऐसी ग्रामीण महिलाओं को लाभान्वित किया गया जो गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही थी ।

(6) विकास कार्यक्रमों में ग्रामीणों की सहभागिता में वृद्धि

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत रोजगार का चुनाव पूर्व कार्यक्रम की रूपरेखा का निर्धारण स्वयं लाभार्थी द्वारा किया जाता है । रोजगार योजना बनाते समय लाभार्थी

को अपने क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों जैसे उपलब्ध कच्चा माल व अन्य सुविधाओं को ध्यान में रखना होता है । परिणामस्वरूप कार्यक्रमों में ग्रामीणों की सहभागिता बढ़ जाती है ।

(7) विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने में सहायक

इस कार्यक्रम के द्वारा कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि हुई है । बैंकों से ऋण व आर्थिक सहायता प्राप्त ग्रामीणों ने उन्नत किस्म के कृषि उपकरणों, खाद व बीज, उर्वरक तथा पशुओं का उपयोग कर उत्पादन को बढ़ाया है । इस कार्यक्रम द्वारा कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों को बढ़ावा मिला और उन क्षेत्रों में भी उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई ।

4.2.5 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन तथा कार्य प्रणाली पर अनेक अध्ययन किए गए हैं । इनमें रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डवलपमेंट (नाबार्ड), प्रोग्राम इवेल्लयूएशन ऑर्गेनाईजेशन ऑफ दी प्लानिंग कमीशन (P.E.O.) तथा इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनेन्शियल मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च (I.F.M.R.) आदि प्रमुख हैं । इन अध्ययनों से पता चलता है कि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ जिन उद्देश्यों को लेकर किया गया था, उनकी पूर्ति करने में वह पूर्णतया सफल नहीं हो सका । 'इस कार्यक्रम में निम्नलिखित कमियां बताई जाती हैं : -

(1) अति निर्धन ग्रामीणों को लाभ नहीं

इस कार्यक्रम से अति निर्धन ग्रामीणों को लाभ नहीं मिला है । नाबार्ड सर्वेक्षण के आधार पर प्रो. नीलकंठ रथ निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि "यह कहना अनुचित न होगा कि कम से कम 15 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति जिनकी पहचान 'निर्धन' के रूप में की गई और जिन्हें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम से सहायता दी गई, वास्तव में वे निर्धन वर्गों से नहीं थे । प्रो.राम आहूजा का भी इस कार्यक्रम के बारे में लगभग यही मत है । निर्धनतम व्यक्तियों को ऋण नहीं मिला क्योंकि वे रिश्वत नहीं दे पाते, पेचीदा कागजात नहीं भर पाते, गांव के मुखिया को प्रभावित नहीं कर पाते और उन्हें अपने लिए गारंटीकर्ता नहीं मिलता । बैंक अधिकारी भी निर्धनों को ऋण देने के लिए इच्छुक नहीं होते क्योंकि वे सोचते हैं कि उन्हें ऋण देना खतरे से खाली नहीं है । निर्धन व्यक्ति स्वयं भी कई बार इस कार्यक्रम कम रुचि लेते हैं, क्योंकि उन्हें डर होता है कि उन्हें कोई धोखा न दे दे अथवा कहीं वे ऋण वापिस न कर पावें । प्रो. इंदिरा हीरावे गुजरात के चार ग्रामों के अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं कि ' गैर निर्धन परिवारों का इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले में प्रभुत्व था । इन ग्रामों में गैर निर्धनों की हिस्सेदारी 55 से 75 प्रतिशत' तक थी ।"

(2) क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार

इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में ग्राम मुखिया एवं ग्राम सेवक ग्रामीणों और प्रशासन के मध्य बिचौलिये का कार्य करते हैं और ऋण का एक हिस्सा स्वयं हड़प जाते हैं । बैंक अधिकारी को भी बहुधा रिश्वत देनी पड़ती है । जिला विकास अभिकरण, खण्ड विकास अधिकारी और

ऋण संस्थानों की कार्य पद्धति में कमी के कारण गैर निर्धन ऋण प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं । इसका एक प्रमुख कारण इनमें भ्रष्टाचार व्याप्त होना है ।

(3) विकास कार्यक्रमों की सही जानकारी न मिलना

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोग अशिक्षित हैं । शिक्षा के अभाव में तथा प्रशासनिक अधिकारियों की उदासीनता के कारण निर्धनों के विकास के लिए प्रारम्भ किए गए कार्यक्रमों की जानकारी उन्हें नहीं हो पाती । सक्षम अधिकारियों और नेताओं के संपर्क में रहने वाले गैर निर्धन परिवारों को योजनाओं का लाभ मिल जाता है ।

(4) ग्रामीण निर्धनों में स्वरोजगार के लिए व्यवहारिक ज्ञान का अभाव

इस कार्यक्रम के लक्षित समूह निर्धन ग्रामीणों में स्वरोजगार हेतु आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान का अभाव रहता है । अनेक क्षेत्रीय अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि व्यावसायिक संबंधी व्यावहारिक जानकारियों के अभाव में लक्षित वर्ग को दिए गए ऋण एवं आर्थिक सहायता का दूरुपयोग अधिक हुआ है ।

(5) निर्धनता समाप्त करने में सक्षम न होना

स्वरोजगार हेतु इस कार्यक्रम में जो ऋण दिया जाता है वह इतना कम होता है कि ऋण प्राप्त परिवार कोई रोजगार ढंग से प्रारम्भ नहीं कर पाते । यह कार्यक्रम न तो ग्रामीणों के जीवन स्तर को ऊंचा उठा पाया है और न ही ग्रामीण निर्धनता पर कोई प्रभाव डाल पाया है ।

(6) सरकारी आकड़ों की अविश्वसनीयता

सरकारी अधिकारी कार्यक्रम की सफलता को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करते हैं । सातवीं पंचवर्षीय योजना काल में एक करोड़ 81 लाख निर्धन परिवारों को लाभ पहुंचाने का दावा किया गया, अर्थात् 28 प्रतिशत परिवारों ने गरीबी रेखा पार कर ली । परन्तु मार्च 1986 में किए गए एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत 5 प्रतिशत से ज्यादा लोग गरीबी की रेखा को पार नहीं कर पाए हैं । निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता और बेरोजगारी से निपटने का एक प्रयास है । इस कार्यक्रम से संबंधित जो कमियां विभिन्न सर्वेक्षणों से सामने आई हैं, उनमें अपेक्षित सुधार किया जाने पर यह कार्यक्रम अधिक उपयोगी हो सकेगा ।

4.3 निर्धनता-निवारण संबंधी कार्यक्रम

भारत में सरकार द्वारा निर्धनता निवारण के लिए आर्थिक विकास व विशिष्ट निर्धनता-निवारण संबंधी कई कार्यक्रमों को चलाया जा रहा है । ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास योजनाएं प्रारम्भ की गई है, जिनमें कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सहकारी समितियां, शिक्षा आदि अनेक पक्षों के विकास पर बल दिया जाता है । जीवन स्तर को ऊंचा करने, उत्पादन. और राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए योजनाबद्ध विकास किए गए हैं । आवास, बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सुविधा उपलब्ध कराने के कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं । निर्धनता निवारण हेतु किए गए विभिन्न सरकारी प्रयास निम्नलिखित हैं :-

4.3.1 पंचवर्षीय योजनाएं

वर्ष 1950 में योजना आयोग के गठन के पश्चात देश की आवश्यकताओं और संसाधनों के सर्वेक्षण के आधार पर पंचवर्षीय योजनाएं प्रारम्भ की गई । इन पंचवर्षीय योजनाओं के द्‌वारा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से निर्धनता को कम करने का प्रयास किया गया है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-6) इस पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य विभाजन तथा ब्रिटिश सरकार से विरासत में प्राप्त शोषित व क्षतिग्रस्त अर्थव्यवस्था में सुधार, उत्पादन क्षमता में वृद्धि और संसाधनों का विकास था । जिससे निर्धनता को दूर किया जा सके । इस योजना काल में 45 लाख लोगों को रोजगार दिलाया गया, राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत ओर प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत वृद्धि हुई ।

द्‌वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) का लक्ष्य तीव्र औद्‌योगिक विकास तथा समाजवादी ढांचे को बनाने के लिए विभिन्न वर्गो में समानता स्थापित करना था । इस अवधि में प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना में दुगुना व्यय (4,672 करोड़ रुपए) किया गया । परन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 1.9 प्रतिशत ही हो पाई, जबकि मूल्य वृद्धि 12.5 प्रतिशत हो गई । इस योजना अवधि में 65 लाख बेरोजगारों को गैर कृषि कार्यो में रोजगार प्रदान किया जा सका ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) के मुख्य लक्ष्य देश को आत्मनिर्भर बनना, वार्षिक आय में 5 प्रतिशत की वृद्धि, स्टील, विद्‌युत व रासायनिक क्षेत्र जैसे उद्‌योगों का विकास, कृषि आत्मनिर्भरता और आर्थिक संसाधनों का विकेन्द्रीयकरण था । इस योजना काल में राष्ट्रीय आय में 2.6 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में 0.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई । कृषि क्षेत्र में उत्पादन कम हुआ तथा अन्य लक्ष्य भी प्राप्त नहीं कर पाए । भारत-चीन तथा भारत-पाक युद्ध व अकाल आदि के कारण अर्थव्यवस्था की स्थिति कमजोर रही । चौथी पंचवर्षीय योजना को आगे बढ़ाना पड़ा ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) के माध्यम से आर्थिक विकास, आय के वितरण में असमानता में कमी, सामाजिक न्याय, जनसंख्या नियंत्रण आदि के लिए प्रयास किया गया ।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) में रोजगार के अवसरों में वृद्धि, निर्धनता में कमी, न्यूनतम मजदूरी निर्धारण तथा निर्यात को प्रोत्साहन देने संबंधी कार्यक्रमों पर जोर दिया गया ।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के मुख्य लक्ष्य निर्धनता, बेरोजगारी व जनसंख्या को नियंत्रण करना, आर्थिक विकास करना, आय की असमानता दूर करना व कमजोर लोगों के जीवन स्तर को सुधारना था । इस योजना काल में राष्ट्रीय आय में 5.2 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य की तुलना में 5.4 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई । नेशनल सेम्पल सर्वे के अनुसार वर्ष 1977-78 में 48.3 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही थी । यह प्रतिशत घटकर वर्ष 1984-85 में 36.9 रह गया । इसी योजना काल में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में खाद्यान्न, रोजगार तथा उत्पादकता वृद्धि को प्राथमिकता दी गई । यह योजना अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रही, परन्तु राष्ट्रीय आय में 5.8 प्रतिशत वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में 3.6 प्रतिशत की वृद्धि रही ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में रोजगार के अवसरों में वृद्धि, जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा, ऊर्जा, स्वास्थ्य और कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई । इस योजना काल में कृषि उत्पादन में 3.7 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई । वर्ष 1992 में गरीबी रेखा नीचे जीवन यापन करने वालों का प्रतिशत 29.9 पाया गया ।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में कृषि व ग्रामीण विकास को प्राथमिकता, अर्थव्यवस्था की विकास दर तीव्र करना, खाद्य व पोषण की सुरक्षा, मूलभूत न्यूनतम सेवाएं उपलब्ध कराना, महिलाओं व समाज के कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण आदि मुख्य लक्ष्य थे । वर्ष 1997-98 में खाद्यान्नों का उत्पादन 140 लाख टन हुआ । कृषि व ग्रामीण विकास तथा सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं पर काफी व्यय किया गया । इस योजना में मुद्रा-स्फीति की वार्षिक दर नीची रही । वर्ष 1999-2000 में देश में निर्धनता का अनुपात 26 प्रतिशत आंका गया जबकि वर्ष 1993-94 में यह 36 प्रतिशत था ।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002- 2007) मे विकास की दर का लक्ष्य 8 प्रतिशत रखा गया है । निर्धनता अनुपात को वर्ष 2007 तक 20 प्रतिशत घटाने की कही गई है । योजना के दृष्टिकोण पत्र में उल्लेख किया गया है कि निर्धनता-निवारण के कार्यक्रमों में सब्सिडी के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति-निर्माण कार्यक्रमों पर ज्यादा ध्यान देना होगा । वर्तमान में 100 रुपए की मजदूरी-स्कीमों में से 60 रुपये मजदूरी के लिए रखे जाते हैं, जिनमें से गरीब श्रमिक तक मात्र 10 से 15 रुपये ही पहुंचते हैं, अतः कहा गया है कि दसवीं पंचवर्षीय योजना में 'काम के बदले अनाज' की योजना का रोजगार के लिए विस्तार किया जाना चाहिए । गांवों में गैर कृषि रोजगार के अवसरों में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय दुगुनी करने व जनजाति विकास के अंतर्गत शोषण, ऋण ग्रस्तता, भूमि पर अधिकार आदि समस्याओं के समाधान के लक्ष्य भी इस योजना में रखे गए हैं ।

4.3.2. राष्ट्रीयकरण की नीति

सन् 1969 में राष्ट्रीयकरण की नीति को अपनाया गया । इसी वर्ष 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया । वर्ष 1972 में कोयले की खानों का राष्ट्रीयकरण किया गया । सरकार द्वारा लोहे व स्टील की बड़ी कम्पनियों तथा खाद्यान्न के थोक व्यापार को अपने नियंत्रण में ले लिया गया । राष्ट्रीयकरण की नीति का उद्देश्य कमजोर तथा निर्धन लोगों को ऋण उपलब्ध कराना तथा बैंकों के साधनों को बड़े उद्योगों के निजी उपयोग से बचाना था । बैंकों ने ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के नवीनीकरण में योगदान दिया है । परन्तु अधिकांश ऋणों की वसूली नहीं हो पाई । वर्ष 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा किसानों के 10,000 रुपयों

तक के ऋणों को माफ कर दिया गया । इस ऋण माफी से राज्य कोष पर 10,000 करोड़ रुपयों का अतिरिक्त भार पड़ा ।

4.3.3. बीस सूत्री कार्यक्रम

श्रीमती इंदिरा गांधी ने निर्धनता और आर्थिक शोषण को समाप्त करने तथा समाज के कमजोर वर्ग को ऊपर उठाने के उद्देश्य से जुलाई, 1975 में बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की । इस ' कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य निर्धनता उन्मूलन, आय की असमानता में कमी, सामाजिक-आर्थिक असमानताओं की समाप्ति और जीवन स्तर में सुधार 'करना था । बीस सूत्री कार्यक्रम में थे- सिंचाई क्षमता में वृद्धि, भूमि विभाजन, न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास, अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों का विकास, आवासीय सुविधाओं का विकास, विद्युत उत्पादन में वृद्धि, परिवार-नियोजन, वृक्षारोपण, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार, महिला व शिशु कल्याण कार्यक्रम, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार, औद्योगिक नीतियों का सरलीकरण, पेयजल सुविधाओं में सुधार, कालेधन पर नियंत्रण और आतरिक संसाधनों का विकास । सन् 1977 में जनता दल सरकार ने इस कार्यक्रम को बंद कर दिया । जनवरी, 1982 में कांग्रेस सरकार द्वारा इस कार्यक्रम को पुन: संशोधित रूप में लागू किया गया । अगस्त- 1986 में पुन: संशोधित कर कार्यक्रम में कुछ नई योजनाओं को रखा गया और इसे नया बीस सूत्री कार्यक्रम कहा गया । इस नवीन कार्यक्रम के द्वारा केन्द्र व राज्य स्तर पर ग्रामीण तथा नगरीय विकास के कई कार्यक्रम चलाए गए ।

4.3.4. विशेष निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम

सरकार द्वारा ग्रामीण निर्धनों की निर्धनता को कम करने के लिए अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं :-

लघु कृषको की विकास एजेन्सी (SFDA-Small Farmers Development Agency) तथा सीमात कृषक और कृषि मजबूर (MFAL Marginal Farmers and agricultural Labour)

ये दोनों योजनाएं चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में प्रारम्भ की गई । इन योजनाओं का उद्देश्य छोटे और सीमांत किसानों तथा कृषि मजदूरों में आत्म निर्भरता बढ़ाने एवं उनकी स्थिति सुधारना था । जिन क्षेत्रों में हमेशा सूखे की स्थिति बनी रहती है, उन क्षेत्रों में रोजगार दिलाने के लिए ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (RWP) प्रारम्भ किया गया । पांचवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस कार्यक्रम का नाम बदलकर 'सूखा प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम,' (DPAP) रख दिया गया । यह कार्यक्रम पूरे देश में व्यापक रूंप से नहीं चल रहे थे । अत: ऐसे कार्यक्रमों की आवश्यकता अनुभव की गई जो ग्रामीण निर्धनता का निवारण कर सके और देशव्यापी हो । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वर्ष 1978-79 में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया और पहले से प्रारम्भ की गई सभी योजनाएं इसमें विलय कर दी गई.

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम

(Integrated Rural Development Programme-IRDP)

इस कार्यक्रम का उद्देश्य लघु कृषक, सीमांत कृषक, कृषि मजदूर, ग्रामीण कारीगर, अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों की आय के स्तर को ऊंचा उठाना था । यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले सभी वर्गों के लिए प्रारम्भ किया गया । मार्च, 1976 में बीस चयनित जिलों में शुरू किया गया । यह कार्यक्रम अक्टूबर, 1982 में देश के 5011 खण्डों (ब्लाक्स) में लागू किया गया । नवम्बर, 1995 में तक 9.01 लाख परिवार इस कार्यक्रम से लाभान्वित हो चुके थे । एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत दो महत्वपूर्ण योजनाएं (1) ट्राइसम (TRYSEM) - स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों- युवतियों को प्रशिक्षण देना, तथा (2) डवकरा (DWCRA) ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को प्रशिक्षण देना तथा शिशुओं के कल्याण संबंधी योजना भी चलाई गई । इन दोनों योजनाओं का उद्देश्य भी ग्रामीण निर्धनता को नियंत्रित करना है । इस कार्यक्रम की उपलब्धियों और मूल्यांकन का समीक्षात्मक वर्णन आप पिछले पृष्ठों में विस्तृत रूप से पढ़ चुके हैं ।

एन.आर.ई.पी. (NREP- National Rural Employment Programme) अर्थात् राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम-

इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों को उत्पन्न करना है । प्रारम्भ में 'यह काम बदले अनाज' कार्यक्रम कहा जाता था । वर्ष 1980 में इसका नाम बदलकर राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम रख दिया गया । यह कार्यक्रम एक अप्रैल, 1977 से लागू हुआ । इसके अंतर्गत वर्ष 1977-78, 1978-79, तथा 1989-80 में क्रमशः 1.28 लाख टन, 12.47 लाख टन तथा 23.45 लाख टन खाद्यान्न का उपयोग करके सडकों की मरम्मत, नई सड़कों का निर्माण, सिंचाई, पंचायत घर, स्कूल, भवन व स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण, ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई, बाढ़ से बचाव कार्यक्रम आदि करवाए गए । छठी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत केवल सात करोड़ मानव दिन ही उत्पन्न किए गए अर्थात् 8 से 10 प्रतिशत ग्रामीणों को ही रोजगार प्रदान किया जा सका ।

4.3.5. अन्त्योदय योजना

राजस्थान सरकार द्वारा 2 अक्टूबर, 1977 से अंत्योदय योजना प्रारम्भ की गई । यह कार्यक्रम निर्धन रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए ही नहीं बल्कि निर्धनतम स्थिति में रह रहे ग्रामीणों के लिए प्रारम्भ की गई । इस योजना के अंतर्गत राज्य के 33000 ग्रामों में से प्रति वर्ष प्रत्येक गांव में से 5 निर्धनतम परिवारों का चयन किया जाकर उनकी आर्थिक उन्नति के लिए सहायता दी जाती है । निर्धनतम परिवारों की पहचान का कार्य ग्राम सभा को दिया गया । चयनित निर्धनतम परिवारों को अंत्योदय योजना के अंतर्गत खेती के लिए भूमि का आवंटन, मासिक पेंशन, ऋण सुविधा था, रोजगार प्राप्ति में सहायता दी गई । अंत्योदय योजना का प्रशासन राज्य स्तर पर कृषि विभाग को तथा जिला स्तर पर कलेक्टर को सौंपा गया । इस योजना के अंतर्गत दिसम्बर, 1988 तक चयनित 2.61 लाख परिवारों में से 40.5

प्रतिशत को ऋण सहायता, 21.7 प्रतिशत को सामाजिक सुरक्षा लाभ के रूप में पेंशन सहायता तथा 8.8 प्रतिशत को रोजगार तथा शेष परिवारों को दूसरे लाभ दिए गए ।

राजस्थान के बाद उत्तर प्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश ने वर्ष 1980 में और गुजरात में वर्ष 1992 से अंत्योदय योजना प्रारम्भ की । वर्तमान में यह योजना पूर्णतया उपेक्षित है । इसके असफलता के पीछे प्रमुख कारण परिवारों के चयन में पक्षपात, अधिकारियों में कार्यक्रम के प्रति उदासीनता, ऋण सहायता देने में विलंब आदि रहे ।

4.3.6. एम.एन.पी. (MNP-Minimum Need Programme) अर्थात् न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम-

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के साथ यह परियोजना प्रारम्भ की गई । इस परियोजना में प्राथमिक व प्रौढ़ शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, शुद्ध पेयजल, सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, बेघर मजदूरों के लिए मकान, ग्रामीण क्षेत्र में पोषण और नगरीय क्षेत्रों में गंदी बस्तियों में सुधार आदि का मुख्य कार्य क्षेत्र तक किए गए । पांचवीं पंचवर्षीय योजना में एम.एन.पी. के लिए 1,518 करोड़ और छठी पंचवर्षीय योजना में 5,807 करोड़ रुपयों का आवंटन किया गया । यह राशि ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की सप्लाई, सड़कों के निर्माण व विद्युतीकरण, प्राथमिक व प्रौढ़ शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, बेघर मजदूरों के लिए आवास निर्माण, गर्भवती महिलाओं के लिए स्वास्थ्य की देखभाल, शहरी गंदी बस्तियों में सुधार आदि पर व्यय किए गए।

4.3.7 गरीबी हटाओ कार्यक्रम

वर्ष 1971 में आम चुनावों के समय इंदिरा गांधी ने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था । अप्रैल, 1988 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया । इस नारे का असर कांग्रेस पार्टी की केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमों पर अवश्य पड़ा । बीस सूत्रीय कार्यक्रम जैसे कार्यक्रमों का निर्माण इसी लक्ष्य को सामने रखकर किया गया था । परन्तु इस नारे को कार्यान्वित करने 'में कोई विशेष कार्यक्रम सामने नहीं आया ।

4.3.8. जवाहर रोजगार योजना

अप्रैल, 1989 में इस योजना की घोषणा की गई । इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक निर्धन परिवार के कम से कम एक सदस्य को उसके ही ग्रामीण क्षेत्र में एक वर्ष से 50 से 100 दिनों तक रोजगार उपलब्ध कराना था । इस योजना में 30 प्रतिशत काम महिलाओं के लिए आरक्षित है । राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) और भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम को जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया गया है । इस योजना का क्रियान्वयन ग्राम पंचायत द्वारा होता है । इस योजना के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 80 प्रतिशत वित्तीय सहायता दी जाती है । जवाहर रोजगार योजना सरकार की उपेक्षा, अधिकारियों की उदासीनता और प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव के कारण असफल रही है । इसमें आवंटित राशि का भी पूर्ण उपयोग नहीं

किया गया । व्यय की जाने वाली राशि बहुधा ठेकेदार और बिचौलिये हड़प जाते हैं । अनेक बार फर्जी नाम बताकर श्रमिकों की मजदूरी आपस में बांट लेते हैं । निर्धनों के लिए निर्धारित रोजगार दिवस उपलब्ध कराने का लक्ष्य भी कभी पूरा नहीं किया गया ।

4.3.9. शिक्षित बेरोजगारों हेतु स्वरोजगार योजना

यह योजना वर्ष 1983-84 से प्रारम्भ की गई । इसमें 18 वर्ष से 35 वर्ष की आयु वर्ग के ऐसे शिक्षित युवाओं को स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । जिनके परिवारों की वार्षिक आय 10,000 रुपए से अधिक नहीं है । यह योजना ऐसे शहरों में लागू की गई जिनकी आबादी 10 लाख से कम थी । केन्द्र सरकार ने बैंकों द्वारा इस योजना के अंतर्गत दिए गए ऋण की 25 प्रतिशत पूंजी बतौर सहायता प्रदान की । इस योजना में वर्ष 1990-91 तक 1.01 लाख शिक्षित बेरोजगार युवा लाभान्वित हुए जिन्हें 2,620. 15 करोड़ रुपयों की राशि के ऋण स्वीकृत किए गए । इस योजना को वर्ष 1993 में प्रधानमंत्री रोजगार योजना के साथ जोड़ दिया गया ।

4.3.10 प्रधानमंत्री रोजगार योजना एवं सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

2 अक्टूबर, 1993 से प्रारम्भ इस योजना के अंतर्गत छोटे उद्योगों के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने तथा रोजगारों के अवसरों का सृजन करने का प्रयास किया जाता है । इस तरह के कार्यक्रमों से निर्धन वर्ग को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य रखा गया है ।

पूर्व में लागू की गई 'रोजगार बीमा योजना' को भी इसी में सम्मिलित कर लिया गया है । इस रोजगार बीमा योजना का उद्देश्य ग्रामीण परिवारों के 18 वर्ष से 60 वर्ष तक की आयु के दो सदस्यों को 100 दिन का शारीरिक श्रम कार्य उपलब्ध करवाना था । प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अंतर्गत नवम्बर, 1995 तक 67 लाख रोजगार के अवसर तथा 1.0 लाख छोटे उद्यमों का लक्ष्य पूरा किया जा चुका था ।

15 अगस्त, 2001 को प्रधानमंत्री वाजपेयी ने 10,000 करोड़ रुपयों की एक नई' सम्पूर्ण ग्रामीण योजना' की घोषणा की । इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की गारंटी प्रदान करने की बात कही गई है ।

4.4 सारांश

देश की आजादी के पश्चात समय-समय पर अनेक सामाजिक व आर्थिक नीतिगत विषय सरकार के सामने आते गए । ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाने वाली निर्धनता, बेरोजगारी, ऋण ग्रस्तता, अशिक्षा, पिछड़ापन, विकास से जुड़ी अन्य समस्याएं भारतीय अर्थव्यवस्था व सरकार के लिए चुनौती बनी हुई थी । इन समस्याओं से निजात पाने के लिए 'एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम' तथा "निर्धनता निवारण कार्यक्रम" लागू किए गए ।

ग्रामीण क्षेत्र में विकास के लिए अनेक योजनाएं जैसे रोजगार बीमा योजना, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, छोटे किसानों की विकास एजेन्सी, (SFDA) सीमांत कृषक और कृषि मजदूर कार्यक्रम (MFAL), सूखा प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) रेगिस्तान विकास कार्यक्रम

आदि प्रारम्भ किए गए । छठी पंचवर्षीय योजना में इन सभी योजनाओं को मिलाकर एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) बनाया गया । ग्रामीण बेरोजगार व निर्धनता कम करने में इस कार्यक्रम ने महत्ती भूमिका निभाई । इस कार्यक्रम से अनुसूचित जाति व जनजाति तथा ग्रामीण महिलाओं को भी लाभान्वित किया गया । ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई है । परन्तु अनेक अध्ययनों से पता चला है कि इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में ऐसे परिवारों का भी चयन हो गया जो गरीब नहीं थे । इसके अतिरिक्त दलालों द्वारा धनराशि हड़पने, अधिकारियों की कार्यक्रमों के प्रति उदासीनता तथा व्यास भ्रष्टाचार के कारण यह विकास कार्यक्रम पूरी तरह सफल नहीं हो पाया ।

भारत में निर्धनता निवारण के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रयास किया गया । एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अलावा बीस सूत्री कार्यक्रम, अंत्योदय योजना, जवाहर रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना तथा 15 अगस्त, 2001 से प्रारम्भ ' सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना ' आदि विभिन्न कार्यक्रमों का लक्ष्य इस देश से निर्धनता का निवारण करना ही है । इन योजनाओं से निर्धनता रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले आबादी के अनुपात में निरन्तर कमी दर्ज की गई है । राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है । फिर भी इन योजनाओं का लाभ सर्वाधिक निर्धन लोगों तक नहीं पहुंच पाया है । निर्धनता निवारण कार्यक्रमों के अंतर्गत रोजगार के अवसरों में वृद्धि व गांवों में गैर-कृषि रोजगारों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है । योजनाओं को लागू करने वाले तंत्र को भी चुस्त-दुरुस्त बनाया जाना चाहिए ।

4.5 अभ्यास प्रश्न

(1) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का क्या अर्थ है? इस कार्यक्रम के उद्देश्य व कार्यनीति का वर्णन कीजिए ।

(2) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए ।

(3) भारत में निर्धनता निवारण कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए ।

(4) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए'

(क) निर्धनता निवारण में पंचवर्षीय योजनाओं का योगदान

(ख) अंत्योदय योजना

4.6 संदर्भ ग्रंथ

1. Attarchand “Poverty and Underdevelopment: New” Challenges, Gian Publishing House, Delhi,1987
2. आहूजा, राम: सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
3. Center for Policy Research, Population, Poverty, And Hope’, Utpal Publication House, New Delhi, 1983
4. Dantwala, M.L Garib Hatao: Strategy Options’, Economic and Political Weekly, March, 16,1985

5. दत्र, रूप एवं के.पी.एम.सुन्दरम: भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चद एण्ड क लि. रामनगर नई दिल्ली 1995
6. Ghate, P., Direct Attacks on Rural Povery concept', New Delhi.
7. Naba, Gopal Das, 'Employment, Unemployment and full Employment in India New Delhi
8. Sagar Deep. Rural Development Policies in India: A Historical Analysis', the Indian journal of Public Administration, Delhi Vol. 36, No.2

इकाई - 5
उपयुक्त प्रौद्यौगिकी का विकास एवं प्रसारण

इकाई संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्रौद्योगिकी का भारतीय परिद्दश्य

5.3 प्रौद्यौगिकी के विविध स्वरूप एवं भारत में उनकी स्थिति

5.4 उपयुक्त प्रौद्यौगिकी का विकास एवं प्रसारण

5.5 भारत में प्रौद्यौगिकी के विकास एवं प्रसारण की बाधाएं

5.6 इकाई सारांश

5.7 अभ्यास कार्य

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

प्रौद्योगिक वर्तमान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं तीव्रगामी प्रक्रियाओं में से एक है । इस इकाई में उपयुक्त प्रोद्यौगिकी के विविध पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

इस इकाई में आप जान पाएंगे कि-

1. प्रौद्यौगिकी विकास का भारतीय परिद्दश्य क्या है?
2. भारत में प्रौद्यौगिकी विकास का स्वरूप कैसा रहा है?
3. भारत में प्रौद्यौगिकी का विकास एवं प्रसारण किन-किन क्षेत्रों में एवं किस तरह से हुआ है?
4. भारत में उपयुक्त प्रोद्यौगिकी के विकास एवं प्रसारण में मुख्य बाधाएं क्या-क्या हैं?

5.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय की सबसे अधिक महत्वपूर्ण और तीव्रगामी घटना है- प्रौद्यौगिकी । सर्वत्र प्रौद्योंगिकीय परिवर्तन और इसके आश्चर्यजनक कार्यो की चर्चा है । प्रौद्यौगिकी क्या है? प्रौद्यौगिकी की किसी भी परिभाषा में अनेक पक्ष हैं । व्यापक रूप में, प्रौद्यौगिकी की परिषाभा इस प्रकार की गई है: " वैज्ञानिक नियमों को ठोस उद्देश्य प्राप्त करने के लिए विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए अथवा व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए पर्यावरण में जोड़ तोड़ करने के लिए मशीनों, औजारों, यांत्रिक युक्तियों, यंत्रों, नव परिवर्तनों, प्रक्रियाओं और तकनीकों से परिणत करना । " आज हमारे सामने ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि प्रौद्योगिकी का उन्नयन करते समय केवल लाभ को ही द्दष्टि में रखा जाता है, लोगों की जरूरतों और अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा जाता है ।

परिवर्तन का प्रौद्योगिकी क्रम स्पष्टत: सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में आता है जो मनुष्य की पहल पर निर्भर करता है । तथापि प्रौद्योगिक विकास भी आवश्यकता आधारित है और भौतिक उत्पादन के विद्यमान स्तर से उभरता है एवं इसे अपनी जरूरतों के अनुरूप ढालता

है । प्रौद्योगिकी परिवर्तन में समय के कारक, भौतिक पर्यावरण और संबंधित सामाजिक संबंध मनुष्य की गतिविधि से उत्पन्न होते हैं ।

प्रौद्योगिक परिवर्तनों में एकरूपता नहीं रही है । न ही उन्होंने एक स्वरूप को अपनाया है और न ही ये एक ही समय में हुए हैं । यह अंतर विभिन्न देशों में भाषा, धर्म, रीतिरिवाज, विश्वास, ऐतिहासिक अनुभव और विकास के चरण के आधार पर हैं । प्रौद्योगिकी परिवर्तन में पिछले समय में यूरोप में (खासतौर पर इंग्लैंड में) औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बहुत बड़ा विचलन आया है । इससे जनता में एक नए वर्ग का उदय हुआ- मजदूर वर्ग का- जो उत्पादन के साधनों का स्वामी नहीं था । औद्योगीकरण, जिसमें प्रौद्योगिकी परिवर्तन अंतर्ग्रस्त थे, के परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधों के नए क्षेत्र में स्थापित हुए । बढ़ती हुई उत्पादकता और बढ़ते हुए उत्पादन से स्वदेश के बाहर बाजारों को खोजने की आवश्यकता पड़ी । रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों की ओर प्रवास से शहरीकरण को प्रश्रय मिला और इससे ग्रामीण समाज के संगठन और संरचना पर प्रभाव पड़ा ।

जैसे-जैसे संचार- प्रणाली में विकास हुआ, परिवर्तनों की गति भी तेज हुई, तेजी से हो रहे प्रौद्योगिकी विकास के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों से यह भावना उत्पन्न हुई कि प्रौद्यौगिकी समृद्धि में प्रचालन का स्वायत्त क्षेत्र है । प्रौद्योगिकी विकास अपने प्रभाव के कारण परिवर्तन लाने में, प्राय: साधारण मनुष्य के नियंत्रण के बाहर एक निर्णायक शक्ति- अवैयक्तिक भयप्रद शक्ति- बन गया है । जैसे मैकाइवर और पेज ने बताया है, " प्रौद्योगिकी अधिकांश रूप से सांस्कृतिक मर्यादाता से पृथक हो गई है । " इस प्रकार, समाज में कुछ ऐसे वर्ग है जो जीवन के अनेक अन्य पक्षों की अवहेलना करते हुए भी प्रविधि संबंधी हल खोजते हैं ।

प्रौद्योगिक पर एकांकी तौर पर विचार नहीं किया जा सकता और न ही इसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शून्य उत्पन्न करने का बहिर्जात कारक माना जा सकता है । प्रौद्यौगिकी परिवर्तन और प्रौद्योगिकी प्रगति को कुछ समाज शास्त्री सामाजिक परिवर्तन का मुख्य आधार मानते हैं । समाज के संदर्भ में इसमें अनेक परिवर्तन हुए हैं, जिनका उल्लेख यहां करना आवश्यक है । इसकी सफलता और प्रयोज्यता निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती है ।

- उत्पादन संबंधों का वर्तमान स्तर, ग्रामीण जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के बीच परिस्थितियों तथा संबंध,
- कृषि क्षेत्रों का स्वरूप,
- निर्गत का वर्तमान स्तर, वर्तमान व्यावसायिक वितरण और रोजगार का स्वरूप,
- सामाजिक- सांस्कृतिक ढांचा,
- शक्ति संरचना,
- परिवर्तन का प्रतिरोध करने के लिए परम्परागत संरचनाओं से दुराग्रह,
- विश्व बाजार में प्रतियोगिता करने के कारण प्रौद्यौगिकी परिवर्तन लाने की मजबूरी,
- सशर्त अंतर्राष्ट्रीय सहायता प्रदान करने वाले देश की शर्त के अनुरूप एक विशिष्ट तरह का प्रौद्योगिकीय विकास ।

यद्यपि प्रौद्योगिकी से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है तथा उत्पादकता में सुधार करके और मजदूरों की संख्या कम करके उत्पादन लागत घटाई जा सकती है, तथापि इससे उन लोगों की क्रय शक्ति घटने की स्थिति भी पैदा हो सकती है जो इसी विकास के कारण बेरोजगार हो गए हैं । कृषि प्रौद्यौगिकी यदि पूंजी प्रधान है तो यह उन किसानों के मुकाबले, जिनके पास कृषि योग्य जमीन कम है और संसाधन भी कम है, खुशहाल किसानों के लिए कहीं अधिक लाभप्रद होगी और इस तरह आर्थिक असमानताएं बढ़ेगी । अत: कुछ विकास कार्य नीति नियोजकों का मत है कि ऐसी कृषि प्रौद्यौगिकियों पर बल दिया जाना चाहिए जो सीमित संसाधनों वाले और छोटे किसानों के लिए अधिक उपयुक्त हो । यह उन्हें सामान्य दरों पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए और साथ ही समर्थन सेवाओं और आगतों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए । मूल रूप से विकासशील देशों के संबंध में प्रौद्यौगिकी परिवर्तन की यह कुछ सामाजिक उलझने हैं । इसका आशय प्रौद्यौगिकी की सहायता से विकास की जरूरत को अस्वीकार करना नहीं है, बल्कि इस जरूरत पर बल देना है कि सामाजिक तथा आर्थिक' दोनों प्रभावों पर विचार करते हुए एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाए ।

विकास प्रक्रिया में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मुख्य भूमिका का महत्व जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी उत्पादकता तथा मनुष्य की शारीरिक और मानसिक क्षमताएं बढ़ाने के साधन हैं । यह प्राकृतिक संसाधनों को उपयोगी वस्तुओं में रूपान्तरित करने का साधन है । यह सामाजिक परिवर्तन लाने का भी साधन है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने कृषि और उद्योग में संसाधनों (भौतिक और जैविक) के उपयोग में, गृह और सामाजिक परिवेश के सुधार में तथा रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से दुर्लभ साधनों का युक्तियुक्त उपयोग किया जा सकता है । जिनके पास बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन, खासतौर पर भूमि और जल है अथवा जो उनका उपभोग करते हैं, वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विवेक सम्मत उपयोग के दक्षता स्तरों को बड़ा सकते हैं । नई प्रौद्योगिकियों से कच्चे माल, गौण उत्पादों और अपशिष्ट पदार्थों का संसाधन करने में सहायता मिलती है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से भूमि और जल संसाधनों में सफर करके कृषि उद्योग शुरू करने के अवसर मिलते हैं । जिससे बेरोजगार और अल्प बेरोजगार प्राप्त व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं ।

5.2 - प्रौद्यौगिकी का भारतीय परिदृश्य.

सभ्यता की शुरुआत से ही भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के संवर्धन की समृद्ध परम्परा रही है । खगोल, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, कृषि विकास, जल प्रबंधन, धातु निर्माण, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें प्राचीन समय से भारतीयों की रुचि रही है । भारत में विज्ञान और, प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में अर्जित ज्ञान का मध्य पूर्व और भूमध्य क्षेत्र की सभ्यताओं के साथ ही नहीं बल्कि सुदूर पूर्व से दक्षिण पूर्व एशिया और चीन तक सभ्यताओं के साथ आदान-प्रदान किया । यह सच है कि दसवीं से उन्नीसवीं सदी तक भारतीय समाज सामान्यत: निष्क्रिय बना

रहा । लगातार हुए बाहरी आक्रमणों से विज्ञान और प्रौद्यौगिकी विकास की गति बाधित हुई । 19 वीं सदी के अंतिम चरण में भारत पुन : इस क्षेत्र में सक्रिय हुआ। भारतीयों ने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के संवर्धन के लिए काम किया और प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने इसे अपना व्यक्तिगत संवर्धन दिया । ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए भारत सरकार ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस आई. आर.) के तहत प्रयोग संस्थानों की स्थापना की । स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही परमाणु ऊर्जा के विकास को गंभीरता से लिया गया। पचास के दशक में जब इस कार्यक्रम की शुरुआत की गई तब परमाणु ऊर्जा और प्रौद्योगिक पर संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके युद्धकालीन मित्र ग्रेट ब्रिटेन का वर्चस्व था । उसके बाद सोवियत संघ और फ्रांस ने स्वतंत्र रूप से परमाणु हथियारों के निर्माण में सामर्थ्य हासिल की । वर्ष 1956 में जब भारत ने प्रथम अनुसंधान रिएक्टर ' अप्सरा ' चालू किया तब भारत संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस और सोवियत संघ के बाद इस तरह की सुविधा की स्थापना करने वाला छठा देश बना ।

औषधि, कृषि और उद्योगों के क्षेत्र में परमाणु ऊर्जा के उपयोग के लिए भी सशक्त समर्थन प्राप्त हुआ । भारत उन गिने चुने देशों में हैं जहां रेडियो आइसोटोप की आपूर्ति नैदानिक तथा चिकित्सकीय उद्देश्यों के लिए की जाती है । परमाणु ऊर्जा के समान ही अंतरक्षि विज्ञान के क्षेत्र का भी विकास हुआ। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के समान तिरुअंनतपुरम में एक अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की गई । जिसे विक्रम साराभाई अंतरिक्ष विज्ञान केन्द्र नाम दिया गया । साथ ही बंगलौर में उपग्रह विकास, अहमदाबाद में उपग्रह संचार और आध्रप्रदेश के पूर्वी तट पर स्थित श्रीहरिकोटा में प्रक्षेपण सुविधा केन्द्र की स्थापना की गई । इसके अलावा अंतरक्षि विज्ञान से जुड़ी हुई अन्य गतिविधियों के लिए अनेक केन्द्रों की स्थापना की गई । जिसमें प्रणोदक, प्रक्षेपण और डिटेक्टर आदि अन्य उपकरणों का निर्माण शामिल है । अंतरिक्ष कार्यक्रम का जिस तीव्रता और व्यापकता के साथ विकास हुआ उसकी तुलना परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों की प्रारंभिक गतिविधियों से की जा सकती है । भारत में अपेक्षाकृत कम समय में विविध उद्देश्यों के लिए उपग्रह के डिजाइन और निर्माण की क्षमता भी विकसित की और अपने दूरदर्शन, संचार और सुदूर संवेदन कार्यक्रमों के लिए इनकी तैनाती भी स्वयं कर रहा है । ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण की विकास में सफलता प्राप्त की जा चुकी है और जीओ-सिन्क्रोनस प्रक्षेपण यान के विकास का काम भी तेजी से चल रहा है ।

पिछले तीन दशकों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुए विकास में कृषि के क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन किए हैं । वर्ष 1998 के दौरान खाद्यान्न उत्पादन बीस करोड़ टन का आकड़ा पार कर गया । संयुक्त राज्य अमेरिका को पीछे छोड़कर भारत दुग्ध उत्पादन में पहले नम्बर पर आ पहुंचा और सब्जी उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है । हरित क्रांति की शुरुआत जहां गेहूँ और चावल की नई उत्परिवर्ती किस्मों की उपलब्धता के साथ हुई वहीं इसकी सफलता खाद, कीटनाशको और सिंचाई सुविधाओं की पर्याप्तता की वजह से हुई। इससे ग्रामीण साख की उपलब्धता समर्थन मूल्य और सरकार द्वारा खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति इन सबने भी अपनी- अपनी भूमिका निभाई ।

स्वास्थ्य संबंधी अनुसंधान के क्षेत्र में हमारी सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी परम्परा रोनाल्डरास से आरंभ होती है । जिन्होंने मलेरिया के जीवाणु की पहचान की और मच्छरों द्वारा संक्रामण फैलाये जाने की भूमिका को पहचाना । हमारे पास अनेक प्रतिष्ठित चिकित्सा वैज्ञानिक है । जिन्होंने ऊष्ण कटिबंधीय रोगों पर नियंत्रण के लिए कार्य किया । तथापि भारत में अभी भी मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू कालाजार, कुष्ठ रोग जैसी बीमारियां विद्यमान हैं ।

सत्तर के दशक के आरम्भ में इलेक्ट्रॉनिक विभाग का गठन किया गया । एम.जी.के. मेनन इसके पहले अध्यक्ष और सचिव बने । इलैक्ट्रोनिक्स को एक उद्योग के रूप में विकसित करने के लिए इसे मनोरंजन, औद्योगिक और पेशेवर कार्यों के लिए उपकरणों की आपूर्ति करने की व्यवस्था सौंपी गई । हाल के वर्षों में भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी में जौ विकास दर्ज किया है उसकी बुनियाद इलेक्ट्रोनिक्स ही है । सूचना प्रौद्यौगिकी उद्योग का कुल उत्पादन 15,000 करोड़ रुपए पहुंच गया है और इसका एक बड़ा भाग निर्यात प्रयासों का परिणाम है ।

स्वतंत्रता बाद के पिछले वर्षों में प्रौद्योगिकी का विकास काफी प्रभावशाली रहा । औद्योगिक उत्पादन के आरम्भिक क्षेत्रों में यूरिया, फास्फेट और पोटाश जैसे रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन रहा है । साठ, सत्तर और अस्सी के दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र में बड़ी संख्या में उर्वरक संयंत्रों की स्थापना की गई । यह देश में बड़े पैमाने पर रासायनिक उत्पादन करने वाले पहले संयंत्र थे । बाद के वर्षों में अन्य पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी जैसे कि रिफाइनरी, पेट्रो रसायन, प्लास्टिक और सिन्थेटिक्स फाइबर आदि आए । पिछले पांच से अधिक दशकों में सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों क वजह से प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्च कोटि की आत्म निर्भरता प्राप्त हो सकी है ।

5.3 प्रौद्योगिकी के विविध स्वरूप एवं भारत में उनकी स्थिति

1947 में जब भारत का एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अभ्युदय हुआ, तब हम उपभोग की अधिकांश वस्तुएं आयात किया करते थे । यह हमारी विकास यात्रा का प्रारम्भ था । 1951 में जब पहली पंचवर्षीय योजना आरम्भ हुई तो हमारा ध्येय आयात प्रतिस्थापना पर बल देने का था और सातवीं योजना के अंत तक अर्थात् 40 वर्षों के नियोजित विकास के बाद हम अपने विकास यात्रा के ऐसे पड़ाव पर पहुंचे हैं, जहां अपनी आवश्यकता की प्राय: सभी वस्तुएं हम देश में. ही तैयार करने लगे हैं । इस प्रकार पांच दशक पूर्व नियोजन का जो दौर आरम्भ हुआ, आज वह प्रगति के मार्ग पर बड़ी मजबूती से अग्रसर है । विकास की इस यात्रा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने हमारी नीति में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया, इसलिए सीमित साधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को कृषि, उद्योग और सेवा संबंधी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान देना होगा ।

प्रौद्योगिकी के चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों के चयन के मापदंडों को उद्योग व सेवा क्षेत्रों की मांग को ध्यान में रखते हुए तय करना होगा, लेकिन इस बात पर भी गौर करना होगा कि उद्योगों का झुकाव धीरे- धीरे उच्च प्रौद्योगिकी पक्ष से हटाकर बहु प्रौद्योगिकी पक्ष की ओर हो रहा । जिन क्षेत्रों में भिन्न प्रौद्योगिकियों के बीच परस्पर सहयोग बढ़ रहा है, वे इस प्रकार है-

सूचना प्रौद्यौगिकी

सूचना प्रौद्यौगिकी एक वृहद अवधारणा है, जिसमें सूचना प्रक्रिया ओर उसके प्रबंध संबंधी सभी पहलू शामिल है । रेलवे और विमान आरक्षण, बैंकिंग, बीमा, टेलीफोन आदि क्षेत्रों में कम्प्यूटरों का उपयोग पहले ही बड़े सार्थक ढंग से हो रहा है, जिससे कार्यक्षमता बढ़ी है एवं कार्य की नीरसता कम हुई है तथा उत्पादकता एवं कार्यकुशलता में बढ़ोतरी हुई है । मौसम संबंधी पूर्वानुमान, रेडियो, खगोल विद्या, आणविक जीव विज्ञान, हवाई गतिशीलता आदि क्षेत्रों में भी अधिक तीव्र, परिशुद्ध और तथ्यपरक नतीजे प्राप्त करने के लिए कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जा रहा है । इलेक्ट्रोनिक प्रशासन, कार्यालय के वातावरण को आधुनिक बनाने, अपराधों का पता लगाने, दूर चिकित्सा (टेलीमेडिसिन) आदि अन्य ऐसे क्षेत्र हैं जहां सूचना प्रौद्यौगिकी अधिक प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकती है ।

कार्यालयों में कम्प्यूटर प्रणालियां स्थापित करने के शुरुआती दौर में ऐसी भ्रांतियां थी कि इनसे रोजगार के अवसरों में कमी आएगी । किन्तु अब यह प्रमाणिक हो चुका है कि कार्यालयों के आधुनिकीकरण से अपेक्षित जनशक्ति में कमी आ जाने के बजाय इससे काम की गुणवत्ता में सुधार आता है उत्पादन बढ़ता और समय की बचत होती है । कुछ मामलों में तो कम्प्यूटरीकरण से रोजगार के नए अवसर भी पैदा हुए हैं ।

शिक्षा क्षेत्र में सूचना प्रौद्यौगिकी का विशेष उपयोग किया जा सकता है । अनेक ऐसे सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं जिनका इस्तेमाल स्वयं सीखने और विभिन्न विषयों के मूल्यांकन के लिए किया जा सकता है । इस तकनीक को कम्प्यूटर संचार नेटवर्क पर दूरस्थ शिक्षा के लिए भी काम में लाया जा सकता है । शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं एवं प्रभावी तकनीकी सिद्ध हुई है । विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के क्रियान्वयन में इसका अप्रतिम योगदान है । साथ ही दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों के विभिन्न आयामों को भी सूचना प्रौद्यौगिकी से व्यापक लाभ प्राप्त हुआ है । ऐसे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के कारण ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार प्रसार करने में सहायता मिली है, जिसके फलस्वरूप साक्षरता दर में वृद्धि की संभावना है प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा की उपलब्धता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सरकार ने एक टास्क फोर्स का गठन किया है । 'गांवों में फैसिलिटेशन बूथ' की स्थापना किए जाने से कृषि, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से संबंधित विस्तृत सूचना प्रात करने में ग्रामीण जनसंख्या को विशेष लाभ प्राप्त होने की आशा है । इस कार्यक्रम का एक प्रमुख उद्देश्य सहकारी समितियों की कार्यशैली में पारदर्शिता लाने वाला भी है । इससे इन समितियों को अधिक कार्यकुशल बनाया जा सकेगा । प्रायोगिक रूप से इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन महाराष्ट्र के कोल्हापुर तथा सांगली जिले में किया जा रहा है । कार्यक्रम के तहत सहकारी समितियों की योजनाओं तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को एकीकृत किया गया है । इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में जनभागीदारी सुनिश्चित करने का भी प्रावधान है । ढाई करोड़ रुपए की लागत वाली इस योजना से -उत्साह वर्द्धक प्रतिफल प्राप्त हुए हैं । आगामी वर्षों में इसे राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित करने की योजना है । फेसिलिटेशन बूथों को डायल-अप लाइनों द्वारा व्यवसायिक केन्द्रों से संबद्ध किया गया है । कार्यक्रम के समुचित क्रियान्वयन से सामाजिक तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि के अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि की संभावना है । सूचना प्रौद्योगिकी के ग्रामीण एवं जनजातीय लोगों के उपयोग हेतु एक महत्वपूर्ण परियोजना

मध्यप्रदेश के धार जिले में 'ज्ञान दूत' के नाम से चलाई जा रही है । जिसके प्रारंभिक परिणाम बड़े उत्साहवर्धक एवं प्रेरणादायी है ।

सूचना प्रौद्यौगिकी का एक प्रमुख अनुप्रयोग नागरिकों को बेहतर सेवा उपलब्ध कराने के लिए इलेक्ट्रोनिक अभिशासन या ई-गर्वनेन्स है । ई-गर्वनेन्स के माध्यम से सरकार और नागरिकों के बीच कम्प्यूटर नेटवर्क के जरिए सुरक्षित, विश्वसनीय और नियंत्रित संपर्क प्राप्त किया जा सकता है । ई-गर्वनेन्स सिर्फ एक नागरिक सेवा ही नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी और नेतृत्व की नई शैली का मिला-जुला रूप है । सरकारी सेवाओं के उपभोक्ता आज अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो गए हैं । वे सूचना तक पहुंच तथा लेन-देन में पारदर्शिता की मांग करने लगे हैं ।

सूचनाओं के संग्रहण, प्रक्रमण तथा सम्प्रेषण की तकनीक को सूचना प्रौद्योगिकी की संज्ञा दी गई है । भारत के संदर्भ में सूचना प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में अप्रत्याशित प्रगति हुई है । एक उद्योग के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र सर्वाधिक वृद्धि वाला क्षेत्र सिद्ध हुआ है । भारत सरकार द्वारा देश में कम्प्यूटर की उपलब्धता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सन् 2008 तक सबके लिए सूचना प्रौद्योगिकी नामक कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया है । इसके तहत कम्प्यूटर उपलब्धता के दृष्टिकोण से सन् 1998 के प्रति 500 व्यक्तियों पर एक कम्प्यूटर के स्तर से सन् 2008 तक प्रति 500 व्यक्तियों पर एक कम्प्यूटर उपलब्ध कराने के प्रयास किए जा रहे हैं । भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग की समृद्धि में सॉफ्टवेयर उद्योग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है । सन् 1992 तथा 1998 के मध्य सॉफ्टवेयर उद्योग में औसतन 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है । वर्तमान में इस उद्योग में कमोबेस 1,60,000 कर्मी संलिप्त हैं । एक दशक पूर्व भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के अंतर्गत 2 करोड़ डालर का व्यापार किया जाता था, लेकिन वर्ष 1998 - 99 में यह व्यापार 4 अरब डालर का हो गया । इसके अतिरिक्त यह उद्योग भारत के निर्यात क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान 8 प्रतिशत है । सरकारी आकड़ों के अनुसार, सन् 1994 तथा 1998 के मध्य उत्पादन के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की कुल वृद्धि दर 25.5 प्रतिशत तथा निर्यात के क्षेत्र में 43 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी । सन् 2000 तक भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी कम्पनियों द्वारा किया जाने वाला कुल व्यापार 63 अरब डालर का था । 4 जुलाई, 1998 से भारत सरकार द्वारा गठित एक टास्क फोर्स इस उद्योग के विकास हेतु कार्यरत है! प्रारम्भिक चरण में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की आधारभूत संरचनाओं के विकास हेतु प्रयास किए जाएंगे । तथा इसके लिए प्रकाश तंतुओं के नेटवर्क में व्यापक विस्तार करने का प्रावधान किया गया है । वैश्विक स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के सन् 2008 तक 2 खरब डालर के हो जाने की संभावना के आलोक में भारत सरकार ने सॉफ्टवेयर तथा सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं के लिए 50 अरब डालर के औषत वार्षिक निर्यात का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था और उसके लोगों की खुशहाली के लिए प्रौद्योगिकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है । विश्व व्यापीकरण के मौजूदा दौर में प्रौद्योगिकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का निर्धारण करती है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने विश्व भर में मानव की जीवन

शैली को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । मानव चेष्टाओं या मानव के प्रयासों के प्रत्येक क्षेत्र मैं विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने अमिट छाप छोड़ी है । तथा विज्ञान व प्रौद्योगिकी का ही प्रतिफल है कि आज पृथ्वी को 'विश्वग्राम' कहा जाता है ।

सूक्ष्म इलेक्ट्रोनिक

एक दशक में ही यह प्रौद्योगिकी अत्यन्त जटिल हो गई है । सूक्ष्म इलेक्टोनिकी एक ऐसी परस्पर आधारित प्रौद्योगिकी है, जिसका सामग्री, प्रौद्योगिकी, परीक्षण, उपकरणों, सूक्ष्म विनिर्माण' आदि क्षेत्रों के साथ घनिष्ट संबंध है । 80 के दशक में सर्किट समन्वय का स्तर अत्यन्त वृहद स्तर समन्वय (प्रति चिप एक हजार से एक लाख तक घटकों के समन्वय) तक पहुंच चुका था और नब्बे के दशक में एक चिप में दस करोड़ तक घटकों का समन्वय संभव हो गया । समन्वय के उच्च स्तरों के विकसित होने से सर्किटों के मूल्यों में भारी कमी आ गई है।

संगठन (कम्प्यूटर) प्रणालियों में, नियंत्रक इकाई के साथ एक या कुछ विषद स्तर पर समन्वित सर्किटों वाले उच्च 'बिट्' माईक्रोप्रोसेसर भी तेजी से विकसित होने वाला क्षेत्र है । इस माईक्रोप्रोसेसर में सभी गणितीय क्रियायें संभव होती है । नब्बे का दशक, 256 बिट् वाला माईक्रोप्रोसेसर और चाक्षुण (आप्टीकल) प्रोसेसर का दशक था, जो संचार व संगठन का विस्मयकारी रूप से समन्वय कर पाया ।

फाइबर ओप्टिक्स

पिछले डेढ़ दशक में फाइबर आप्टिक्स प्रौद्यौगिकी में हुए तीव्र विकास के फलस्वरूप प्रणालियां और यंत्रों की किस्मों की वाणिज्यिक उपलब्धता में बढ़ोतरी हुई है । अब ध्वनि, डाटा, चित्र, पाठों के सम्प्रेक्षण के नवीनतम माध्यमों का एक नया संसार खुलता जा रहा है तथा कोएक्सियल केबल या ध्वनिपथ लाइन की तकनीक पुरानी पड़ती जा रही है ।

भारत में सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष में आप्टीकल फाइबर प्रणाणियों पर आधारित सम्प्रेक्षण व्यवस्था, राष्ट्रीय संचार के एक महत्वपूर्ण मार्ग के रूप में विकसित हुई है । आजकल की लगभग 30 प्रतिशत सम्प्रेक्षण परियोजनाएं आप्टिक्स फाइबर पर ही आधारित है । पिछले वर्षों में स्थलीय संपर्कों के संयोजन का स्तर बहुत ऊंचा उठा है । वाहक के रूप में प्रकाश के माध्यम से अब 10,000 गाइगाबिट्स डाटा प्रति सैकिण्ड तक भेजा जा सकता है, जो एक अरब दूरभाष संवादों से भी अधिक है । अन्य सभी संचार सम्पर्कों की भांति, फाइबर आप्टिक सम्पर्कों के लिए ट्रांसमीटरों, सम्प्रेक्षण माध्यमों और रिसीवरों के बेहतर डिजाइन और उनका विकास आवश्यक हो चला है । स्थानीय टेलीफोन जैसी प्रणालियों में काफी संख्या में टर्मिनल (ट्रांसमीटर और रिसीवर) होते हैं तथा ये अपेक्षाकृत कम दूरियों पर परिचालित होते हैं । ऐसी प्रणालियों को भी प्रकाशन्तरण प्रौद्यौगिकी के साथ जोड़ा जा सकता है, जिसके लिए सरल व सस्ते कपलिंग मेकेनिज्म के साथ एक प्रकाश स्रोत का उपयोग भी किया जा सकता है । इस प्रक्रिया को आप्टिकल इंटरकनेक्टस कहते हैं । लेकिन वाइड बैण्ड में दूरवर्ती संचार सम्पर्कों के लिए उच्च शक्ति वाले लेसर स्त्रोतों की आवश्यकता होगी ।

दूरंसचार

पिछले कुछ वर्षों में नए टेलीफोन कनेक्शनों की मांग बढ़ती जा रही है । दूरसंचार के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी बड़ी तेजी से विकसित हो रही है । कम्प्यूटर और दूरसंचार के संगम से ऐसी नई-नई सेवाएं उपलब्ध होती जा रही है, जिनके बारे में एक दशक पूर्व सोचा भी नहीं जा सकता था । वीडियो सम्मेलन एक ऐसी ही सेवा है । नई दूरसंचार प्रणाली के विकास में सर्वाधिक खर्चा सॉफ्टवेयर पर आता है और इस क्षेत्र में हमारे पास पर्याप्त सुविज्ञता उपलब्ध है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी विकास की सहायता से दूरसंचार ने क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं । विगत दो दशकों में दूरसंचार के क्षेत्र में व्यापक प्रगति हुई है । दूरसंचार सेवा विभाग तथा दूरसंचार प्रचालन विभाग के निगमीकरण की सहायता से सरकार राष्ट्रीय स्तर पर टेलीफोन नेटवर्क के विस्तार हेतु प्रयास कर रही है । टेलीफोन नेटवर्क के विस्तार से ग्रामण क्षेत्र को सामाजिक एवं आर्थिक मुख्य धारा में समावेशित करने में व्यापक सहायता भी प्राप्त होने की संभावना है । इस योजना को मूर्त रूप देने हेतु भारत सरकार द्वारा सन् 1999 में राष्ट्रीय दूरसंचार नीति का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में दूरसंचार से संबंधित आधुनिक आधारभूत संरचनाओं का विकास करना है ।

वस्तुत: भारत सरकार द्वारा अब तक 3.8 लाख गांवों में सर्वाधिक टेलीफोन की सुविधा उपलब्ध कराई गई है । राष्ट्रीय दूरसंचार नीति 1999 के प्रावधान के अनुरूप सन् 2002 तक मांग के अनुसार टेलीफोन की सुविधा की उपलब्धता की लक्ष्य निर्धारित था । सन् 2005 तक भारत में टेलीफोन घनत्व को 7 तथा सन् 2010 तक 15 करने का भी लक्ष्य है । इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान टेलीफोन घनत्व (0.4) में वृद्धि कर इसे 4 करने की योजना है । साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विश्वसनीय सम्प्रेक्षण सुविधा भी उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है । देश के सभी गांवों में टेलीफोन की सुविधा उपलब्ध कराने के साथ-साथ सभी एक्सचेंजों में विश्वसनीय माध्यम भी उपलब्ध कराया जाएगा । देश में दूरसंचार नेटवर्क के सुदृढ़ीकरण हेतु कई क्षेत्रों एवं विषयों की पहचान की गई है, जिसमें परम्परागत स्वीचों को डिजिटल स्वीचों में परिवर्तित करने तथा हस्तचालित ट्रक सेवाओं को कम्प्यूटरीकृत करने के विषय महत्वपूर्ण हैं ।

संकल्पनात्मक दृष्टिकोण से अत्यधिक तीव्र गति से डिजिटलीकरण तथा तंतु प्रकाशिकी की तकनीक द्वारा सूचनाओं के सम्प्रेक्षण को सूचना उच्च पथ कहते हैं । वस्तुत: डिजिटलीकरण तथा तंतु प्रकाशिकी को एकीकृत किया गया है । इंटरनेट के प्रादुर्भाव तथा तंतु प्रकाशिकी ने विश्वग्राम' की संकल्पना को प्रामाणिकता को प्रदान करने मैं योगदान किया है । पूर्ण आंतरिक परावर्तन के सिद्धांत पर आधारित तकनीक द्वारा प्रकाश के स्पंदों के रूप में सूचनाओं के सम्प्रेक्षण को 'तंतु प्रकाशिकी ' कहते हैं । प्रकाश तंतुओं द्वारा न्यून ऊर्जा का उपयोग कर संकेतों का सम्प्रेक्षण किया जा सकता है । परम्परागत तंतुओं (केबल) की अपेक्षा प्रकाश तंतुओं का बैण्ड विथ अधिक होता है । इन तंतुओं की सफलता उनके द्वारा सम्प्रेषित सूचनाओं पर निर्भर करती है । यह सम्प्रेक्षण प्रकाश के स्पंद विस्तार पर आधारित है, जो वर्णिक तथा बहुसक्त प्रकीर्णन के कारण होता है । दूसरी ओर, स्पंद विस्तार की प्रक्रिया द्वारा ह्रास के बिना सूचनाओं के सम्प्रेषण के क्रम में प्रति सेकण्ड स्पंदों की अधिकतम संख्या को

'बैण्ड विड्थ' कहते हैं । स्पष्टत: तंतु प्रकाशिकी ने इंटरनेट क्रांति को और भी क्रांतिकारी बना दिया है । नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों के टेलीफोन घनत्व में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या को प्रौद्योगिकियों के विभिन्न आयामों के साथ संपर्क में लाने की संभावना प्रबल हुई है ।

लेसर

1960 के आस-पास लेसर किरणों का आविष्कार हुआ, जो प्रौद्योगिकी प्रगति की दिशा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इस आविष्कार के कारण चाक्षुण संचार, आप्टिकल भंडार, आप्टिकल संग्रणन जैसे कई उपयोग सामने आए तथा चिकित्सा और शल्य क्रिया में लेसर के उपयोग विलक्षण सिद्ध हुए । नेत्र विज्ञान, भेषज विज्ञान का एक ऐसा पृथक क्षेत्र था जहां लेसर का उपयोग अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ, जिसका प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है । कैंसर उपचार में लेसर किरणों का कोई विकल्प नहीं है ।

औद्योगिकी क्षेत्र में भी लेसर किरणों ने अपना स्थान बनाया है तथा सरेखण व सर्वेक्षण के लिए धातु में टांका लगाने, छिद्र करने, चमकाने, काटने, क्लैडिंग के लिए तथा अविनाशी परीक्षण के लिए लेसर किरणों का नियमित रूप से प्रयोग किया जा रहा है । लेसर निर्देशित मुद्रक संभवतया आज के सर्वाधिक द्रुत मुद्रक है ।

जैव प्रौद्योगिकी

जैव प्रौद्योगिकी से अभिप्राय: वैज्ञानिक और अभियांत्रिकी सिद्धांतों के उस प्रयोग से है जो आर्थिक मूल्यों का सामान व सेवाएं उपलब्ध कराने में जैविक कारकों के प्रयोग से सामग्रियों के प्रसंस्करण के लिए किया जाता है । वैसे तो दवाओं व भेषजीय उत्पादकों के निर्माण, बहिस्त्रावापचार तथा कृषि संबंधी उपयोगों में जैव प्रौद्योगिकी में वर्तमान प्रक्रियाओं को सुधारने तथा नवीनतम उत्पादों को विकसित करने की असीम संभावनाएं हैं । इसी प्रकार मानव स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, जल जीवन के विविध रूपों, ईंधन, चार और बायोमास के साथ-साथ ऊर्जा और पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न क्षेत्रों में जैव प्रौद्योगिकी का प्रयोग अपरिहार्य हो गया है ।

स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में, वायरल, बैक्टिरिया और परजीवियों द्वारा उत्पन्न विभिन्न रोगों के प्रभावी प्रतिरोधी वेक्सीन बनाने और रोगों का तत्काल व समय रहते पता लगाने और शरीर की देहित स्थितियों को समझाने के लिए नैदानिक विधियां विकसित करने की दिशा में जैव प्रौद्योगिकी में भारी संभावनाएं हैं । अनुवांशिक इंजिनियरिग के माध्यम से तैयार हेपेटाइटिस-बी वैक्सीन, मानव इन्सुलिन, मानव विकास हारमोन और इंटरफरोन्स तो बाजार में आम तौर पर उपलब्ध हैं । जैव-प्रौद्योगिकी मूल रूप से जैविक तंत्रों- सूक्ष्म जीवों, पौधों एवं प्रणालियों ओंर प्रक्रियाओं द्वारा लोगों के लाभकारी पदार्थ और प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से अति उपयोगी है । जैव-प्रौद्योगिकी एक विशाल एवं बहुमुखी संभावनाओं वाली एक ऐसी वैज्ञानिक विधा है जिसमे सृजन एवं विनाश दोनों सम्मिलित हैं । आधुनिक युग में जैव प्रौद्योगिकी एक महत्वपूर्ण विज्ञान के रूप में उभरा है । जिसके फलस्वरूप विश्व में जैव-प्रौद्योगिकी की लहर सी आ गई है । इसके प्रयोग से विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी उपलब्धियां

प्राप्त हुई हैं । जैसे कृषि उत्पादन क्षेत्र, औद्योगिकी उत्पादन, चिकित्सा विज्ञान, उत्तक संवर्धन, जैव ऊर्जा, जैव नाइट्रोजन यौगिकीकरण, जैव कीटनाशक, प्रदूषण नियंत्रण आदि ।

जैव प्रौद्योगिकी की तकनीक काफी पुरानी है । इस तकनीक का प्रयोग ऐतिहासिक काल से ही होता आ रहा है । किण्वन जैसी प्रक्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवों का उपयोग किया जाता था । जैव प्रौद्योगिकी को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है जीव जैव प्रौद्योगिकी जिसमें संपूर्ण कोशिकाओं, ऊत्तक अथवा एकरूप जीव के साथ प्रक्रिया का संपादन होता है । सत्तर के दशक के दौरान आनुवंशिक पदार्थ डी.एन.ए. के कलोनिंग की खोज की जैव-प्रौद्योगिकी के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है । जीव प्रतिरोध हेतु एन्टीबायोटिक अनुसंधान के युग की शुरुआत हुई । पुन : संयोजित डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी की खोज के साथ ही जेनेटिक इंजीनियरिग का विकास हुआ, जिसे इस शताब्दि की महानतम उपलब्धि माना जा सकता है । जैव-प्रौद्योगिकी की खोज ने विश्व की जनसंख्या की अनंत आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

अंतरिक्ष

अंतरिक्ष संचारण ने आधुनिक युग में मुख्यत: अपनी सर्वव्यापी शक्ति के कारण क्रांति ला दी है । इसके अतिरिक्त, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय विकास के संदर्भ में तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले विश्वव्यापी परिदृश्य से संचारण की तात्कालिक तथा विस्तृत पहुंच की आश्यकता है, जिसे उपग्रह संचार द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता है । इसके अतिरिक्त भारत जैसे विकासशील देश में तकनीकी विज्ञान को शिक्षा प्रति उन्मुख बनाने की भी आवश्यकता है' उपग्रह संचार महत्ता के अनुरूप सन् 1970 के दशक में प्रयास अवश्य किए गए । लेकिन देश इस उद्देश्य हेतु विदेशी उपग्रहों पर निर्भर था । सन् 1975 - 76 में उपग्रह निर्देशित दूरदर्शन प्रयोग के क्रियान्वयन से भारत की अंतरिक्ष- आधारित संचार शक्ति के रूप में उदय हुआ । इस प्रयोग में ए.टी.एस. -6 नामक अमेरिकी उपग्रह का उपयोग किया गया, जिसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकीय संचार विज्ञान के विस्तार में भारत को पर्याप्त सहायता मिली । इससे देश में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण आदि से संबंधित दूरदर्शन के अनेकानेक कार्यक्रमों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में प्रगति एवं विकास को प्रश्रय दिया गया । यह कार्यक्रम विश्वभर में प्रारम्भ किए गए सामाजिक प्रयोगों में सर्वाधिक वृहद कार्यक्रम था । इसी प्रकार उपग्रह दूरसंचार प्रायोगिक परियोजना का प्रारम्भ 1977 - 78 में किया गया । इसमें फ्रेन्क्रो-जर्मन उपग्रह सिस्फोनी का प्रयोग किया गया था । यद्यपि भारत को दोनों कार्यक्रमों में विदेशी उपग्रहों का प्रयोग करना पड़ा, फिर भी उनकी सफलता में अंतरिक्ष कार्यक्रमों के सुदृढ़ीकरण में विशेष योगदान दिया । जून 1981 में आरम्भ में भारत ने प्रथम स्वदेशी प्रयोगात्मक संचार उपग्रह 'एप्पल' (एरियन पेसेंजर पेलोड एक्पेरिमेंट) का सफल प्रक्षेपण किया, जिससे भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के समूह की वचनबद्धता और अधिक शक्तिशाली हो गई । भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के तहत सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली के विकास के रूप में किया गया । यह प्रणाली सन् 1983 में राष्ट्र को समर्पित कर दी गई थी । इस प्रणाली के विकास से अंतरिक्ष संचार के क्षेत्र में दूरदर्शितापूर्ण विकास हेतु नए युग का आरम्भ हुआ ।

उपग्रह संचार को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के मुख्य उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा उपग्रह नीति की घोषणा के साथ-साथ 12 जनवरी 2000 से एक कार्य योजना को प्रभावी बनाया गया है । इस नीति के तथ्यों में निम्नांकित प्रमुख है: - 1 भूमण्डलीकरण के उत्तरोत्तर काल में दूरसंचार के क्षेत्र में उदारीकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निजी क्षेत्र की भागीदारी में वृद्धि । 2. इनसेट उपग्रहों की क्षमता का दूरसंचार विभाग, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी को आवंटन, इस कार्य हेतु इनसेट समन्वय समिति द्वारा अंतरफलक अभिकरण के रूप में कार्य करने की व्यवस्था करने का प्रावधान । इसके अतिरिक्त इंसेट की क्षमता गैर सरकारी उपभोक्ताओं को अंतरिक्ष विभाग की अनुशंसाओं के आदान-प्रदान करने की व्यवस्था । 3. उपग्रहों की स्थापना तथा निष्पादन हेतु 74 प्रतिशत से कम विदेशी पूंजी निवेश करने वाली भारतीय पंजीकृत कंपनियों को कार्य करने की अनुमति । इस कार्य हेतु अंतरिक्ष विभाग की अध्यक्षता में एक अंतर-मंत्रालयी समिति का गठन । 4. विशेष परिस्थितियों में ही विदेशी उपग्रहों के प्रयोगों की अनुमति ।

ग्रामसेट, जिसे भू-स्थैतिक उपग्रह प्रमोचक यान द्वारा प्रक्षेपित किया था, में डिजिटल प्रसारण तकनीक का प्रयोग किया । ग्रामसेट पायलट परियोजना के एक भाग के रूप में इसके अंतर्गत डिजिटल साउंड तथा डाटा ब्रोडकास्टिंग प्रणाली को समावेशित किया गया है । इस प्रयोग के तहत अनगिनत सेवाएं उपलब्ध कराने का प्रावधान है । इसके अतिरिक्त गुणवत्ता युक्तियों संगीत तथा समाचार चित्रों तथा मल्टीमीडिया द्वारा संदेश भी भेजे जाएंगे । यह आपदा चेतावनी से संबंधित समस्याओं के समाधान में भी सहायक सिद्ध होगा । पिछले दशक में इंसेट उपग्रहों की श्रंखला तथा आई.आर.एस. -1-ए,-1-बी जैसे आई.आर.एस. दूरसंवेदी उपग्रहों के प्रक्षेपण से अंतरिक्ष यानों के महत्वपूर्ण भूआधारित उपयोगों का ज्ञान हुआ । इन प्रयोगों में संचार, मौसम, विज्ञान, संसाधनों की खोज, आपदा प्रबंधन आदि के क्षेत्र में आते हैं । इन क्षेत्रों के विकास का हमारी सामाजिक आर्थिक प्रगति पर सीधा प्रभाव पड़ता है ।

इंसेट प्रणाली द्वारा हुई संचार क्रांति ने हमारे देश में लंबी दूरी के संचार, राष्ट्रव्यापी टेलीविजन, डाटा रिले, रेडियो तंत्र का फैलाव, मौसम विज्ञान सेवाएं, कम्प्यूटर नेटवर्क आदि जैसी महत्वपूर्ण सेवाओं में वृद्धि की भारी और अभूतपूर्व मांग पैदा कर दी है । इंसेट-2-बी के सफल प्रक्षेपण से दूरसंचार के क्षेत्र में नए चेनलों और कई मूल्य वर्धित सेवाओं की गिनती की जा सकती है ।

परमाणु ऊर्जा

अनुसंधान व विकास के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप ऊर्जा के क्षेत्र में लगभग संपूर्ण दक्षता विकसित कर ली गई है । इसके परमाणु खनिजों के अन्वेक्षण, उत्खनन, निष्कर्षण, शोधन तथा परमाणु पदार्थों में परिवर्तन, रिएक्टरों के लिए ईंधन तत्वों से उत्पादन, रिएक्टरों के डिजाइन व ऊर्जा रिएक्टरों के निर्माण तथा 235 मेगावाट की इकाईयों के इंस्ट्रूमेंटेशन नियंत्रण, गुरु जल के उत्पादन, स्वास्थ्य व सुरक्षा इंस्ट्रूमेंटेशन, प्रयुक्त ईंधन के उन पुनर्विधायन और रेडियो आईसोटोप के निर्माण व प्रयोग सहित संपूर्ण परमाणु चक्र आता है । बिजली उत्पादन के अलावा, जिसे शांतिपूर्ण उपयोगों में परमाणु ऊर्जा के कई अन्य उपयोग भी हैं, जो चिकित्सा,

कृषि और उद्योग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं । पेकेजों में भरी गैस या चूर्ण को, दबे हुए पाइपों में रिसाव का पता लगाने, नौवहन नहरों में गाद के बहाव, इंजनों की टूट-फूट की दरों को ज्ञात करने, खाद्य विकिरण आदि को मापने के लिए रेडियो आइसोटोपों के प्रयोग की यहां चर्चा की जा सकती है ।

सामुद्रिक अनुसंधान

मानव के सामने खड़ी चुनौतियों में से दो मानव अस्तित्व की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है । पहली समस्या तो यह है कि मानव ने स्वयं जिस पर्यावरण का निर्माण किया है उसके खतरों से कैसे निपटा जाए जो मुंहबाए खड़े हैं और- दूसरी समस्या है समुद्र का भविष्य में किस प्रकार उपयोग किया जाए । समुद्र का बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रयोग अत्यावश्यक होगा । जैसे-जैसे समय व्यतीत हो रहा है, समुद्र पर हमारी निर्भरता बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है । प्राचीन काल से ही मानव समुद्र को दो प्रमुख उपयोगों में लाता रहा हे-माल्सियसकी और नौवहन । परन्तु हाल ही में अपतटीय तेल व गैस, अन्य खनिजों, रसायनों, औषधियों और ऊर्जा संरक्षण के साधनों में संबंधित खोजों ने सबको इस बात का विश्वास दिला दिया है कि विश्व विशाल भण्डार समुद्र में छिपा हुआ है । अत: समुद्र को हमारा अंतिम सीमांत कहा जाता है और मानवता समुद्र की ओर भविष्य की आशा के रूप में दृष्टि लगाए हैं । पुरानी कहावत है कि समुद्र पर नियंत्रण रखने वाले देश का पृथ्वी पर साम्राज्य होता है, अब सत्य सिद्ध हो गई है ।

समुद्र एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें मानव को कुछ अपूर्व उपलब्धियों की आशा बनी हुई है । तटीय व अपतटीय गतिविधियां देश में बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है । पिछले वर्षों में हमारे देश में सामुद्रिक विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है । जिसके कारण दुनिया के देशों में हमारी साख काफी बढ़ी है । खाद्य, रसायन, खनिज, ऊर्जा, परिवहन व पर्यटन जैसी विभिन्न समुद्री संसाधनों के अन्वेषण और दोहन के लिए भावी निवेश की योजनाएं बनाई है ताकि हमारी विशाल जनसंख्या की सामाजिक आर्थिक स्थितियां सुधर सके । तेल व गैस की खोज व दोहन के कारण अपीलीय निर्माण व परिचालन गतिविधियों में बड़ी तीव्रता से वृद्धि हो रही है ।

5.4 उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास एवं प्रसारण

वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में उपलब्धियों के लाभ केवल सीमित समूहों को ही प्राप्त हो सके हैं और ये लाभ विशेष तौर पर शहर केन्द्रित समुहों को प्राप्त हो सकें हैं । ग्रामीण जनता पर उनका जो मामूली प्रभाव हुआ है, वह अत्यन्त अपर्याप्त हैं । यह अशांति कर द्विविधता की स्थिति शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच है । इस दिशा में किए गए अध्ययनों से स्थिति की गंभीरता और भी उजागर होती है जिसमें बताया गया है कि जिस समाज में असमानताएं हैं, उनमें प्रौद्योगिकीय परिवर्तन से यह असमानताएं और भी बढ़ती है । एक समाज के सभी सदस्यों के लिए जो लाभकारी है, वह हो सकता है अन्य समाज के सदस्यों के लिए लाभकारी न हो । उदाहरण के लिए समीक्षकों ने बताया है कि हमारे देश में जलपोतों का उपयोग शुरू होने से सम्पन्न मछुआरों को लाभ पहुंचा है और छोटे मछुआरों को इससे नुकसान हुआ है । इस प्रकार विद्यमान असमानता बढ़ी है ।

जनसामान्य के जीवन स्तर में सुधार करने की दिशा में प्रौद्योगिकी समर्थता का अधिकांशत: लाभ नहीं उठाया गया है । ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन लागू करने का काम अत्यन्त जटिल है, इसके लिए ऐसा बहु विज्ञानीय दृष्टिकोण चाहिए जो ग्रामीण समाज की वास्तविक जरूरतों के प्रति संवेदी हो और ग्रामीण परिवेश की वास्तविकता के अनुरूप हो । उदाहरण के लिए यदि जमीन पर काश्तकारी कराना उस खेती करने के मुकाबले अधिक लाभदायक होगा तो इस पर काश्तकारी कराई जाती रहेगी । ऐसी परिस्थिति में, न तो जमीन का मालिक और न ही काश्तकार नई प्रौद्योगिकी में पूंजी लगाएगा । इस प्रकार कृषि संबंधी नई प्रक्रियाओं को अपनाए जाने की दर बहुत कम रहेगी, जैसा कि भारत के संबंध में तर्क दिया जाता है और उसके लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के उपयोग की योजनाएं बनाते समय इस प्रकार की आधार स्तर की वास्तविकताएं ध्यान में रखी जानी चाहिए । साथ ही, विकास तथा वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय समाधानों का अंतरण इस बात के यथार्थ निर्धारण पर आधारित होना चाहिए कि लोगों की वास्तविक आवश्यकता क्या है? प्रौद्योगिकी के प्रसार में और उसे अपनाए जाने की सफलता के लिए लक्ष्य जनसमूह की अपनी जरूरतों के निश्चियन में सक्रिय सहभागिता जरूरी है ।

विकास के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग निर्णायक तत्व है । अत: विज्ञान और प्रौद्योगिकी को विकास कार्यक्रम संबंधी हमारी कार्य नीतियों से कारगर रूप में समन्वित करना अनिवार्य है । जब तक उपयुक्त, नैसर्गिक प्राद्योगिकिया को विकसित नहीं किया जाता है, उनका विसरण नहीं किया जाता और उन्हें अपनाया नहीं जाता, तब तक विकास की दिशा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का योगदान सार्थक नहीं हो सकता ।

यद्यपि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभकारी प्रभाव अनेक हैं । फिर भी हमारे देश में जनसमुदाय ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदानों को अपनाने और उनका उपयोग करने में कुल मिलाकर प्रतिरोध प्रदर्शित किया है । इसके कई कारण हैं जैसे नवीन क्रियाओं की जटिलता, सांस्कृतिक अवंगतता और पूंजी प्रधानस्वरूप तथा सूचना का अभाव, अल्पआय और अंतर्ग्रस्त जोखिम । कई अन्य कारण भी हैं जिनका नवीन क्रियाओं को अपनाने की दिशा में प्रभाव पड़ता है । जैसे लक्ष्य समूह के सदस्यों द्वारा नवीन प्रक्रिया भी महसूस की गई तुलनात्मक लाभप्रदता, संगतता, परीक्षणीयता, प्रेक्षणीयता तथा जटिलता ।

समय की आवश्यकता है कि नई प्रौद्योगिकी को विकसित करते समय और उन्हें अपनाने के लिए बढ़ावा देने की कोशिश करते समय इन कारकों को ध्यान में रखा जाए । उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास, नवीन प्रक्रियाओं के विकास में लक्ष्य जनसमुदाय की सक्रिय सहभागिता तथा अनुसंधान और विस्तार के बीच घनिष्ट संपर्क नितांत परमावश्यक है ।

भारत में जैव प्रौद्योगिकी के विकास एवं प्रसारण हेतु 1986 में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के मंत्रालय अधीन जैव प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की गई । जैव प्रौद्योगिकी विभाग की मुख्य जिम्मेदारियां देश में राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी कार्यक्रम को नियोजित करना, प्रोत्साहित करना और समन्वय करना है । विभाग ने आरम्भ से ही अनुसंधान और विकास तथा जैव प्रौद्योगिकी के त्वरित विकास के लिए मानवीय शक्ति के परीक्षण के

मजबूत आधार को स्थापित करने के लिए एकजुट प्रयास किए हैं । जैव प्रौद्योगिकी के समग्र विकास हेतु मानव शक्ति की आवश्यकता को समझते हुए जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने एक 'एकीकृत मानव शक्ति विकास कार्यक्रम' आरम्भ किया है ।

जैव प्रौद्योगिकी ने कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान गतिविधियों को एक क्रांतिकारी रूप दिया है, जैसे- (1) पादप कोशिका, ऊत्तक, अंग संवर्धन, (2) अनुवांशिक अभियांत्रिकी । इस जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग से ऐसे रूपान्तरणों का जन्म हो सकेगा जो बाद में पौधों के रूप में पुन : उत्पादित हो सकेंगे । जो रोग प्रतिरोधकता, कीट प्रतिरोधकता, शाकनासी प्रतिरोधकता जैसे इच्छुक गुणों को रखने वाले ट्रांसजनिक पौधों को जन्म देंगे । इसे पौधों की प्रकाश संषलेषण की कुशलता में वृद्धि, नाईट्रोजन स्थाईकरण की क्षमता और प्रोटीन संभरण में सुधार, संकटग्रस्त फसलों खाद्य संशोधन के लिए फसलों आदि के लिए भी उपयोग किया जा सकता है ।

वर्तमान में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग आर्द्र भूमि मानचित्रीकरण, सूखा पर्यवेक्षण तथा पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के लिए किया जाता है । इस कार्य के लिए दूरसंवेदन तकनीक की सहायता ली जाती है । इन दोनों ही तकनीकों का जन विभाजन तथा प्रबंधन के कार्यों को बेहतर बनाने में व्यापक योगदान है । ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा से संबंधित सूचनाओं के प्रसारण हेतु सरकार ने 'समाधान केन्द्र' नामक एक अन्य योजना का क्रियान्वयन प्रारम्भ किया है ।

कृषि के क्षेत्र में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा कृषि संचार के विकास हेतु ठोस प्रयास किए जा रहे हैं । परिषद द्वारा कृषि प्रणालियों से संबंधित कार्यों के लिए विशेष योजनाएं बनाने का भी कार्य किया जाता है । साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसानों को इन योजनाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान की जाती है । परिषद द्वारा किसानों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने तथा खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए तकनीक हस्तांतरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं ।

परमाणु और अंतरिक्ष विज्ञानों, इलेक्ट्रानिकी तथा रक्षा संबंधी अनुसंधान जैसे उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारी उपलब्धियां अत्यधिक सराहनीय है । इसी प्रकार कृषि, जैव प्रौद्योगिकी, समुद्र विज्ञान, इंजीनियरी, चिकित्सा और अन्य कई विज्ञानों के क्षेत्रों में भी हमने उल्लेखनीय प्रगति की है।

औद्योगिकी विकास में हमारे अनुसंधान का विकास संबंधी प्रयास उतने जोरदार तो नहीं रहे, परन्तु हमने कुछ ऐसी प्रौद्योगिकियां अवश्य विकसित की है, जिनका या तो वाणिज्यिक उपयोग किया जा रहा है या यह महत्वपूर्ण उपलब्धियां साबित होने जा रही हैं । इसके अतिरिक्त सूक्ष्म इलैक्ट्रोनिकी, सूचना विज्ञान, टेलीमेटिक्स, नई सामग्रियों, पुनरोपयोगी ऊर्जा स्रोतों जैसे उभरते हुए महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हमारे प्रयास उल्लेखनीय रहे हैं । औद्योगिक अनुसंधान सहित विज्ञान व प्रौद्योगिकियों के सभी क्षेत्रों में एक व्यापक आधार तैयार हुआ है, जिसका और विस्तार आधुनिकीकरण और पूर्ण उपयोग करना अत्यावश्यक है ।

5.5 भारत में प्रौद्योगिकी के विकास एवं प्रसारण की बाधाएं

प्रौद्योगिकी के लाभकारी प्रभाव के विषय में इस इकाई में चर्चा की गई है । यह भी प्रासंगिक होगा कि प्रौद्योगिकी आदान को अपनाने तथा उनका उपयोग करने में लोगों का विरोध देखने को मिला है । इन विरोधाभास की स्थितियों के कारणों को यहां उल्लिखित किया है ।

अध्ययनों से पता चलता है कि उन्नत प्रौद्योगिकी को न अपनाने के निम्मलिखित कारण हैं:

- प्रौद्योगिकी की जटिलता
- सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक असंगति
- पूंजी-प्रधान स्वरूप
- निम्न आय, अत्यल्प पूंजी/ उधार (वित्तीय सीमाएं)
- सामाजिक असमानताएं
- कृषि और उद्योग का परम्परागत आधार
- सूचना की कमी
- आधारिक संरचनात्मक सुविधाओं का अभाव
- आदानों की आसान, यथासमय और पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता का अभाव
- विपणन सुविधाओं का अभाव
- नई प्रौद्योगिकी के उपयोग में अंतर्ग्रस्त जोखिम और अनिश्चितता
- अनिश्चित लाभप्रदता या. फायदा
- नवीन प्रक्रियाओं को एकीकृत रूप में प्रायोजित किया जाना
- निरक्षरता / शिक्षा का निम्न स्तर ।

5.6 इकाई सारांश

विकसित देशों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी ज्ञान के अभूतपूर्व विस्फोट के कारण धनी और निर्धन देशों के बीच प्रौद्योगिकी व आर्थिक अंतर घटने के बजाय बढ़ता जा रहा है । नई अग्रगामी प्रौद्योगिकियों में विशेषकर दूरसंचार, सूक्ष्म इलेक्ट्रोनिकी, लेसर, फाइबर ओप्टिक्स, जैव प्रौद्योगिकी तथा नई सामग्रियों के क्षेत्र में हुई प्रगति ने विश्व को एक नई औद्योगिक क्रांति के द्वार पर ला खड़ा किया है । देशों की उत्पादकता, सामाजिक संगठन, सम्पत्ति व शक्ति पर इसके पड़ने वाले प्रभाव उतने ही गहन हैं, जितने कि वाष्प इंजनों, विद्युतीकरण और इंटरनल कम्बश्चन इंजनों के आविष्कारों ने हमारे पूर्वजों के जीवन पर छोड़े । आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी उन्नति का दोहन ही अब विकसित देशों की आर्थिक प्रगति का प्रमुख स्रोत बन गया है । अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में देशों की तुलनात्मक लाभ के लिए नई प्रौद्योगिकी के दूरगामी प्रभाव होंगे । विकासशील देश इस परिदृश्य में जबकि यह नई औद्योगिकी क्रांति औद्योगिक राष्ट्रों में बड़ी तेजी से फैल रही हो, मूकदर्शक बने नहीं रह सकते ।

हमें अपने नीति नियन्ताओं तथा भारत की विज्ञान व प्रौद्योगिकी नीतियां तैयार करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की इस बात के लिए सराहना करनी होगी कि उन्होंने आसन प्रौद्योगिकी प्रगति के दूरगामी प्रभावों को भली भांति समझा है । पंचवर्षीय योजनाओं, नई अग्रगामी प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में राष्ट्रीय क्षमताओं के विकास की कुछ अत्यन्त उत्साहवर्धक प्रवृत्तियां दृष्टिगत हुई है । सम्प्रति भारत विश्व में प्रौद्योगिकी के कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रभावशाली एवं प्रभावकारी स्थिति को प्राप्त कर चुका है । आज प्रौद्योगिकी हमारी सामाजिक एवं देशज आवश्यकताओं को संबोधित कर विकास के नए मार्ग को प्रशस्त कर रही है जो देश के उज्ज्वल एवं स्वर्णिम कल के मार्ग को प्रशस्त करता प्रतीत होता है ।

5.7 अभ्यास कार्य

1. प्रौद्यौगिकी विकास का भारतीय परिदृश्य किस तरह का रहा है?
2. प्रौद्यौगिकी के विविध स्वरूपों एवं उनके विकास क्रम की विवेचना कीजिए?
3. भारत में उपयुक्त प्रौद्यौगिकी के विकास एवं प्रसारण की बाधाओं को स्पष्ट कीजिए?

5.8 संदर्भ ग्रंथ

Allen, Thomas J. (1971) Technology Transfer to Developing Countries. The International Technology Gatekeeper, Mass., MTS Press, Crambige,

Baldev, Raj Nayar (1983), India's Quest for Technological Independence: The Results of Policy (Two Volumes), Lancers, New Delhi.

Bala Ramulu, ch. (2000): Technology and Rural Development, Rawat Publication, Jaipur.

Basalla, George (1998): The Evolution of Technology, Cambridge University Press, Cambridge.

Bhalla A.S. (1979): Towards Global Action for Appropriate Technology, Oxford University Press, Oxford.

Nanda, B.R. (ed.) (1977): Science and Technology in India, Vikas, New Delhi.

Singh, Katar (1986): Rural Development: Principles, Policies and Management, Saga Publications, New Delhi

इकाई-6

राष्ट्रीय एकीकरण की नीतियाँ : सांप्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकीकरण के विशेष संदर्भ मे

इकाई संरचना

6.0 उद्देश्य
6.0 प्रस्तावना
6.2 राष्ट्रीय एकीकरण; अर्थाभिव्यक्ति; राष्ट्र, राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता के विशेष संदर्भ में
6.3 राष्ट्रीय एकीकरण के मूलाधार
6.3.1 राजनीति परिप्रेक्ष्य
6.3.2 राजनीतिक - सांकृतिक स्थिती
6.3.3 भौगोलिक
6.3.4 धार्मिक समन्वय
6.3.5 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
6.3.6 संचार एवं सूचना माध्यम
6.3.7 जातीय प्रेरिप्रेक्ष्य
6.3.8 वैचारिक - मानसिक स्थिति
6.3.9 संविधान व कानून
6.4 भारत मे राष्ट्रीयकरण एकीकरण : चुनौतियाँ एवं समस्याएं
6.4.1 भाषावाद की समस्या
6.4.2 क्षेत्रीयता की समस्या
6.4.3 जातिवाद की समस्या
6.4.4 अल्पसंख्यकों की समस्या
6.4.5 अपरिपक्व संचार माध्यम
6.4.6 भ्रष्टाचार की समस्या
6.4.7 सांप्रदायिकता की समस्या
6.4.8 सांप्रदायिकता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
6.4.9 सांप्रदायिकता का अर्थ
6.5 सांप्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकीकरण : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य
6.6 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के अभ्युदय का अतीत
6.7 राष्ट्रीय एकीकरण हेतु प्रयासों का आलोचनात्मक मूल्यांकन
6.7.1 भावनात्मक एकीकरण समिति
6.7.2 वैधानिक उपाय
6.7.3 त्रिदिवसीय राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन

6.7.4 राष्ट्रीय एकता परिषद

6.7.5 इंसानी बिरादरी

6.7.6 अखिल भारतीय सांप्रदायिकता विरोधी समिति

6.7.7 राष्ट्रीय एकता पर गठित कार्यदल

6.7.8 हम एक है प्रदर्शनी का आयोजन

6.7.9 सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन

6.8 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण हेतु सुझाव -

6.8.1 एक संपर्क राष्ट्रभाषा के साथ सर्वभाषा सम्मान, विकास व संरक्षण हो।

6.8.2 संविधान की समग्र समीक्षा एवं सर्वस्वीकृत परिवर्तन हो।

6.8.3 शिक्षा राष्ट्रीय एकता का सशक्त माध्यम बने।

6.8.4 जन संचार माध्यमों की सकारात्मक सक्रियता

6.6.5 राजनीति का मूल्यहीन व व्यावसायिक चरित्र समाप्त किया जाए।

6.3.6 समन्वय और समान सम्मान की संस्कृति का विकास हो।

6.8.7 राष्ट्रीय एकता प्रयासों का कार्य अंकेक्षण हो।

6.8.8 अन्य सुझाव

6.9 निष्कर्ष

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

1. राष्ट्रीय एकीकरण का अभिप्राय जानना ।
2. राष्ट्रीय एकीकरण के मूल आधारों की चर्चा करना ।
3. राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष आने वाली चुनौतियों की पहचान करना ।
4. सांप्रदायिकता, सांप्रदायिक सद्भावना व राष्ट्रीय एकीकरण के मध्य अंतर संबंधों की व्याख्या करना ।
5. सांप्रदायिक सद्भावना तथा राष्ट्रीय एकीकरण के भारतीय संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करना ।
6. राष्ट्रीय एकीकरण के भारत में अतीत को प्रकाश में लाना ।
7. राष्ट्रीय एकीकरण प्रयासों का यथार्थ ज्ञात करना ।
8. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण हेतु सुझाव प्रेषित करना ।

16.1 प्रस्तावना

भारत में सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का अतीत गौरवपूर्ण रहा है । राष्ट्र राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रभक्ति की भावना का प्राबल्य वैदिक काल में अपनी विद्यमानता प्रदर्शित करता है । प्राचीन भारत में राष्ट्रीय एकता आंतरिक दुराग्रहों, महत्वाकांक्षाओं एवं लड़ाई झगड़ों से बुरी तरह आहत रही वही मध्यकाल व अर्वाचीन काल में बाह्य आक्रांताओं के कारण नही पनप सकी ।

शासन संस्कृति, सभ्यता की विविधताओं के कारण राजनैतिक भूगोल, धर्म, जाति, भाषा एवं शासन संबंधी समस्या आज भी भारत की एकात्मता को चुनौती देती रहती है, तो एकीकरण के सूत्रों को और मजबूत बंधन में बांधती भी है ।

स्वतंत्र भारत के लोकतंत्रात्मक गणतंत्र में हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में राष्ट्रीय एकात्मता को विशिष्ट स्थान दिया है । लेकिन फिर भी इतिहास प्रदत्त भूले एवं विरासतें भारत में साम्प्रदायिकता एवं अलगाववाद के घावों को आज भी हरा कर रही है । वही पंथनिरपेक्षता का नारा निष्प्रभावी हो रहा है । स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य को अपने जीवन का मुख्य कार्य स्वीकार किया था । प्राचीन भारतीय संस्कृति विविधताओं की विद्‌यमानता के बावजूद भौगोलिक एकता एवं समुच्चय की भावना का गहरा संस्कार लिए थी जिसमें एकत्व की प्राप्ति उसकी अपनी चारित्रिक विशिष्टता का प्रतीक है ।

अंग्रेजों की फूट डालो राज करो की नीति आज भी हमारी नियति का हिस्सा बन जाती है, तो इस विशाल जन व धरा वाले देश भारत में विविधता में एकता के बंधन कमजोर पड़ने लगते है । अत: राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या समाधान के संदर्भ में इसके विभिन्न पहलुओं पर तथा समग्र राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सोचकर एक वैकल्पिक स्थायी समाधान का व्यवहारिक प्रारूप प्रदान करने का प्रवास ही अतीत की भूलों का वर्तमान समाधान सर्वस्वीकार्य अपेक्षानुकूल संभव है ।

6.2 राष्ट्रीय एकीकरण : अर्थाभिव्यक्ति; राष्ट्र, राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता के विशेष संदर्भ में

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या एवं राष्ट्रीय एकीकरण के बसे में मंथन के साथ ही राष्ट्र क्या है? राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता क्या है? समझना समीचीन प्रतीत होता है ताकि हम राष्ट्रीय एकीकरण के विचार को स्पष्ट ग्रहण कर उसे समझ के साथ व्याख्यापित कर सकें । राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकीकरण राष्ट्र शब्द में आबद्ध हैं । जिसका अभिप्राय सीधे शब्दों में पुरातन अर्थों में राष्ट्र जातिय एकता के सूत्र में बंधी वह जनता है, जो किसी अखंड भौगोलिक प्रदेश में निवास करती है । तथा जिसमें एकता की भावना प्रबलता से विद्‌यमान रहती है । रोबर्ट बाइस के अनुसार "अब राष्ट्र एक राष्ट्रीयता है जिसने अपना संगठन एक राजनैतिक संस्था के रूप में कर लिया है, और जो स्वाधीन हो अथवा स्वाधीनता प्राप्ति का इच्छुक हो । " गार्नर के अनुसार राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से संगठित और एकरूपीय जन समुदाय है, जिसे अपने आध्यात्मिक जीवन की एकता और अभिव्यक्ति का ज्ञान है, और जो उसे बनाये रखना चाहता है । राष्ट्र एक ऐसे जनसमूह का नाम है जो अपने एक एकात्मकता की अनुभूति करता है तथा दूसरों से अपने को विशिष्ट मानता है । जे. एस. मिल कहते है कि राष्ट्र-मानव-जाति का एक ऐसा भाग है जो अन्य लोगों की तुलना में एक-दूसरे से सामान्य सहानुभूतियों के द्‌वारा संयुक्त हो जिसमें एक ही सरकार के अधीन रहने की प्रबल इच्छा हो ।

राष्ट्रवाद ही आधुनिक राज्यों एवं राजव्यवस्था का प्रमुख आधार है तथा राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना है । राष्ट्रवाद एक शाश्वत विचारधारा के साथ आत्म-निर्णय के

अधिकार का प्रतीक है । राष्ट्रवाद जनता के समूह के चेतना अनुभूति या समष्टिभाव का वह आधुनिक तत्व है जो कि व्यक्ति के भाग्य और भविष्यता (destiny) को राष्ट्र राज्य से एकाकार करने की प्रक्रिया को प्रेरित करता है । रघुकुल तिलक के अनुसार वह दूसरे राष्ट्र के लोगों से अपने को पृथक समझने का भाव है । इसी दृष्टि से नेहरू ने इसे विरूद्ध अनुभूति कहा है (Anti feeting)। क्रेन-ब्रिन्टर के अनुसार वह आधुनिक पश्चिमी सभ्यता में पाये जाने वाले सर्वसमुदाय की भावना से कम नहीं है । राष्ट्रवादी के लिए राष्ट्र ही सर्वोत्कृष्ट और निष्ठा का आधार होता है । हैन्स कोहन के अनुसार राष्ट्रवाद राष्ट्र-राज्य की मांग करता है, राष्ट्र-राज्य का निर्माण राष्ट्रवाद को शक्तिशाली बनाता है यहां इतिहास में अन्यत्रवत हम सतत अंतर्निर्भरता तथा अन्तर्क्रिया पाते हैं । "

राष्ट्रीयता एक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक भावना है । प्रो जिर्मन ने राष्ट्रीयता की परिभाषा देते हुए लिखा है कि राष्ट्रीयता मेरे लिए एक राजनीतिक प्रश्न नहीं है । यह प्रमुखतः तथा अनिवार्य रूप से एक आध्यात्मिक प्रश्न है राष्ट्रीयता धर्म की भांति व्यक्तिगत है, मनोवैज्ञानिक है, एक मानसिक स्थिति है तथा अनुभव करने, विचार करने और रहने का ढंग है । इस प्रकार एक ही देश में विभिन्न भाषा धर्म तथा संस्कृति के होते हुए भी राष्ट्रीयता में एकरूपता की भावना पायी जाती है ।

राष्ट्रीय एकीकरण एक समग्र विचार या अवधारणा है जिसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आयाम है । यह एक ही राष्ट्र की राष्ट्रीयताओं के मध्य समान मूल्यों के होने की बात से जुड़ा है । भारतीय संविधान भी राष्ट्रीय एकात्मकता के निर्माण के संदर्भ में प्रावधान रखता है । एकीकरण को परिभाषित करते हुए डा. घूरिये लिखते है, राष्ट्रीय एकीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है जिसमें मानसिक एवं शैक्षणिक प्रक्रिया के साथ-साथ लोगों के मन में राष्ट्र के प्रति एकता, दृढ़ता, संगठन और वफादारी की भावना पायी जाती है । ऐसे सभी लोग अपने को एक ही राष्ट्र का नागरिक स्वीकार करते है । संबद्धता की भावना राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यही भावना लोगों को एकता के सूत्र में पिरोती है । राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्र द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों को वफादारी से समूहों द्वारा सहभागिक प्रयास किया जाता है ।

6.3 राष्ट्रीय एकीकरण के मूलाधार

भारत जैसे विशाल व विविधताओं वाले देश में राष्ट्रीयता एकीकरण का एक आधार नहीं हो सकता है यह एकाधिक तत्वों के सम्मिलन से ही संभव है । विश्व का कोई भी राष्ट्र एक तत्व से नहीं बल्कि एकाधिक तत्वों के सम्मिलन से ही एकीकृत स्वरूप ले सका है । विश्व में भारत ही विविधता में एकता का ज्वलंत उदाहरण है । बेश्नर तथा लेनडेकर ने एकीकरण के चार प्रकारों का उल्लेख किया है ।

(i) सांस्कृतिक एकीकरण
(ii) आदर्शात्मक एकीकरण
(iii) संरचनात्मक एकीकरण
(iv) प्रकार्यात्मक एकीकरण

इसी प्रकार एस. कोलमेन तथा कार्ल. जी. रोजबर्ग ने भी राष्ट्रीय एकीकरण के दो प्रकारों का उल्लेख किया है ।

(i) राजनीतिक एकीकरण (ii) भू-क्षेत्रीय एकीकरण

भारत जैसे विविधताओं वाले देश जैसी स्थिति में राष्ट्रीय एकीकरण के आधारों का उल्लेख अत्यंतावश्यक है जो निम्नानुसार है -

6.3.1 राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

किसी एक केन्द्रिय सत्ता की अधीनता ही राजनीतिक एकात्मकता कहलाती है । अकबर एवं अशोक के काल के बाद अंग्रेजी शासन काल में भारत एक ही शासन की अधीनता में रहा बाकी काल खंड राजनैतिक व भौगोलिक छिन्न-भिन्नता के रहे । राष्ट्रीय एकता के सुव्यवस्थित स्वरूप का अभ्युदय आजादी के पश्चात हुआ है जो आज तक बना हुआ है ।

6.3.2 राजनीतिक - सांस्कृतिक स्थिति

सदियों से भारतीय संस्कृति एवं समाज एकता के मजबूत आधार रहे है । जाति व्यवस्था, वर्णव्यवस्था तथा संयुक्त परिवार प्रणाली, भाषा, रहन-सहन और खान-पान में भिन्नता होते हुए भी भावनात्मक एकता में आबद्ध है । सदियों से पुरातन प्रथाएं, रीति रिवाज, रूढ़ियां एवं परंपराऐं अब भी प्रचलित है । संस्कृति के सदभावी एवं सहिष्णु चरित्र के कारण अनेक बाह्य संस्कृतियां भारतीय संस्कृति में आत्मसात हो गयी तथा हमारी संस्कृति का चरित्र फिर भी अक्षुण बना रहा । आज भी भारत की इस गंगा-जमुना संस्कृति में एकता का भाव व्यवहारत: विद्यमान है ।

6.3.3 भौगोलिक स्थिति

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक इकाई के रूप में है । कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा असम से गुजरात तक भारत राष्ट्र की सीमाएं है । चारोधाम भारत के कोटिश : जन-जन को एकता के सूत्र में पिरोते है । हिमालय तथा हिन्द महासागर इसकी सीमा निर्धारक है तथा एक ही भौगोलिकता में निवास करने की भावना को जगाते है । मातृभूमि के प्रति श्रद्धा बलिदान और त्याग की भावना ने भारत माता की 'जननी जन्म भूमि स्वर्गादपी गरियसि" जैसी स्थिति में लोगों के मन में ला दिया है ।

6.3.4 धार्मिक समन्वय

धार्मिक समभाव व सामंजस्यता भारत की धरा पर सदैव पुष्पित-पल्लवित होती रही है । हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, धर्मों का भारत में उदय हुआ तथा अपने मूल सिद्धांतों की समानता के साथ आज भारत में धार्मिक समन्वय कायम इसी वजह से है । धर्म ने भारत को सदियों से एकता के सूत्र में बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । सभी भारतवासियों की एक दूसरे धर्म के प्रति सम्मान व आस्था है । भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है जहां प्रत्येक को अपना धर्म पालन की पूर्ण स्वतंत्रता है । लेकिन कभी-कभी धार्मिक उन्माद एवं मतमतान्तर धार्मिक

विद्वेष का वातावरण बना देते है । लेकिन राष्ट्रीय एकात्मता में ज्यादा बाधक सिद्ध नहीं होते है।

6.3.5 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारत में द्रविड थे, फिर आर्य आये और यही बस गये । वैदिक युग से आज तक का भारतीय इतिहास इस बात का प्रमाण है कि विभिन्न धर्म, मत, संप्रदाय, जातियां और प्रजातियां बनी रही है फिर भी देश में समन्वय और एकता की भावना साधारणतः सदैव ही विद्यमान रहती है ।

6.3.6 संचार एवं सूचना माध्यम

सूचना एवं संचार माध्यम भी राष्ट्रीय एकीकरण का मूलाधार है । समाचारपत्र, रेडियो, दूरदर्शन, शिक्षा तथा अन्य साहित्य फिल्में राष्ट्रीय एकीकरण का एक सशक्त माध्यम है । भारत में आजादी के बाद व पूर्व इनकी भूमिका निर्णायक रही है ।

6.3.7 जातिय परिप्रेक्ष्य

भारतीय समाज अनेक संप्रदायों एवं जातियों में बंटा हुआ है । हिन्दू समाज स्वयं जातियों एवं उपजातियों में विभाजित होते हुए मानसिक रूप से सभी जातियों में पारस्परिक निर्भरता की समानता जो उन्हें एकता के सूत्र में पिरोकर रखती है पायी जाती है । भारत प्राचीन काल से विभिन्न जातियों, प्रजातियों एवं संस्कृतियों का द्रवण पात्र रहा है । बाह्य आक्रांता जातियां यहां आयी और यही के समाज में घुल-मिल गयी और उसी के अंग बन गये । यूरोप भी एक समय जातिय विद्वेष की विभिषिका में जला लेकिन भारत एकता के प्रबल स्तंभ के रूप में खड़ा रहा।

6.3.8 वैचारिक - मानसिक स्थिति

वैचारिक एवं मानसिक एकता भी भारतीय राष्ट्रीय एकता के मूलाधारों में से एक है । विभिन्न मत मतांतरों, धर्मो, रीति-रिवाजों तथा संस्कृतियों के विचारक अपने आप को राष्ट्र का अभिन्न अंग मानते है । व्यक्तिगत हित से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि माने तथा एकता के सूत्र में बंधते हुए संकट की घड़ी में सर्वस्व समर्पण को तैयार रहें । भारत चीन युद्ध हो या भारत पाक युद्ध सारा राष्ट्र उस संकट की घड़ी में एकात्म सशक्त होकर खड़ा था ।

6.3.9 संविधान व कानून

किसी भी राष्ट्र की एकता में उस राष्ट्र का संविधान एवं कानून महत्वपूर्ण आधार के रूप में भूमिका अदा करते है भारतीय व्यवस्थापिका ने भी जिस संविधान व कानून को स्वीकृत किया है निसंदेह आज भारतीय राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यंत कारगर सिद्ध हो रहा है । स्वतंत्रता, समानता, न्याय, का सभी के लिए समान प्रावधान भारतीय विभिन्नता में एकता को प्राबल्य प्रदान करता है । सामाजिक समानता, आर्थिक समानता सत्ता में भागीदारी के अवसर प्रदान करने के कानूनी एवं संवैधानिक प्रावधान आज भारतीय समाज में सकारात्मक क्रांतिकारी

परिवर्तन ला रहे है जो इस देश की एकता को प्रगाढ़ कर रहे है । स्वतंत्रता के पश्चात भारत में राजनैतिक चेतना का जागरण तीव्रता से होने के कारण भी राष्ट्रीय एकता का विचार भारतीयों के दिलों में मजबूत होता जा रहा है ।

6.4 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण: चुनौतियाँ एवं समस्याएं

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं चुनौती के रूप में समय-समय पर विभिन्नता में एकता के भारतीय एकता के चरित्र को खंडित करती रहती है । भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या के बारे में चर्चा करते हुए लिखते है कि राजनीतिक विकास की बुनियादी समस्या एकीकरण की है अर्थात नये राजनीतिक केन्द्र बिन्दु की स्थापना और दृढ़िकरण, उनका बहिर्मुख प्रसार, विभिन्न संस्थाओं का पल्लवन, विविधता का एकता के सूत्र में सराहकर एक राष्ट्र का निर्माण अर्थात एकीकरण की क्षमता का विकास । यही समस्या हमारे राष्ट्र-निर्माताओं के सामने सबसे बड़ी समस्या रही है । प्रो. एम. एन. श्रीनिवास लिखते है कि विभाजनकारी प्रवृत्तियां आज भी अस्तित्व में है और भविष्य में कई वर्षो तक बनी रहेगी । कोई भारत में कहीं भी रहे वह जाति के संसार में ही रहता है । देश को अधिकांश जनता के लिए भारत एक नयी कल्पना है और इस कल्पना के सत्य रूप में होने में समय लगेगा ।

समय-समय पर विपिन आयोगों, समितियों, शोधार्थियों, व विचारकों ने इस समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की तथा सुझाव भी दिये लेकिन एकीकरण का व्यवहार कल्पना मात्र प्रतीत होता है । भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में निम्नलिखित चुनौतियां एक समस्याएं है -

6.4.1 भाषावाद की समस्या

भारत में प्रत्येक प्रांत की अपनी-अपनी भाषाएं है जो पृथकतावादी प्रवृत्ति को तेज करने में आग में घी का काम करती है । भाषागत मांगों के कारण आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तथा पंजाब का विभाजन हुआ। एन. सी. राय के अनुसार, भाषावाद का क्रम आरंभ हो चुका है, यह एक शेर है जो रास्ते पर आ गया है, तो उसे मार दिया जाए या फिर वह भारतीय राष्ट्र को मार देगा। भाषा की समस्या नि :संदेह भारत के लिए कसौटी है । राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है कि एक राष्ट्र की एक ही भाषा हो । 16वीं सदी तक भारत में राजकाज की भाषा विशिष्टवर्ग की भाषा रही अत : राजकाज कार्यों में भाषा की कोई समस्या नहीं थी । भाषा की समस्या अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात उर्दू के स्थान पर अंग्रेजी को राजकाज की भाषा बनाने के बाद ही आरंभ हुई । स्वाधीनता से वर्ष के समय कांग्रेस भाषा के आधार पर प्रांतों की रचना के सिद्धांत को मान चुकी थी । 1920 के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग की । संविधान निर्मात्री सभा ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसकी लिपि देवनागरी रखी गयी । साथ ही यह भी कहा गया कि जिन प्रांतों में हिन्दी का प्रचलन नहीं है वे प्रांतीय भाषा या अंग्रेजी का प्रयोग कर सकते है । 10 वर्ष के अंदर केन्द्रीय स्तर पर तथा शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग की बात

कही गयी । साथ ही यह भी कहा गया कि संसद जब तक चाहे अंग्रेजी को बनाये रखने की अवधि बढ़ा सकती है।

भाषावाद की समस्या तब पैदा होती है जब राष्ट्र में अनेक भाषाऐं होने पर एक भाषा वाले दूसरे भाषा से अपनी श्रेष्ठता का दावा करते है ऐसे में दूसरी भाषा का थोपा जाना तनाव पैदा करता है । भारत में भाषा की समस्या के अनेक पहलू रहे जैसे:

(i) राष्ट्र भाषा क्या हो?

(ii) अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी का प्रचलन

(iii) अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग,

(iv) शिक्षा का माध्यम क्या हो?

(v) विभिन्न प्रांतों एवं केन्द्र के बीच संपर्क भाषा क्या हो?

(vi) भाषा के आधार पर प्रांतों का निर्माण

सन् 1948 में भाषायी प्रांत कमीशन ने भाषा के आधार राज्यों के निर्माण की स्वीकृति प्रदान कर दी । सन् 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की जिसने सन् 1955 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । आयोग ने भाषा और संस्कृति के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को राष्ट्रीय एकीकरण के लिए अपरिहार्य मानते हुए आंध्र, मैसूर, मद्रास, केरल, गुजरात, महाराष्ट्र, राज्यों का पुनर्गठन किया जिससे पंजाब को भाषायी तौर पर अलग कर पंजाब व हरियाणा दो राज्य बना दिये गये । सन् 1963 में जब हिन्दी को राजभाषा बनाने का बिल संसद में पेश किया जो दक्षिणी राज्यों ने इसका पूरा विरोध किया हड़तालें दंगे,. तोड़ फोड़ हुई तथा उसी की प्रति क्रियास्वरूप उत्तर भारत में हिन्दी प्रांतों में अंग्रेजी के खिलाफ आंदोलन हुए।

भाषा की समस्या शिक्षा के क्षेत्र में पैदा हुई अहिन्दी भाषी लोग अंग्रेजी चाहते थे तथा हिन्दी भाषी क्षेत्र अंग्रेजी को हटाना चाहते थे । इस समस्या के समाधान के लिए 1959 में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राज्यों से सलाह करके त्रिभाषा सूत्र बनाया जिसका उद्देश्य अंग्रेजी के स्थान पर धीरे-धीरे हिन्दी को लाना था। इस सूत्र के मुताबिक हिन्दी भाषी प्रांतों में प्रत्येक बच्चे को अंग्रेजी और हिन्दी के साथ-साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं में से किसी एक को सीखने का प्रस्ताव रखा गया था । साथ ही अहिन्दी प्रांतों में हिन्दी व अंग्रेजी के साथ-साथ अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में से कोई एक भाषा सीखनी होगी । किन्तु मद्रास सरकार ने इस सूत्र को अस्वीकार कर दिया । महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत ने अंग्रेजी के विरोध में अपनी पदम भूषण की उपाधियां केन्द्र सरकार को लौटा दी ।

इस प्रकार हम देखते है कि भाषा की समस्या राष्ट्र के लिए एक अहम् समस्या है जो कभी-कभी घृणा, तनाव व मनमुटाव का वातावरण उत्पन्न कर राष्ट्र की एकता को चुनौती देती रहती है ।

6.4.2 क्षेत्रीयता की समस्या

क्षेत्रवाद अथवा क्षेत्रीयता, राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौतीपूर्ण समस्या है । सामान्य अर्थो में प्रांतवाद या क्षेत्रवाद से अभिप्राय स्थानीयतावाद पृथक्करण और अलगाव से है । क्षेत्रीयता के

समर्थक संघवाद के विरोधी है तथा वे राज्यों को अधिक स्वायत्ता के पक्षधर होते है । अति स्वायत्ता के पक्षधर तो अपने राज्य को अलग राष्ट्र का दर्जा भी देने की मांग करते है जैसे कश्मीर पंजाब आदि । वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार क्षेत्रवाद. में एक विशिष्ट उप राष्ट्र या अधो राष्ट्र क्षेत्र के प्रति जागरूकता और भक्ति पायी जाती है जिसकी विशेषता सामान्य संस्कृति, पृष्ठभूमि या हित है ।

प्रादेशिक भावना के बलवती होने का दुष्परिणाम न केवल संघ और राज्य के संबंधों पर पड़ता है अपितु राज्यों के आपसी संबंध भी बिगड़ते है । भाषा व सीमा का विवाद जनता व राज्यों के मध्य तनाव पैदा करते है । भारत में क्षेत्रीयता की समस्या के जनक चार कारक रहे है -

1. भाषा समस्या, आर्थिक विषमता और स्थानीय नेतृत्व को अधिक मजबूत बनाने आदि विषयों को लेकर एक क्षेत्र के लोग अपने को संपूर्ण भारत के स्थान पर एक प्रांत या क्षेत्र से अधिक आबद्ध मानने है ।
2. राष्ट्रीय नेतृत्व के स्थान पर स्थानीय नेतृत्व पर अधिक बल दिया जाता है ।
3. केन्द्र व राज्यों के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक हितों को लेकर टकराव ।
4. केन्द्रीय सत्ता का उल्लंघन

सितंबर 1970 में डी. एम. के. के तत्वावधान में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें प्रस्ताव पारित कर राज्यों को अधिक स्वायत्ता की मांग की नई । डी.एम. के. के नेतृत्व में राज्य में पृथकतावादी आंदोलन चलाया गया। आज भी महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, असम, उत्तरप्रदेश, बिहार के मध्य सीमा संबंधी विवाद गहराये हुए है । महाराष्ट्र, असम तथा बंगाल में मारवाड़ियों के खिलाफ आंदोलन तथा, महाराष्ट्र महाराष्ट्र वासियों के लिए है तथा बंगाल - बंगालियों के लिए है का नारा पृथकता वादी व क्षेत्रवादी कट्टरपन का द्योतक है । विभिन्न प्रांतों में आदिवासियों की स्वायत्ता की मांग में शुद्धता एवं संकीर्णता अंतर्निहित है । प्रादेशिक लगाव तथा निष्ठा के कारण देश की आधारभूत एकता को भुला दिया जाता है जिससे लोकतंत्र एवं स्वाधीनता के लिए खतरा पैदा हो जाता है ।

6.4.3 जातिवाद की समस्या

जाति और नस्लवाद आज संपूर्ण विश्व के सामने विकराल समस्या के रूप में खड़ी है । भारत जैसा विभिन्न जातियों एवं उपजातियों वाले देश में जातिवाद राष्ट्रीय एकता के तानेबाने को विभिन्न करता नजर आ रहा है । प्रो. श्री निवास ने ठीक ही लिखा है कि “कोई भारत में कहीं भी रहे वह जाति के संसार में ही रहता है ।" नृवशीय श्रेष्ठताएं तथा जातिगत राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठन जातिवादी तत्व को और मजबूत कर रहे है । भारतीय लोकतंत्र तो आज जातिता हो गया है । शुद्रों, पिछड़ों, सवर्णों के मध्य तथा हिन्दू, मुस्लिम व ईसाईयों के मध्य जातिगत वैमनस्य राजनीतिगत लाभों के द्वारा बढ़ाया जा रहा है । डा. श्री निवासन के अनुसार "मैसूर में पंचायतों के चुनाव से लेकर राज्य में मंत्रियों और सचिवों की नियुक्ति तक में जातिय आधार अपनाया गया ।

रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक "भारतीय राजनीति में जाति" तथा रुडोल्फ एवं रुडोल्फ ने अपनी पुस्तक "मॉडर्निटि ऑफ ट्रेडिशन" में जाति एवं राजनीति के मध्य निबंधों का विस्तार से वर्णन किया है । प्रजातंत्र में राजनीतिक सत्ता प्राप्ति में जातिय टकराव एवं जातिवाद का सहारा आम हो गया है । महाराष्ट्र में मराठों एवं महारों के बीच, बिहार में दलितों, क्षत्रियों, भूमिहारों की लड़ाई, उत्तरप्रदेश में दलितों, संपन्नों तथा मुस्लिमों, अहीर, जाटव व बनियों में संघर्ष गुजरात में पटेल व कोलियों के बीच, राजस्थान में जाट-राजपूत, मीणा-गूजर संघर्ष, केरल में ईसाई, मुसलमान व अजावह लोगों के बीच, आंध्र में रेड्डी व कामों के बीच जातिगत सत्ता संघर्ष परंपरागत चले आ रहे है । तमिलनाडु में ब्राह्मणवाद तथा गैरब्राह्मणवाद संघर्ष के दौर में रहे । प्रत्येक जाति अपने-अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व ज्यादा से ज्यादा संसद एवं विधान सभाओं में चाहने लगी । निम्न जातियां संविधान द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ लंबे समय तक प्राप्त करते रहने के लिए लामबंद हुई । धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थानों के उपयोग को लेकर उच्च और निम्न जातियों में संघर्ष हुए । आज भी बिहार व उत्तरप्रदेश में उच्च व निम्न जातियों के मध्य सत्ता की लड़ाई व छुटपुट खूनी संघर्ष होते रहते है । मंडल रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर 250 छात्रों ने आत्मदाह किया। लोकतंत्र के आदर्श एकता और समता के प्रतिकूल है । और आपस में वैरभाव बढ़ाते है । ग्रामीण अंचलों में छुआछूत व ऊंच-नीच का भेद आज भी ज्यों का त्यों ही है जो कि भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की मूलभावना के पूर्णतया प्रतिकूल है।

6.4.4 अल्पसंख्यकों की समस्या

अल्पसंख्यकवाद आजादी के पश्चात् ज्यादा प्रबल हुआ है हालांकि इसकी शुरूआत तो अंग्रेजों ने भारत-पाक अलग कर कर दी । लेकिन भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था में सांप्रदायिकता व जातिवाद राजनैतिक हित साधन पूरा करने तथा सत्ता-साधनों की अधिकतम प्राप्ति का साधन बन गये । आज देश में (मुस्लिम-ईसाई) अल्पसंख्यकवाद प्रबल होता जा रहा है । वोट राजनीति में जातिवादिता के प्रभाव ने अल्प संख्यकों में एक गैर बराबरी की भावना पैदा कर दी है । वो सोचने लगे है कि सत्ता व अधिकार व साधनों में भागीदारी नहीं होने से उनके तरक्की के रास्ते बंद है तथा उनकी जायज मांगों को समय-समय पर दबा दिया जाता है तथा प्रतिनिधि संस्थाओं में उनका प्रतिनिधि नहीं होने के कारण अपनी बात रखने का उनके पास मंत्र नहीं है अत : वे अपने आप को शोषित व असहाय महसूस करते है । विभिन्न राज्यों में भाषागत अल्पसंख्यक एवं अल्पसंख्यक संप्रदायों के लोग रहते है तथा दिल्ली, बंबई, मद्रास, कलकत्ता तथा गुवाहाटी में बाहरी राज्यों के लोग शासन, राजनीति एवं व्यवसाय में काफी प्रभावशाली है । अत : समय-समय पर महाराष्ट्र में गुजरातियों का विरोध, कलकत्ता-गुवाहाटी में मारवाड़ी विरोधी आदोलन उग्र हुए । जिसके फलस्वरूप महाराष्ट्र में शिवसेना, असम में लच्छित सेना से उग्रवादी संगठनों का निर्माण कर बाहरी लोगों के खिलाफ उत्तेजनात्मक कार्यवाहियां की गई जिसके कारण भारत की एकात्मकता को गहरा धक्का लगा । अल्प संख्यकवाद के कारण राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकता का तानाबाना छिन्न-भिन्न नजर आने लगा ।

6.4.5 अपरिपक्व संचार माध्यम

पराधीनता से स्वतंत्रता तथा विच्छिन्नता से एकात्मकता के इस सफर में संचार की सहभागिता सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है । स्वतंत्रता पूर्ण भारत में रेडियो, प्रेस व आवागमन के साधनों ने भारत जागृति पैदा कर स्वाधीन भारत दिया वहीं स्वाधीनता में विलंब का कारण भी ब्रिटिश हुकुमत के सहायक के रूप में बने । आज आजाद व विकासशील भारत में सांप्रदायिकता एवं अलगाववाद की चिंगारिया भी फूट रही है । आजादी के बाद हमारे शिक्षा साहित्य में संतुलित ज्ञान के विषय नहीं रखने की वजह से अलगाववाद बढ़ रहा है । उदाहरण के तौर पर सिख व जैन हमेशा से हिन्दू धर्मावलंबी व हिन्दू विचारधारा के ही अंग रहे है और रहेंगे लेकिन कुछ वर्षो से हमारे प्रेस व इतिहासकारों एवं राजनीतिक विचारकों ने सिख व जैन धर्म को हिन्दू धर्म व समाज से अलग देखने का खतरनाक नजरिया आरंभ कर रखा है जो राष्ट्रीय एकता में घातक बाधक सिद्ध हो रहा है । इसी तरह से हमारी प्रेस व शिक्षा व संचार मध्यमों द्वारा विभेदकारी एवं अलगाव वादी विचारधारा, सूचनाएं एवं विचारों एवं घटनाओं को अच्छा स्थल दिया जाकर आम जन के समक्ष प्रेषित किया जा रहा है । इससे आम जन गुमराह होकर विघटनकारी गतिविधियों में शामिल हो रहा है । चुनावी समय में संचारमाध्यम जातियता क्षेत्रीयता, धर्म, सांप्रदायिकता के मुद्दे व विचार जोर-शोर से उछालते रहते है । राष्ट्रीय मुद्दे, राष्ट्रीय नीति के चुनावी सभा में गौण प्राय : रहते है । आज हर चुनाव में जीत हार के लिए प्रत्याशी का आंकलन संचार माध्यमों द्वारा जातिगत या सांप्रदायिक समीकरणों द्वारा किया जाता है । इससे जातिवाद, सांप्रदायिकता व अलगाव की आग ज्यादा भड़कती है ।

संचार माध्यम जातिय सम्मेलन, सभाओं, चुनावों एवं जातिय समाजों एवं धर्मों की गतिविधियों का संकीर्ण प्रचार-प्रसार कर अलगाववादी विचारधारा को जड़े देश में और गहरी कर रहे है ।

6.4.6 भ्रष्टाचार की समस्या

भ्रष्टाचार आज शासन एवं समाज में विकराल रूप से घर कर गया है । जो राष्ट्रीय एकता के लिए बड़ा खतरा साबित हो रहा है । रिश्वतखोरी, भाई भतीजावाद जन-विश्वास को खोखला कर लोकतंत्र की जड़ों में दीमक का काम कर रहे है । रिश्वत व पैसों के चक्कर में कई गोपनीय सूचनाऐं विदेशों को देती पकड़ी गयी है । योग्यता एवं क्षमता के मापदंड तिरोहित हो गये है । हर्षद मेहता कांड ने पूरी बैकिंग व्यवस्था को मृतप्राय कर दिया था । यूरिया घोटाला, बोफोर्स घोटाला, जैन हवाला कांड, चंद्रास्वामी कांड पनडुब्बी कांड, चीनी घोटाला, चारा घोटाला, झारखंड मुक्ति मोर्चा कांड, विधायकों सांसदों की खरीद-फरोख्त ऐसे मामले है जिन्होंने भारतीय व्यवस्था, को मृतप्राय : कर दिया था । सत्ता एवं संसाधनों (सरकारी) का बंटवारा रिश्वत, भाई भतीजवाद एवं जातिवाद पर होकर रह गया है जिससे आमजन में अलगाव की भावना पनपती है ।

6.4.7 सांप्रदायिकता की समस्या

सांप्रदायिकता भारत के संविधान प्रदत्त धर्म निरपेक्षता के स्वरूप को समय-समय पर आज भी विकृत करने का प्रयास करती है । राष्ट्रीय एकीकरण की भयावह समस्या आज भी सांप्रदायिकता है । सांप्रदायिकता की समस्या पर चर्चा करने से पहले हमारे लिए यह लाजमी हो जाता है कि साम्प्रदायिकता के आशय को समझा जाए तत्पश्चात साम्प्रदायिकता की उस पृष्ठभूमि (ऐतिहासिक) का अवलोकन किया जाए जिसने भारत की सहिष्णुता की सरजमी को उजाड़ने की कोशिश की है । रामधारी सिंह दिनकर का मानना है "सांप्रदायिकता एक रोग है और वह भी संक्रामक ।"

6.4.8 सांप्रदायिकता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सप्रदायवाद अथवा सांप्रदायिकता किसी व्यक्ति समूह की ऐसी मनोवृत्ति है जिसमें सांप्रदायिकता, धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरपन एक व्यक्ति को किसी, पंथ या संप्रदाय विशेष से पूर्णत: संबद्ध होने तथा उस धर्म पंथ या संप्रदाय से.जुड़े हुए समूह के हेतु संवर्द्धन हेतु सक्रिय रहने के लिए उत्प्रेरित करती है । व्यक्तियों का ऐसा समूह अपनी पहचान व हित साम्यों के संदर्भ में राष्ट्रीय व व्यापक हितों को गौण समझता है । एक जटिल और बहुमुखी राजनीतिक व सामाजिक समस्या के रूप में सांप्रदायिकता आज की सर्वाधिक जटिल समस्या है । बिन्सेण्ट स्मिथ के अनुसार, "एक सांप्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति समूह वह है जो प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषाई समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता है जिसके हित अन्य समूहों से पृथक होते है और उनके विरोधी भी हो सकते है । ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को संप्रदायवाद या सांप्रदायिकता कहा जायेगा ।" धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाए और उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर भी प्राथमिकता दी जाए तथा उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाए या उसको उकसाया जाए सांप्रदायिकता कहलाती है । प्रभा दीक्षित के अनुसार "बहु संस्कृतिय समाज में सामाजिक तनाव तथा टकराहट वास्तव में विभिन्न समूहों के बीच चल रहे सत्ता द्वंद्व के लक्षण है । इस पारस्परिक द्वंद्व को सैद्धांतिक स्तर पर धर्म की शिक्षा पर खड़ा करना एक राजनैतिक विचारधारा के रूप में सम्प्रदायवाद का मूल सार है।

भारत जैसे देश में आज सांप्रदायिक समूहों का उद्देश्य सरकार पर दबाव डालकर अपने सदस्यों के लिए अधिक सत्ता प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता है । साथ ही धार्मिक - सांस्कृतिक भेदों के आधार पर राजनीतिक मांगे सांप्रदायिकतावादी प्रवृत्तियों को ज्यादा हवा देते है ।

6.4.9 सांप्रदायिकता का अर्थ

भारत में सांप्रदायिकता व धर्म के आधार पर विभाजन के विचार की जनक ब्रिटिश हुकुमत थी । जिसने "फूट डालो और राज करो" की नीति को अपना कर हिन्दू-मुस्लिम एकता में दरारे पैदा कर सांप्रदायिक सद्भाव को समाप्त करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया । भारतीय राजनीति में ब्रिटिश सरकार, कांग्रेस तथा लीग एक त्रिभुज बन गया जिसने सांप्रदायिकता को

आधार बनाकर नयी समस्याऐं पैदा की जिससे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई एवं पारसियों को तो अलग-अलग कर ही दिया लेकिन जैन, सिख व बौद्धों को गैर-हिन्दू बताकर उनमें भी अलगाववाद व सांप्रदायिकता का जहर भरने की कोशिश की । मेहता व पटवर्द्धन के शब्दों में, "अंग्रेजी शासकों ने अपने आप को हिन्दू और मुसलमानों के मध्य खड़ा करके ऐसे सांप्रदायिक त्रिभुज की रचना का निश्चय किया जिसका आधार बिन्दु वे स्वयं रहे ।" वैसे देखा जाए तो भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न वर्गो के बीच छद्म सांप्रदायिकता रही है । विभिन्न संप्रदायों के मध्य संघर्ष होता रहता था । के. बी. कृष्ण ने अपनी पुस्तक में, दी प्राबलम आफ माइनरिटिज (1939) में लिखा है कि कुछ दूसरे प्रकार के भी संघर्ष थे जिन्होंने मूलत : आर्थिक होने पर भी सांप्रदायिक रूप ले लिया । बंगाल । जैसे प्रांतों में ऐतिहासिक कारणों से किसान प्रधानत : मुसलमान थे और जमींदार मुख्यत: हिन्दू थे । किसानों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण संप्रदायवादियों के लिए मुसलमान बढ़ाईदारों और हिन्दू जमीदारों के बीच वास्तविक आर्थिक संघर्षो को सांप्रदायिक संघर्ष के रूप में प्रस्तुत व परिगणित करना आसान था। - साथ ही जमींदार-बढ़ाईदार का या महाजन-कर्जदार का संघर्ष गलत तौर पर सांप्रदायिक संघर्ष के रूप में वर्णित हुआ ।

"वहाबी आदोलन" मुस्लिम असंतोष की प्रथम अभिव्यक्ति थी । 1893 में "मुहम्मडन एंग्लो ओरियण्टल डिफेंस ऐसोसिएशन" की स्थापना हुई 1905 में अंग्रेजों ने मुसलमानों को खुश करने के लिए बंगाल का विभाजन किया । भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक एवं अन्य अधिकारों की रक्षा के नाम पर 1906 में ढाका में "आल इंडिया मुस्लिम लीग" की स्थापना हुई जिसके आबादी के हिसाब से मुसलमानों के लिए प्रतिनिधित्व की मांग थी । 1909 में मार्ले मिण्टों सुधारों में सांप्रदायिक आधार पर पृथक चुनाव की व्यवस्था का समावेश किया गया । 1919 के एक्ट में सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति सिखों यूरोपियनों एवं आंग्ल भारतीय समुदायों के लिए भी अपना ली गई । 1935 का अधिनियम सांप्रदायिकता बढ़ाने में और सहायक साबित हुआ । 1940 में जिन्ना ने द्विराण सिद्धांत का प्रतिपादन किया और इसी आधार पर 1947 में भारत सांप्रदायिकता के आधार पर भारत व पाकिस्तान दो टुकड़ों में विभक्त हो गया । लेकिन आजाद भारत में भी सांप्रदायिकता के दावानल ने पीछा नही छोड़ा । 1967 में उत्तरप्रदेश में मेरठ 1989 में भागलपुर, बदायूं, कोटा, जयपुर, 1990 में कानपुर, लखनऊ, आगरा, 1993 में मुम्बई में तथा 1994 में बाबरी मस्जिद-मंदिर प्रकरण में संपूर्ण भारत में सांप्रदायिकता की ज्वाला भड़क उठी । जो कि हमारी ब्रिटिशकालीन ऐतिहासिक विरासत का परिणाम ही कही जा सकती है ।

6.5 सांप्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकीकरण: संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

भारत विभिन्न जातियों, धर्मो एवं मतमतांतर वासियों का देश है । जहां अनेकता में एकता सांप्रदायिकता एवं धार्मिक उन्माद या भेदभाव के बिना करने के वैचारिक सरकारी एवं संवैधानिक प्रयत्न एवं प्रावधान किये है जिसके फलस्वरूप आज भारत मजबूत, शांत तथा

विकासशील राज्य घोषित किया गया है । तथा इसमें लोकतांत्रिक समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है । इस संदर्भ में जो संवैधानिक प्रावधान है वो निम्नानुसार है -

1. संविधान का अनुच्छेद 14 जाति या धर्म के भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को कानून का समान संरक्षण प्रदान करते हुए कहता है। राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।
2. अनुच्छेद 15, 15 (29) व 29 (2) धर्म, मूलवंश या जाति के आधार पर भेदभाव के निषेध का प्रावधान करता है।
3. 1955 में भारतीय संसद द्वारा एवं मूल संविधान द्वारा पारित "भारतीय नागरिकता अधिनियम" में जाति या धर्म के आधार पर नागरिकता की शर्तों, में कोई भेदभाव नही किया जायेगा।,
4. संविधान का अनुच्छेद 25 व्यक्ति को अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता ।। अनुच्छेद 26 धार्मिक कार्यो के प्रबंध की स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 27 धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के भुगतान के बारे में स्वतंत्रता तथा अनुच्छेद 28 शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने अथवा नहीं करने की स्वतंत्रता देता है ।
5. संविधान का अनुच्छेद 29(i) अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए व्यवस्था का प्रावधान करता है ।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर होने वाले धर्म सम्मेलनों, हजयात्रा, ख्वाजा सा अजमेर में सुविधा व वित्तीय सहायता, महाकुंभ में स्थान व मानसरोवर व अमर नाथ यात्रा में सरकारी सहयोग कर सांप्रदायिक सद्भावना के प्रयत्न सरकारी एवं सामाजिक संस्थाएं करती रहती है ।

6.6 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के अभ्युदय का अतीत

भारत में राष्ट्रीय एकता एवं एकीकरण के विचार को अतीत की पृष्ठभूमि में देखना होगा । प्राचीन व मध्यकाल, ब्रिटिश काल व स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् का काल, इन काल खंडों में राष्ट्रीय एकीकरण के विचार के अस्तित्व व उदय की अनुगूंज हमें कहां सुनाई देती है वह स्थल खोजना अपरिहार्य है ।

भारतीय प्राचीन एवं मध्यकाल में हमें सारे देश में आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकता के प्रभाव प्रबलता के साथ मिलते है जबकि उस समय राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता नहीं थी । जाति पंचायत, संयुक्त परिवार प्रणाली, वर्णाश्रम व्यवस्था ने व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधे रखा । चंद्रगुप्तमौर्य एवं अशोक के समय में भारत एक था । तक्षशिला तथा नालंदा विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे जिनमें संपूर्ण भारत से लोग अध्ययनादि हेतु आते थे । मेगस्थनीज ने अपनी यात्रा वृतांत में भारत की एकता का वर्णन किया है । रामायण एवं महाभारत काल में भारत अफगानिस्तान तथा नेपाल तक को एक सूत्र में देखा जा सकता है । शंकराचार्य द्वारा चार पीठों की स्थापना कर संपूर्ण भारत की एकात्मा को संजीव किया गया । इस प्रकार भारत प्राचीन काल में व मध्यकाल में अकबर के समय में एकता के सूत्र में बांधा गया था ।

जहां तक ब्रिटिश शासन काल का प्रश्न है जहां पहले भारत में संस्कृति एवं सामाजिक रूप से एकात्म था वही इस काल में राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता कायम हुई । यदि हम ब्रिटिशराज को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखें तो आज का विशाल राजनीतिक प्रशासनिक ईकाई के रूप में भारत हमें ब्रिटिश राज की ही देन है । भारत की छिन्न-भिन्न रियासतों को एक कर एकछत्र शासन करने की ब्रिटिश अभिलाषा तथा व्यापारिक हितों की चरम परिणति आज के विशाल भारत के रूप में हुई । राष्ट्रीयता, राष्ट्र व राष्ट्रवादी भावना, को जन्म दिया । अत : सांस्कृतिक एकता हमारे अतीत की विरासत थी जबकि राजनैतिक तथा प्रशासनिक एकता अंग्रेजी शासन के विरूद्ध राष्ट्रीय जनजागरण की परिणति थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाकिस्तान को छोड़ शेष भाग एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहलाने लगा । सरदार बल्लभ भाई पटेल के सदप्रयत्नों से आज हम यह एकीकृत स्वतंत्र भारत देख रहे है । संपूर्ण देशी रियासतों का विलय किया गया तथा इस समय एक भाषा, एक संस्कृति, एक देश तथा एक शासन की बात कही गयी । संपूर्ण देश के लिए एक संविधान, एक सर्वोच्च न्यायालय तथा अखिल भारतीय शासन की स्थापना की गई । एक झंडा, एक चिन्ह, एक गाना, एक राष्ट्रीय गीत निर्धारित किया गया । लेकिन विरासत में मिली कुछ समस्याएं एवं उससे जनित समस्याएं - राज्यों के सीमा विवाद, भाषा, नदी जल बंटवारा राष्ट्रीय एकता को समय-समय पर चुनौती देते रहते है । पंजाब, कश्मीर, व असम में उग्रवाद एवं अलगाववाद तथा राजनेताओं का अनैतिक आचरण व भूमिका राष्ट्रीय एकीकरण के लिए समस्या बने रहते है । सांप्रदायिक एवं धार्मिक दंगे-फसाद आय भी एकता को खंडित करने का वातावरण बना देते है । 1955 में बेंगलौर में जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्‌बोधन में कहा था कि “हम भारतीय गणतंत्र के नागरिक भूमि पर पांवों को दृढ़ता से रोपे हुए आकाश की ओर निहारते हुए, कमर सीधी करके खड़े हों और समन्वय तथा एकीकरण स्थापित करें ।" कुछ सीमा तक राजनीतिक एकीकरण तो हो गया है लेकिन मैं जिस एकीकरण को चाहता हूं वह बहुत गहन है वह भारतीय लोगों का भावात्मक एकीकरण जिससे कि हम एकता से बंधे और एक इकाई का निर्माण करें साथ ही हम सभी आश्चर्यजनक विभिन्नताओं को बनायें रखें ।

समय-समय पर सम्मेलनों एवं विचार गोष्ठियों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता हेतु सुझाव दिये जाते रहे है । लेकिन राष्ट्रीय एकता अभी भी समस्याओं से घिरी दिखाई दे रही है ।

6.7 राष्ट्रीय एकीकरण हेतु प्रयासों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

अंग्रेजी शासनकाल से सांप्रदायिकता राष्ट्रीय चुनौती के रूप में हमें विरासत में मिली । फलत: भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद एवं सांप्रदायिकता से जुड़े दंगे और संघर्ष आज जब हम 21 वीं सदी में प्रवेश को उद्‌यत है राष्ट्रीय एकता में बाध कारक के रूप में ज्वलंत एवं जीवंत है । स्वतंत्र भारत की जनता एवं सरकारों ने आरंभ से ही इस समस्या के निराकरण तथा राष्ट्रीय एकता के प्रयास आरंभ कर दिये थे । डा. एल. एम. सिंघवी के अनुसार "राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक दकियानूसी विचारधारा नहीं है । हमें इसे लोकतंत्र की व्यापक भावभूमि पर सामाजिक और आर्थिक न्याय का रूप देना होगा और यही वह स्थायी नींव है जिस पर राष्ट्रीय एकता का भव्यभवन खड़ा किया जा सकता है ।”

राष्ट्रीय एकता हेतु स्वतंत्रता पश्चात् सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयत्न निम्नानुसार रहे।

6.7.1 भावनात्मक एकीकरण समिति

1961 में भारत सरकार ने भावनात्मक एकीकरण समिति की स्थापना की जिसके उद्‌घाटन सत्र में नेहरू ने कहा था कि, भारत में जब कि नये का उदय हो रहा है, हम सभी के लिए यह उपयुक्त होगा कि हम सही मार्ग पर रहें, धीरे-धीरे एकता को ओर बढ़ें, स्वतंत्रता की रक्षा करें और राष्ट्रीय समृद्धि के लिए कार्य करें । इस समिति द्‌वारा लिए गए निर्णय निम्नानुसार है -

(i) यदि कोई व्यक्ति या समूह भारतीय संघ से पृथक होने की वकालत करता है तो ऐसा करना अपराध माना जायेगा।

(ii) अंभियांत्रिक, चिकित्सा एवं वन विभाग की अखिल भारतीय सेवाएँ बनायी जावे तथा इन सेवाओं में अफसरों का क्रमावर्तन हो।

(iii) अल्प संख्यकों की भाषा को संरक्षण प्रदान किया जाए।

(iv) प्रत्येक प्रांत के उच्च न्यायालय में एक न्यायाधीश उस प्रांत के बाहर का हो।

6.7.2 वैधानिक उपाय

सन् 1961 में कानून द्‌वारा धर्म, भाषा, अथवा जाति के आधार पर समाज में सामाजिक वैमनस्य, घृणा व शत्रुता उत्पन्न करने वाली गतिविधियां या राजनीतिक प्रचार को प्रतिबंधित किया गया। इसी प्रकार संविधान में 16वें संशोधन द्‌वारा देश में पृथकतावादी तत्वों पर नियंत्रण रखने के लिए शासन को पर्याप्त शक्तियां एवं अधिकार दिये गये।

6.7.3 त्रिदिवसीय राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन (28 सितंबर 1961)

राष्ट्रीय एकीकरण समिति तथा सन् 1958 में विश्वविद्‌यालय अनुदान आयोग एवं सन् 1961 में प्रांतों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में लिए गये निर्णयों एवं सुझावों पर 28 सितंबर 1961 को त्रिदिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन दिल्ली में विचार-विमर्श कर इस कान्फ्रेंस ने कुछ सुझाव दिये जो निम्नांकित है -

1. लोगों में समझ, पारस्परिक सद्भाव और राष्ट्रीय दृढ़ता पैदा करने के लिए सभी राज्यों के विश्वविद्‌यालयों एवं महाविद्‌यालयों में दूसरे प्रांतों के अध्ययन करने वाले छात्रों को भी छात्रवृत्तियां, प्रवेश और अन्य सुविधाऐं दी जाएं ।
2. भारत में सभी स्कूलों में शिक्षण कार्य राष्ट्रगान के साथ आरंभ किया जाए ।
3. राष्ट्रीय एकीकरण वृद्धि हेतु राजनीतिक दलों, प्रेस, छात्रों एवं सामान्य नागरिकों के लिए व्यवहार के नियम तय किये जायें ।
4. इस कांफ्रेंस में राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थापना करने का सुझाव भी दिया गया जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होंगे ।

5. यह परिषद छात्रों, राजनीतिक दलों, प्रेस एवं जनता के लिए व्यवहार के नियम बनायेगी तथा अल्प संख्यकों की शिकायतें दूर करने के सुझाव देगी । राजनीतिक व अन्य उद्देश्यों के लिए किये जाने वाले उपवास के औचित्य पर भी विचार करेगी ।
6. राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करने में क्षेत्रीय संतुलन लाया जाए तथा अल्प संख्यकों एवं ग्रामीण क्षेत्रो के विकास पर अधिक जोर दिया जाए ।
7. सभी प्रकार के झगड़ों का निपटारा शांतिपूर्ण ढंग से हो।

6.7.4 राष्ट्रीय एकता परिषद

22 जून 1968 को राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक श्रीनगर में संपन्न हुई जिसमें निम्नलिखित निर्णय लिये गये -

1. राजनीतिक दलों, समाचार पत्रों व नेताओं द्वारा सांप्रदायिक विद्वेष, हिंसा तथा क्षेत्रवाद का सहारा न लिया जाए।
2. सहिष्णुता और आपसी मेल-जोल के सिद्धांत का जोरदार प्रचार करें।
3. समाज की रचनात्मक शक्तियों को राष्ट्रीय एकता व अखंडता में लगाएं और इन्हें नेतृत्व प्रदान करें।
4. लोगों में भ्रातृत्व की भावना पैदा करने, समान नागरिकता पर जोर देने तथा राष्ट्रीय जीवन स्तर को उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

राष्ट्रीय एकता परिषद ने सिफारिश भी की थी कि राजनीतिक दृष्टि से धर्म और जातियता पर आधारित राजनीतिक दलों को समाप्त कर दिया जाए।

6.7.5 इंसानी बिरादरी

अगस्त 1970 में एक गैर सरकारी संगठन इंसानी बिरादरी का निर्माण किया गया। जयप्रकाश नारायण को इस संगठन का अध्यक्ष बनाया गया। संगठन का बुनियादी आधार सहिष्णुता, भाईचारा तथा आपसी मेल-जोल की भावना विकसित करना था। इसका ध्येय सांप्रदायिक और विघटनकारी तत्वों के विरूद्ध जेहाद छेड़ना था। किन्तु यह संगठन कोई प्रभावशाली कार्य नहीं कर सका।

6.7.6 अखिल भारतीय सांप्रदायिकता विरोधी समिति

दिसम्बर 1970 में श्रीमती सुभद्रा जोशी के नेतृत्व में "अखिल भारतीय सांप्रदायिकता विरोधी" समिति का गठन किया गया। इस समिति ने कई प्रस्ताव पारित कर सरकार को सुझाव प्रेषित किये। जनवरी 1974 के छठे सम्मेलन में समिति ने यह सुझाव दिया कि सांप्रदायिक संगठनों पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया जाए। समिति के विचार में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, शिव सेना, आनंदमार्ग तथा जमायते इस्लामी संगठनों पर पाबंदी अनिवार्य है।

6.7.7 राष्ट्रीय एकता पर गठित कार्यदल

1976 में राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर विचार करने तथा सुझाव देने हेतु ब्रह्मानंद इस की अध्यक्षता में एक कार्यदल को जिन बिंदुओं पर विचार करना था, वे इस प्रकार है -

1. सांप्रदायिक तथा अन्य स्वरूप की हिंसा को समाप्त करने के उपाय।
2. अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण, उनकी रोजगार से संबंधित समस्याऐं व उनका निराकरण।
3. हरिजनों व आदिवासियों के विरूद्ध भेदभाव एवं उनके साथ अमानवीय व्यवहार की समस्या तथा उसका निराकरण ।
4. क्षेत्रीय असंतुलन व विकास संबंधी समस्याऐं तथा उनका निदान।

6.7.8 हम एक है प्रदर्शनी का आयोजन

2 अक्टूबर 1979 को गांधी जयंती के अवसर पर विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय द्वारा हम एक है प्रदर्शनी का आयोजन किया गया । इस प्रदर्शनी में यह दिखाया गया कि सांप्रदायिक दंगों से अच्छे नागरिकों, निर्दोष स्त्री-पुरुषों और बेसहारा बच्चों को कितने कष्ट उठाने पड़ते है ।

6.7.9 सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन

28 जनवरी 1991 नयी दिल्ली में आयोजित इस सम्मेलन में निर्धनता तथा बेरोजगारी को सांप्रदायिक दंगों का कारण बताया गया । सम्मेलन में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए वातावरण तैयार करने हेतु सभी आवश्यक कदम उठाने पर बल दिया गया। 1991 में राष्ट्रीय एकता परिषद की दो बैठकें हुई जिसमें इस बात पर सहमति हुई कि उत्तरप्रदेश सरकार मंदिर मस्जिद विवाद का सर्वमान्य हल ढूंढने का प्रयास करेगी, अयोध्या में विवादग्रस्त मस्जिद के ढाँचे की सुरक्षा की जायेगी तथा अधिग्रहीत भूमि पर अदालत का निर्देश मानेगी ।

उपरोक्त सरकारी एवं गैर सरकारी राष्ट्रीय एकता हेतु प्रयासों का मूल्यांकन करें तो हम पाते है कि आजादी के 50 वर्षों के पश्चात् भी जितनी सिफारिशें एवं सुझाव समितियों, सम्मेलनों एवं परिषदों द्वारा दिये गये ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ वो कार्यान्वित नहीं हो सके । आजादी के पश्चात राजनीतिज्ञों के शुद्ध राजनीतिक लाभों के कारण राष्ट्रीय एकता विरोधी एवं सांप्रदायिक हथकंडे खुले आम अपनाये गये । दलों एवं सरकारों का चेहरा व चरित्र राष्ट्रीय धर्म निरपेक्ष न होकर सांप्रदायिकता युक्त ही सदैव रहा फलत: आज कई धार्मिक एवं सामाजिक कट्टरपंथियों की गतिविधियां राजनीति में अपना स्थान प्रभावशाली बना रही है । राष्ट्रीय एकता परिषद तथा सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन भी रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद तथा कश्मीर एवं पंजाब की समस्याओं का समाधान नहीं निकाल सकें । सुझाव., विचार विमर्श एवं प्रयास तभी फलीभूत होंगे जब उन्हें भावनात्मक एवं मानसिक तौर पर राष्ट्रीय एकता के हित में आत्मसात करने का जजबा पैदा होगा ।

समय पर राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठकें नहीं होती है यदि होती है तो सर्वमान्य हल नहीं निकलता है यदि हल निकलता है तो कार्यान्वयन हेतु प्रतीक्षारत रहता है और यह सब हमारी राजनीतिक इच्छा शक्ति के चरित्र पर निर्भर करता है । कहीं व्यक्तिगत हित साम्य एवं महत्वाकांक्षाएं तो कहीं राजनीतिक क्षुद्रस्वार्थ राष्ट्रीय एकता की राह में रुकावट बनते रहें है ।

सांप्रदायिक व जातिय संगठनों के राजनीति में प्रवेश पर व निर्माण पर प्रतिबंध लगाने की बात कही थी लेकिन ये संगठन आज ज्यादा, प्रभावशाली एवं सत्ता में भागीदार तक हो गये है । हरिजनों एवं गरीबों, आदिवासियों पर आज भी अत्याचार हो रहे है । केवल कुछ उच्च पदों पर बैठाकर इन गरीबों का भला नहीं होने वाला जब तक स्थानीय स्तर पर इन वर्गों के खिलाफ भेदभाव व शोषण व अत्याचार को नहीं रोके । बिहार, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, कश्मीर, में आज भी आये दिन हत्याएं एवं अत्याचार हो रहें है । राजस्थान में अभी भी आदिवासियों व गरीबों ले बंधुआ मजदूरों के रूप में पीढ़ियों तक शोषित किया जाता है । आज भी देश के बहु संख्यक वर्ग को सत्ता एवं संवैधानिक संस्थाओं में हिस्सा नहीं मिला है वो अपने आपको उपेक्षित व असहाय महसूस कर रहा है । साथ ही आजादी के 50 वर्षों में एकता हेतु जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक व संवैधानिक प्रयत्न किये गये उनमें अशिक्षा व पिछड़ेपन में परंपराओं से जुड़े रहने के कारण संप्रदायों का भी सक्रिय सहयोग नहीं मिला । विकास एवं सुधार में उनकी सजग सक्रियता गौण रही ।

6.8 भारत में राष्ट्रीय एकीकरण हेतु सुझाव:

भारत का इतिहास एक समन्वित संस्कृति की वादी का प्रतीक रहा है । यह राम और कृष्ण, बौद्ध व महावीर की भावनाओं के पल्लवन की भूमि है तो दूसरी तरफ सूरदास व रसखान, झांसी की रानी एवं चाँद बीबी, सम्राट अशोक एवं शहंशाह अकबर तो सुभाषचन्द्र बोस एवं अशफाक उल्लाखाँ समन्वित संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकता के गौरव प्रतीक है । मदर टेरेसा, भगतसिंह, गालिब, अबुल कलाम आदि ने भारत के गौरव को बढ़ाने में कंधे से कंधा मिलाकर योगदान दिया है ।

सहिष्णुता तथा सदासयता की भूमि, गांधी की कर्मस्थली भारतीय संस्कृति विभिन्नताओं में एकता का एक अनूठा उदाहरण है । अब समय आ गया है हमें अपनी सोच में परिवर्तन करना चाहिए तथा सकारात्मक एवं सहिष्णु मानसिकता के साथ विवादास्पद मुद्दों के विवाद को समाप्त या कम करने का प्रयास करना चाहिए । जातियता धर्म, क्षेत्रीयता व भाषावाद भारत की गंगा जमनी संस्कृति का प्रतीक है । यह इस राष्ट्र के हर व्यक्ति की पहचान बन चुकी है अत : ज्यादा अच्छा हो हम सकारात्मक, सहयोगात्मक दृष्टिकोण व विचारधारा के राष्ट्रीयता घटित विचारों के साथ इन मुद्दों को नकारात्मक हवा न दें । समाजवाद धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, जनता के बीच संबंधों की सौहार्दता कायम करके ही की जा सकती है न कि उनकी संस्कृति एवं ऐतिहासिक पहचान को मिटाकर । जब तक ये विभिन्नताएं क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु राष्ट्रीय हितों को चोट नहीं पहुंचाएं इन्हें नहीं छेड़ना चाहिए । हर भारतीय अपने आप में भारत है उसकी पहचान, स्वाभिमान भारत का सम्मान व स्वाभिमान है तथा राष्ट्र की पहचान है उसकी अस्मिता पर आक्रमण भारतीयता पर आक्रमण है । अत उसकी जीवनशैली पर तब तक छेड़छाड़

नहीं की जानी चाहिए तब तक की वह राष्ट्रीयता समाज के लिए समस्या न बन जाए । अब समय बदल रहा है, स्वत : मूल्य व परंपराएं बदल रही है, विचार धारा में परिवर्तन हो रहा है, आर्थिक-सामाजिक ढांचें में व्यापक व क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे है तो हम अपेक्षा कर सकते है कि कालचक्र के रास्ते में हमें हस्तक्षेप नदीं करना चाहिए । वैश्वीकरण की बढ़ती विचार एवं आचरण शैली विश्वमानव को एकात्मता की ओर तेजी से ले जा रही है जिससे स्वत: छोटे तनाव बिंदु पीछे छूट रहे है या समाप्त हो रहे है भारत में राष्ट्रीय एकता एवं सांप्रदायिक सद्भावना हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है -

6.8.1 एक संपर्क राष्ट्रभाषा के साथ सर्वभाषा सम्मान, विकास व संरक्षण हो

भाषा राष्ट्रीय एकात्मकता का सशक्त माध्यम है । भारत जैसे विभिन्नता वाले व बहुभाषी राष्ट्र में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में हम सभी को उत्तर-दक्षिण के विखंडनवादी विचार को त्यागकर स्वीकृत तहे दिल से कर लेना चाहिए लेकिन साथ ही सर्वभाषा समान सम्मान, विकास व संरक्षण ईमानदारी से प्रदान करना होगा । राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकता के लिए हम सब भारतवासियों को दुनिया के अन्य देशों से सबक लेना चाहिए तथा छोटे क्षुद्रस्वार्थो एवं अहंकारों को त्याग एक राष्ट्रभाषा राष्ट्रहित में स्वीकार कर लेनी चाहिए । भाषायी विवादों का राजनीतिकरण समाप्त कर हिन्दी को शीघ्र राष्ट्रीय भाषा का संवैधानिक दर्जा दे दिया जाना चाहिए या सभी भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का सम्मानजनक दर्जा व संरक्षण प्रदान कर हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार कर लेना आज भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए शीघ्रावश्यकता है ।

6.8.2 संविधान की समग्र समीक्षा एवं सर्वस्वीकृत परिवर्तन हो

50 वर्ष पूर्व हमारे संविधान निर्माताओं ने परिस्थिति, आवश्यकता एवं क्षमतानुकूल सर्वश्रेष्ठ संविधान का निर्माण भारत जन के लिए किया था । जो हमारी संस्कृति के समान ही सहिष्णु व लचीलापन लिए हुए था। 84 संवैधानिक संशोधनों को मूल आत्मा से छेड़छाड़ किये बिना 50 वर्षों में हमारे संविधान ने देखा है । अत: अब वक्त का विवेक कहता है कि परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं परिवर्तनों की आवश्यकताओं की ध्यान में रखते हुए संविधान में अनवरत संशोधनों के स्थान पर संविधान की समय समीक्षा व सर्वस्वीकृत परिवर्तन न्यायोचित है । जो संवैधानिक प्रावधान नयी परिभाषा, नये अर्थो की मांग राष्ट्र हित में कर रहे है उन्हें संविधान की मूलात्मा में छेड़छाड़ किये बिना परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए तथा यह परिवर्तन व समीक्षा आगामी 50 वर्षो की संवैधानिक स्थिरता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए सब के विश्वास के साथ ताकि बार-बार संवैधानिक परिवर्तनों की पीड़ा हमारा संविधान ना भोगे ।

आज कई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, क्षेत्रीय मुद्दे संविधान को चुनौती दे राष्ट्रीय एकता एवं अस्मिता के लिए खतरे का संकेत दे रहे है उनमें सशक्त परिवर्तन किया जाना चाहिए ।

6.8.3 शिक्षा राष्ट्रीय एकता का सशक्त माध्यम बने

आजादी के 50 वर्षों के पश्चात भी भारत में 60 प्रतिशत निरक्षरों की विशाल फौज अपनी नासमझ मानसिकता के साथ राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी है । जब तक भारत का जन-जन शिक्षित नहीं होगा, जागरूकता नहीं आयेगी तब तक राष्ट्रीय समस्याओं को समझने व समाधान करने की क्षमता लोगों में विकसित नहीं होगी तब तक राष्ट्रीय एकता के लिए समस्याएं मुंह बायें खड़ी रहेगी ।

दूसरा शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक एकता को उजागर करने की माकूल व समयबद्ध व्यवस्था हो । राष्ट्रीय साक्षरता से जुड़े कार्यक्रमों एवं अभियानों में गत्यात्मकता तथा व्यापकता लानी होगी । शैक्षणिक गतिविधियों एवं पाठ्यक्रमों में ऐतिहासिक भूलों को हटाकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने व पाठ्यक्रम बिन्दु तैयार करने होंगे । ताकि हर विद्यार्थी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हो राष्ट्रीय एकीकरण में अपना योगदान अदा कर सकें ।

हमारी एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, एक राष्ट्रीय शिक्षण पाठ्यक्रम हों, एक ही शैक्षणिक कलैण्डर हो तब कही हम शिक्षा को राष्ट्रीय एकता के सशक्त माध्यम के रूप में प्रयोग कर सकते है । अब समय आ गया है हमें राष्ट्र में हर स्तर पर समग्र समानता अपनानी होगी तथा कुछ सख्त निर्णय राष्ट्रहित में लेने होंगे । एक राष्ट्रीय आयोग शिक्षाविदों का बनाया जाए जो शिक्षा में राष्ट्रीयता एवं एकात्मकता की वृद्धि हेतु आवश्यक सुझाव दे तथा सरकार उनका यथाशीघ्र हू बहू क्रियान्वयन करें ।

6.8.4 जन संचार माध्यमों की सकारात्मक सक्रियता

नये प्रसार भारती अधिनियम की चर्चा चल रही है जिसमें राजनैतिक हित साम्यों को ही प्राथमिकता दी जा रही है न कि राष्ट्रहित को । संचार माध्यम राष्ट्रीय एकता का सशक्त व्यावहारिक माध्यम है । दूरदर्शन, रेडियों, समाचारपत्र, आवागमन के साधन यदि संपूर्ण राष्ट्र में प्रभावी प्रयोग में लाये जाएं तो राष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलेगी, आज भी कई राज्य एवं राज्यों के बड़े भूभाग जन संचार माध्यमों की सुविधाओं से वंचित है जिनमें अलगाव व नेराश्य पनप रहा है अभी प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पूर्वोत्तर राज्यों के विकास हेतु एक पूर्वोत्तर परिषद का निर्माण कर नया पैकेज प्रदान किया तथा आवागमन के साधनों का विस्तार कर जनसंचार को प्रोत्साहन दिये जाने की प्रतिबद्धता को दोहराया है । आजादी के 50 वर्ष पश्चात भी हमारे संचार माध्यम राजनीतिक क्षुद्रस्वार्थों की पूर्ति का साधन वन रहे है तथा ऐसी विचारधारा एवं समाचारों का पोषण कर रहे है जो राष्ट्र घाती साबित हो सकते है हालांकि ऐसा (1.1) एक प्रतिशत ही हो रहा है । अत : जाति, धर्म एवं सांप्रदायिक व क्षत्रिय अलगाव को हवा देने लगते है तो राष्ट्रीय एकता खतरा महसूस करने लगती है । सरकार को चाहिए की समाचार माध्यमों के लिए एक कठोर राष्ट्रीय एकता आचरण संहिता का निर्माण कर उसे सख्ती से क्रियान्वित करें । हालांकि समाचार पत्रों की आचरण संहिता भी संवैधानिक प्रावधानों से सीमित है लेकिन अपने स्वार्थ लाभ हेतु उनकी तिलांजली दे दी जाती है ।

हमारे देश में संचार माध्यम विकसित एवं व्यापक तो हुए है लेकिन सकारात्मक सक्रिय नहीं व्यावसायिक सक्रिय हुए हैं । फिर भी आज विश्व सभ्यताएं मीडिया के माध्यम से काफी

करीब आ गयी हैं तथा आपसी सूझ-बूझ बढ़ाने में कामयाब हुई है । यदि आज ये माध्यम राष्ट्र विरोधी गतिविधियों एवं विचारो को स्थान नहीं वे कर राष्ट्रीय एकता संबंधी सकारात्मक वैचारिक सक्रियता को प्रचारित करें तो लोगो के दिलो दिमाग में राष्ट्रीयता की भावना गहराई से पैठ जमा सकेगी । समाचार माध्यम अपने प्रति आकर्षण व व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने हेतु भड़काऊ व स्तरहीन खबरें देना बंद कर दें ।

6.8.5 राजनीति का मूल्यहीन व व्यावसायिक चरित्र समाप्त किया जाए

आज का आजाद व प्रजातांत्रिक विकसित भारत राजनीतिज्ञों की देन है तो दूसरी तरफ दलाली, दलबदल, भ्रष्टाचार, संप्रदायवाद, धर्मांधता, आतंकवाद भी राजनीतिज्ञों की ही देन है । एक तरफ राष्ट्र व राष्ट्रीयता के लिए बलिदान, निष्ठा व समर्पण वाले राजनीतिज्ञ है तो दूसरी तरफ मूल्यहीन, अपराधिक वृत्ति वाले व ब्लेकमेल की राजनीति के पुरोधया राजनीतिज्ञ भारतीय राजनीति का प्रभावी अंग बने हुए है । अवसरवादिता व सत्ता व धनलोलुपता के 'क्षुद्रस्वार्थों ने राजनीति का जनसेवा चरित्र समाप्त कर व्यावसायिक चरित्र निर्मित कर दिया है । राष्ट्र के विभिन्न समूह अपने अपने स्वार्थो की पूर्ति हेतु अलग-अलग मुखौटे लगाकर राजनीति में आ रहे है जिससे विधायिकाओं का सम्मान गिर रहा है तथा राजनीति स्तरहीन व जनविश्वास खेती जा रही है ।

आज यदि हम राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के उद्‌गम स्रोत को देखें तो ज्ञात होगा कि 90 प्रतिशत समस्याएं राजनीति एवं राजनीतिज्ञों की देन हैं । दलबदल, मारकाट, हिंसक वारदातें, चुनावी प्रजातंत्र का जातिय एवं धार्मिक विकृत चेहरा राजनीतिज्ञों की ही देन है ।

इस विकसित एवं दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में न जाने क्यों आपराधिक वृत्ति वाले विधायिकाओं में पहुंच जाते है? क्यों मंत्री जैसा जिम्मेदार पद प्राप्त कर जाने है? क्यों अपना नया दल बनाकर ब्लेकमेल की राजनीति करने लगते है? सांप्रदायिक व राष्ट्रविरोधी विचार व व्यवहार वाले लोग संसद में होंगे, शीर्षस्थ व्यक्तियों का चरित्र ही हीन होगा तो देश में चरित्र व मूल्यहीन कार्य संस्कृति का विकास होगा जो भारत में हुआ है नतीजन समग्र राष्ट्र, खोखला होकर समाप्ति की ओर अग्रसर होगा ।

भाषावाद, क्षेत्रीयता, जातिवाद, धार्मिक कट्टरपन ही राजनीति के मूलाधार हो गये है जैसे सेवाभाव की राजनीति पनप ही नही सकती है और यदि पनपेगी तो राजनीति में प्रवेश का प्रमुख पदों पर आरूढ़ गलत राजनीतिज्ञ उसका गला घोट देंगे । वोट बैंक की राजनीति का ही परिणाम है मंदिर मस्जिद विवाद, पंजाब समस्या, कश्मीर समस्या, असम समस्या, आये दिन उजागर होने वाले घोटाले । देश की बागडोर ही. जब ऐसे लोगों के हाथ में सौंप दी जाती है तो सुधार कौन करेगा । आज भी विधायिकाओं में (1997) में 700 व्यक्ति आपराधिक चरित्र वाले है क्यों? संसद के दोनों सदनों में भी ऐसे लोग है क्यों? आखिर देश की न्यायपालिका व चुनाव आयोग अकेले क्या और कितना सुधार कर सकते है?

अब समय आ गया है कि भारत की गरीब अशिक्षित जनता को तथा लोकतंत्र को ऐसे राजनीतिज्ञों से संपूर्ण मुक्ति दिलायी जाए । शीघ्र ही आदर्श आचार संहिता का निर्माण कर ऐसे

राजनीतिज्ञों एवं गैर संवैधानिक राजनीतिक गतिविधियों पर सख्ती से नियंत्रण लगाया जाना चाहिए । यदि राष्ट्र को एक रखना है तथा लोकतंत्र को विश्वसनीय बनाना है तो शीघ्र ही राजनीति का समग्र शुद्दिकरण करना होगा । तथा राजनीति एवं राजनीतिज्ञों के सेवाभाव के चरित्र को पुन : स्थापित करना होगा वरन् आज के हालात में भारत की राष्ट्रीय एकता चारों ओर राष्ट्रों से घिरी है और घिरी रहेगी । धार्मिक फतवो व सांप्रदायिक प्रतीकों के सहारे करने वाली राजनीति बटा हो । । आजादी के 50 वर्षो में राजनीति में शुद्धिकरण, चुनाव प्रक्रिया में सुधार हेतु विभिन्न समितियों एवं आयोगों तथा चिंतकों ने अनेक सुझाव दिये लेकिन राजनीतिक इच्छाशक्ति अभाव, में लागू नहीं हो पाये । अब समय आ गया है इस बुराई का जवाब जागरूक जनता युवाशक्ति तथा शिक्षित व ईमानदार व्यक्तयों को देना होगा । अब सोच व सुझाव का समय नहीं कार्य क्रियान्वयन का समय आ गया है ।

6.8.6 समन्वय और समान सम्मान की संस्कृत का विकास हो

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें हर व्यक्ति स्वतंत्रता एवं आंतरिक विश्वासों को लेकर समान नागरिक के रूप में जी सकने के लिए स्वतंत्र है । वह है, हमारी गंगा-जमुना संस्कृति में विलीन होकर समन्वय एवं समान सम्मान की संस्कृति का अंग बन जाता है जो सदियों से यह स्वरूप धारण करती है । परंपरा व आधुनिक्ता बहु संख्य - अल्प संख्या, हिन्दू-मुस्लिम, गरीब-अमीर, शहरी-ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित नारी- पुरुष की जिम्मेदारी दीवारों को तोड़कर अब हमें नये-युग के नवाचार व व्यवहार की समामेलित संस्कृति को अपनाना होगा । जो किसी तरह अपने आप को हीनता का अपमान का पात्र व्यक्ति दनो नहीं बनने देगी । प्रतिनिधि संस्थाओं एवं सत्ता सस्थानों में अधिकतम को हिस्सेदारी देनी होगी ।

मैला ढोने व चमड़े का कार्य करने वाले के प्रति अपमान की संस्कृति विकसित नहीं होने देनी चाहिए, दलित दूल्हों को घोड़ी से उतारने की घिनोनी हरकतें सख्ती से बंद की जानी चाहिए । साथ ही समाज को भी जब समानता व सम्मान का व्यवहार पुरातन मूल्यों को त्याग नवीन मानदीप मूल्याधारित युग में करना चाहिए । अन्यथा राष्ट्रीय एकता दिवास्वपन मात्र रह जायेगी । इससे मानसिक एवं भावनात्मक तथा नैतिक एकता का व्यवहार जीवन मे अपनाने की संस्कृति का विकास किया जाना चाहिए । हर भारतवासी - हर भारतवासी के साथ हृदय से समान व्यवहार कानूनी व्यवहार के साथ-साथ करें ।

वक्त के विवेक से कार्य नवीन सामाजिक अभियांत्रिक निर्माण किया चाहिए । जिससे सामाजिक, । सांस्कृतिक एवं धार्मिक सौहार्द समामेलन बढ. सके।

6.8.7 राष्ट्रीय एकता प्रयासों का कार्य अंकेक्षण हो

राष्ट्रीय एकता परिषद सम्मेलन आयोग व समितियों ने जो भी प्रयास किये सुझाव दिये उनका निष्ठावान एवं पारदर्शी कार्यान्वयन होना चाहिए तथा उसकी जवावदेही भी तय की जानी चाहिए ताकि प्रयासों को केवल लिखित सुझावों तक सीमित नहीं रखा जा सके । इन आयोगों एवं संस्थाओं के राष्ट्रीय एकता हेतु प्रयासों, भूमिका एवं कार्यो का कार्य अंकेक्षण (Audit) होना चाहिए ताकि जिम्मेदारी तय की जा सके तथा कार्य प्रगति का सही मूल्यांकन हो सके । वरन्

ये संस्थाएं हमेशा की तरह निष्क्रिय व परिणामहीन बन कर रह जायेगा । राष्ट्रीय एकता परिषद वैचारिक व्यावहारिक एवं सांगठनिक तौर पर: विकेन्द्रित होना चाहिए । ताकि जन भागीदारी हर स्तर पर राष्ट्रीय एकता को प्राप्त हो सके ।

6.8.8 अन्य सुझाव

(क) आरक्षण का आधार विवेक सम्मत बनाया जाए इसका उपयोग राजनीतिक वोट बैंक के रूप में न किया जाए ।

(ख) नौकरशाही की भूमिका को सकारात्मक तथा प्रभावी बनाया जाए तथा राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाही के मध्य बढ़ते गैर वाजिब संबंधों को बढ़ने से रोका जाए । नौकरशाह निष्पक्ष हो।

(ग) सर्व स्वीकृत सांस्कृतिक राष्ट्र का निर्माण हो जिसमें सभी अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के साथ सम्मान के साथ जी सकें ।

(घ) अहिंसा व प्रेम के सर्वधर्म गांधी दर्शन को उजागर किया जाए ।

(ङ) स्वयंसेवी संस्थाओं को राष्ट्रीय एकता की प्रभावी भूमिका हेतु जोड़ा जाए ।

(च) क्षेत्रीयतावाद की सकारात्मकता को नहीं नकरात्मक प्रवृत्ति व विघटनकारी प्रवृत्ति पर रोक लगायी जाए ।

(छ) सरकार निष्ठावान, निष्पक्ष, पारदर्शी तथा जवाबदेह भूमिका निभायें ।

(ज) अंतरजातीय एवं अंतरभाषायी विवाहों को प्रोत्साहन मिले ।

6.9 निष्कर्ष

हिबर्ट रिजले ने सही लिखा है कि "भारत में धर्म, रीति-रिवाज और भाषा तथा सामाजिक और भौतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी जीवन की एक विशेष एकरूपता कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक देखी जा सकती है । वास्तव में भारत का अलग-चरित्र एवं व्यक्तित्व है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है । "रजनी कोठारी भारत की एकता के संदर्भ में लिखते है कि भारत जैसे विशाल देश में कहा इतने विविध प्रकार के लोग रहते है एकता की स्थापना इसी से हो सकती है कि सब तत्वों को राजनीतिक सत्ता तथा अधिकार में भाग दिया जाए और सबको साथ लेकर चला जाए । इसके लिए जरूरी है कि समाज के सब वर्गों का राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश हो । राजनीति की इस रचनात्मक भूमिका से ही एकीकरण की प्रवृत्तियों को बल मिलता है । राष्ट्रीय एकता के बारे में अपना व्यावहारिक सुझाव देते हुए प्रभा दीक्षित लिखती है कि "संभवतया भारतीय संस्कृति एवं राजनीति में सही मायनों में धर्म निरपेक्षता की आवश्यकता है।" विपिन चन्द्र भारत में तीन तरह की साम्प्रदायिकता बताते है : 1. राष्ट्रवादी सांप्रदायिकता 2. उदारवादी सांप्रदायिकता 3. उग्रवादी सांप्रदायिकता । उग्रवादी सांप्रदायिकता को देश की एकता के लिए खतरा मानते है । प्रथम दोनों सांप्रदायिकता के रूप भारतीय एकीकरण में बाधक नहीं है । असगरअली इंजीनियर भारत की एकता में भाषावाद एवं क्षेत्रीयता को बाधक तत्व मानते है जबकि एस. बी. कोलवे भारतीय प्रेस पर

विचारधारा विशेष एवं धनाड्यों के एकाधिकारी चरित्र के कारण पक्षपात का आरोप लगाते हुए राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक मानते है ।

भारतीय संस्कृति की महानता, सहिष्णुता, समन्वय एवं सहयोग की वाती को कायम रखना है तो राजनीति का चरित्र बदलना होगा शिक्षा को राष्ट्रीय एकीकरण का सशक्त माध्यम बनाकर एक समान व सम्मान की संस्तुति विकसित कर हम वर्तमान के संदर्भ में सोचें, निर्णय लें और व्यवहार करें । भेदभाव के तमाम बिन्दुओं को भुलाकर निष्ठावान नागरिक के रूप में कार्य करें तथा सोचने एवं कार्य करने की सकारात्मक संस्कृति का विकास करें ।

भारत एक था, एक है और एक रहेगा। समस्याएं व नकारात्मक सोच हमारी अपनी देन है अत : हमें ही दूर करना होगा। हर भारतवासी को सहयोग, समन्वय, त्याग, बलिदान तथा एक दूसरे के प्रति समग्र प्यार के लिए दिलों में जगह बनानी होगी तथा राम-रहीम-ईसा, गुरुनानक, महावीर के आदर्शों को जीवन का यथार्थ बनाना होगा । भारत में आज सकारात्मक व सापेक्ष विचार व सक्रियता का अभाव हर क्षेत्र में है । यदि देश में सांप्रदायिकता जातियता, धर्म, क्षेत्रीयता, भाषावाद, सजग सकारात्मक परिस्थिनुकूल सक्रिय रहते तो उनकी सक्रियता विशेष अवसरों पर अपनी पहचान व क्षुद्रस्वाथों की पूर्ति के लिए होती है तो उसके तात्कालिक एवं दीर्घकालीन समाधानो के माध्यम से उन्हें धीरे-धीरे कम से कमतर व समाप्त भी किया जा सकता है । राजनेताओं का चरित्र, व्यवहार, व चिंतन ही राष्ट्रीय एकता में सबसे बडा बाधक व साधक तत्व है । इस समस्या का एक मात्र श्रेष्ठ समाधान है राजनीति एवं राजनेताओं का समग्र शुद्धिकरण व समग्र सापेक्ष सर्वस्वीकृत सांस्कृतिक राष्ट्र व राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता का निर्माण कर उसे उजागर व स्थापित किया जाए ।

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण से आप का क्या अभिप्राय है? भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं बताइये ।
2. सांप्रदायिकता क्या है? यह राष्ट्रीय एकीकरण में किस प्रकार बाधक है? भारत में सांप्रदायिक सद्भावना के लिए अपने सुझाव दीजिए ।
3. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण हेतु प्रयासों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए राष्ट्रीय एकीकरण हेतु सुझाव दीजिए ।
4. भारत में राष्ट्रीयता के विचार को समझाते हुए राष्ट्रीय एकता के मूलाधारों की चर्चा कीजिए।
5. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के अतीत पर प्रकाश डालिए । भारत सरकार के राष्ट्रीय एकता हेतु किए गए संवैधानिक प्रयास क्या-क्या है? क्या ये कारगर हुए है?

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रोबर्ट : बाइसइंप्रेसन ऑफ साउथ अफ्रीका पृ. 33
2. गार्नर : पालिटिकल साईंस एंड गवर्नमेंट 49
3. जे.एस. मिल : रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट, पाठ 16
4. क्रेन ब्रिंटन: : आइडियॉज एण्ड मैन, दा स्टोरी ऑफ वेस्टर्न थाट 1950,

5. प्रो. जिमर्न : नेशनलिटी एंड गवर्नमेंट पृ. 59

6. जी.एस घूरिये : सोशल टेंशन इन इंडिया पृ. 502

7. रजनी कोठारी : भारत में राजनीति

8. प्रो. एम.एन. श्री निवास : आधुनिक भारत में जातिवाद

9. वेबस्टर्स : थर्ड इंटरनेशनल डिक्शनरी 11 1902 चिकागो 1961

10. एम.एन. श्री निवास : आधुनिक भारत में जातिवाद पृ. 98-111

11. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के कर अध्याय पृ. 638

12. प्रभा दीक्षित : सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, मेकमिलन 1980 भूमिका

13. सर हरबर्ट रिजली : पिपुल ऑफ इंडिया

14. रजनी कोठारी : भारत में राजनीति पृ. 347

15. असगर अली, इंजीनियर : कोमुनल राइटस इन पोस्ट इंडिपेंडस इंडिया

16. बिपिन चंद्रा : कॉमुनिलिम्प इन मार्डन इंडिया

17. त्यागी, भारती : राजनीति (हिदू मुस्लिम संबंध)

18. प्रभा दीक्षित : कॉमुनिलिज्म ए स्ट्रगल फॉर पॉवर

19. कौसर,जे. आलम : पॉलिटिकल- आस्पैक्टस ऑफ नेशनल इंटिग्रेशन

20. विरेन्द्र ग्रोवर : पालिटिक्स ऑफ इंफ्लूएंश, वॉयलेंश, एंड प्रेशर ग्रुप्स

21. मुसिरुल हसन : नेशनलिज्म एंड कोमुनल पांलिटिक्स इन इंडिया

22. सैकंड : एनुअल रिपोर्ट ऑफ दॉ माइनोरिटी कमिशन

23. जैन एवं पहाड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीति

इकाई - 7

परिस्थितिकी एवं पर्यावरण, प्रदूषण विरोधी कानूनों की बाध्यता

इकाई संरचना

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 1972-1986 के मध्य के प्रचलित कानून
7.4 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974
7.4.1 केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड
7.4.2 बोर्ड की शक्तियां एवं कार्य
7.4.3 राज्य बोर्ड के कार्य (अधिनियम के भाग 17)
7.4.4 राज्य बोर्ड की शक्तियां
7.5 वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981
7.5.1 अधिनियम की प्रस्तावना
7.5.2 राज्य बोर्ड का गठन
7.5.3 केन्द्रीय बोर्ड की शक्तियां एवं कार्य
7.5.4 राज्य बोर्ड के कार्य
7.5.5 औद्योगिक संयंत्रों के दायित्व [भाग 21(5)]
7.6 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986
7.6.1 परिभाषाएं
7.6.2 केन्द्र सरकार की सामान्य शक्तियां
7.6.3 अन्य विशिष्ट शक्तियां
7.6.4 विविध शक्तियां
7.7 निष्कर्ष
7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.9 संदर्भ ग्रन्थ

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है -

1. पर्यावरण की समस्या की गम्भीरता से परिचित करवाना।
2. पर्यावरण की समस्या के विभिन्न पक्षों को उजागर करना।
3. पर्यावरण की समस्याओं से निपटने के लिए सरकारो द्वारा उठाये गये कानूनी कदमों की जानकारी करना।

7.2 प्रस्तावना

आज हम पर्यावरण की समस्या को अनदेखा नही कर सकते है, क्योंकि यह हमारे अस्तित्व से जुड़ी हुई है। यदि मानव द्वारा पर्यावरण का विध्वंस जारी रहा तो भविष्य में प्रदूषित पर्यावरण मानव जाति को समाप्त ही कर देगा। छठे दशक से पर्यावरण की स्थिति के बारे में 'चिन्ता उभरी है। बढ़ते हुये प्रदूषण, घटती वनस्पति तथा जैविक विविधता को कमी आज पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट को प्रतिबिम्बित कर रही है। आज पर्यावरण में नुकसान देह रसायनों की, मात्रा बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप वायु मण्डल एवं हमारी खाद्य वस्तुएं प्रदूषित होती जा रही हैं, पर्यावरणीय दुर्घटनाओं का खतरा बढ़ रहा है तथा जीवन समर्थक व्यवस्थाओं को चुनौतियां मिलना प्रारम्भ हो गया है।

पर्यावरणीय विश्व व्यापक समस्या पर विश्व जनमत तैयार करने की दिशा में जून 1972 में स्टॉकहोम होम में मानव पर्यावरण पर आयोजित संयुक्त राष्ट्रसंघ सम्मेलन उल्लेखनीय रहा। भारत सरकार ने इस सम्मेलन में भाग लिया एवं पर्यावरण चिन्ता को काफी प्रभावी ढंग से उठाया। भारत सरकार ने इस समस्या के समाधान हेतु कई कदम उठाये है तथा बहुत से कानून बनाये है । किन्तु इस बढ़ती समस्या से निपटने के लिए पर्यावरण संरक्षण हेतु कोई सामान्य कानून नहीं थे। अत भारत सरकार ने सामान्य कानून बनाने की आवश्यकता के संदर्भ में सोचा। यह कानून कालान्तर में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के रूप में सामने आया।

पर्यावरण अधिनियम 1986 पर विचार करने से पहले यह वांछनीय होगा कि सरकार द्वारा 1972 से 1986 के बीच में उठाये गये कदमों को एक बार देख लें।

7.3 1972-1986 के मध्य के प्रचलित कानून

भारत में अधिनियम 1986 से पहले बहुत से पर्यावरणीय मामलों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित कुछ कानून अस्तित्व में थे, ये मुख्यत: प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों या आपदा विषयक विशिष्ट श्रेणियों से ही सामान्यत: सम्बन्धित थे। 1986 के व्यापक अधिनियम से पहले भारतीय संसद में विशेषरूप से दो कानून पास हुए थे। ये निम्नलिखित है

1. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
2. वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

यह अच्छा होगा कि इनके संदर्भ में हम थोड़ी जानकारी प्राप्त कर लें।

7.4 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण तथा जल की पूर्ण गुणवत्ता को बनाये रखना था। यह अधिनियम संविधान की धारा 252 के अनुसरण के रूप में एक संविधि संग्रह के रूप में सामने आया। भारत संघ के अन्य राज्यों को भी इस बात के लिए राजी किया गया कि वे भी संविधान की धारा 252(1) के तहत एक प्रस्ताव पारित करते हुए इस विशिष्ट अधिनियम को अपना लें। तद्उपरान्त आसाम, बिहार, गुजरात, हरियाणा,

हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं काश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, त्रिपुरा एवं पश्चिमी बंगाल में इस अधिनियम को अपनाया गया।

कालान्तर में प्रशासकीय एवं व्यावहारिक समस्याओं को दूर करने एवं इस अधिनियम को लागू करने से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के (लिए इसके कई प्रावधानों में जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम 1988 के द्वारा संशोधन किये गये।

7.4.1 केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

यह अधिनियम केन्द्र सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह एक केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना करे तथा अधिनियम में प्रदान की गयी शक्तियों एवं कार्यो को संचालित करे। केन्द्रीय बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे।

(अ) केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त एक पूर्णकालिक अध्यक्ष - अध्यक्ष, को पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित मुद्दों में विशिष्ट जानकारी हो एवं- व्यावहारिक अनुभव भी आवश्यक है।

(ब) केन्द्र सरकार पाँच अधिकारियों की नियुक्ति करेगी।

(स) इन पाँच अधिकारियों में से दो आवश्यक रूप से राज्य-बोर्डों के सदस्य होंगे तथा दो अन्य राज्यों के अन्तर्गत कार्यरत स्वशासकीय इकाईयों के सदस्यों में से लिए जायेंगे।

(द) बोर्ड में तीन अन्य गैर-शासकीय सदस्य नियुक्त- किये जायेंगे, कि उद्योग, कृषि व मछली पालन के पेशे से जुड़े प्रतिनिधि होंगे ।

(य) दो अन्य सदस्यों का मनोनयन सरकार, केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित कम्पनियों या नियमों से जुड़े हु ये प्रतिनिधियों में से करेगी।

(र) एक पूर्णकालिक सदस्य सचिव की नियुक्ति की जायेगी।

7.4.2 बोर्ड की शक्तियां एवं कार्य

अधिनियम का अध्याय चार अधिनियम के भाग 16 का विवेचन करना है। इनका मुख्य काम राज्यों में पायी जाने वाली जल धाराओं तथा अन्य जल संसाधनों की स्वच्छता को बढ़ाना है । इस कार्य के संचालन हेतु केन्द्रीय बोर्ड निम्नलिखित में से कोई भी कार्य संचालित कर सकती है।

1. जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण से सम्बन्धित किसी भी मुद्दे पर केन्द्र सरकार को सलाह देना ।
2. राज्य बोर्डों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना । तथा उनके मध्य उत्पन्न विवादों का समाधान करना ।
3. राज्य बोर्डो को तकनीकी सहायता एवं निर्देशन प्रदान करना । जल प्रदूषण की समस्या से सम्बन्धित अन्वेषणों एवं शोध कार्यो को प्रत्यायोजित करना ।
4. जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या कटौती कार्यक्रमों से जुड़े व्यक्तियों के प्रशिक्षण की योजना बनाना तथा उसे आयोजित करना ।
5. जल प्रदूषण से सम्बन्धित तकनीकी एवं सांख्यकीय आकड़ों को एकत्रित करना संकलित करना एवं प्रकाशित करना ।

6. जल धाराओं एवं कुओं के पानी के स्तर के लिए नियम निर्धारित करना तथा उनमें संशोधन करना ।
7. जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण के राष्ट्र व्यापी कार्यक्रमों की योजना बनाना तथा उनका क्रियान्वयन करना ।
8. उन अन्य सभी कार्यों को संचालित करना जो कि इनसे जुड़े हुए है ।

इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय बोर्ड उस स्थिति के अन्तर्गत राज्य बोर्ड के कार्यो का भी संचालन करेगा जबकि राज्य बोर्ड केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुपालन में दोषी पाया जायेगा । बोर्ड जल के सेमल के विश्लेषण हेतु प्रयोगशालाएं स्थापित करेगा तथा अन्य प्रयोगशालाओं को मान्यता प्रदान करेगा । इस दिशा में वह किसी भी जल धारा., मल-जल एवं जल व्यापार मार्गों में से कहीं भी पानी का सैम्पल लेकर उसकी जांच कर सकता है ।

7.4.3 राज्य बोर्ड के कार्य (अधिनियम के भाग 17)

राज्य बोर्ड के निम्नलिखित कार्य है -

1. राज्य में जलधाराओं एवं कुओं के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उसमें कमी से सम्बन्धित व्यापक कार्यक्रमो की योजना बनाना ।
2. जल प्रदूषण के निवारण एंव नियंत्रण हेतु राज्य सरकार को सलाह देना ।
3. जल प्रदूषण से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन करना ।
4. जल प्रदूषण की समस्या से सम्बन्धित अन्वेषणों एवं शोध कार्यो को बढ़ावा देना, संचालित करना तथा उनमें सहभागी बनना ।
5. जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण से सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रशिक्षण के आयोजन में केन्द्रीय बोर्ड के साथ संयुक्त कार्यक्रम संचालित करना । तथा इस समस्या से सम्बन्धित जागरूकता कार्यक्रम संचालित करना।
6. मल-जल तथा जल परिवहन धाराओं की जाँच करना और इनसे सम्बन्धित जो कार्य संचालित किये जा रहे है एवं इनसे सम्बन्धित जो संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं, उनकी देखरेख करना । कहीं पर नया मल-जल संयंत्र स्थापित करने सम्बन्धित योजनाओं का पुनर्निरीक्षण करना ।
7. राज्य में जल को वर्गीकृत करना तथा जल की गुणवत्ता से सम्बन्धित उठाये गये कदमों की समीक्षा करना ।
8. मल-जल शुद्धिकरण की मितव्ययी एवं विश्वसनीय पद्धति विकसित करना तथा भूमि की दशा, जलवायु एवं जलसंसाधन को ध्यान में रखते हुए जल मार्गो का निर्धारण करना ।
9. कृषि में मल-जल की उपयोगिता सम्बन्धी पद्धतियों का निर्धारण करना तथा उपयुक्त जल प्रवाहों को बढ़ावा देना ।
10. निम्न दो आदेशों को लागू करना या इनका हटाना, ये है: प्रथम - नदी धाराओं या कुओं में संयंत्रों का दूषित पानी डालने को नियंत्रित करना तथा उसके निवारण हेतु प्रयास करना । एवं द्वितीय - मल-जल निस्तारण की संरचना हेतु व्यक्तियों को काम पर लगाना ।

11. व्यक्तियों को मल त्याग से सम्बन्धित कुछ दिशा निर्देशों के पालन हेतु पाबन्द करना ।
12. राज्य सरकार को ऐसे उद्योगों की स्थापना के स्थान से सम्बन्धित सलाह देना जिनसे कि नदी या कुओं के जल के प्रदूषित होने की संभावना बमी रहती हो ।
13. ऐसे अन्य सभी कार्यो को संचालित करना जिनका कि दिशा निर्देशन केन्द्र सरकार के केन्द्रीय बोर्ड द्वारा किया गया हो ।
14. बोर्ड ऐसी प्रयोगशालाओं को स्थापित कर सकते है या उन्हें मान्यता प्रदान कर सकते है जो कि कार्यो से सम्बन्धित अनुभाग के अन्तर्गत रहते हुये बोर्ड पानी के सैम्पल का विश्लेषण करवा सकता है ।

इस अधिनियम के अनुभाग 18 के अन्तर्गत इन कार्यों के निर्धारण में वह निम्न दो से नियंत्रित होगा ।

(अ) केन्द्रीय बोर्ड, केन्द्रीय सरकार की इच्छा अनुरूप लिखित में दिशा निर्देशन दे सकता है।

(ब) राज्य के दिशा निर्देशनों को भी इन बोर्डो को मानना होगा ।

जहां कहीं राज्य सरकार द्वारा दिये गये निर्देशनों तथा केन्द्रीय, बोर्ड ' द्वारा दिये गये निर्देशनों में विरोधाभास उत्पन्न होता है तो उस मुद्दे को निर्णय हेतु केन्द्र सरकार के पास भेजा जायेगा एवं उसी का निर्णय अन्तत मान्य होगा ।

जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम 1988 के द्वारा - अनुभाग 18 में उपअनुभाग 2, 3 एवं 4 जोड़ा गया, जिनके द्वारा केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह केन्द्रीय बोर्ड को यह निर्देशन दे सकती है कि वह राज्य बोर्ड के किसी भी कार्य को अपने हाथ में ले ले । अगर राज्य बोर्ड उसके किमी निर्देश की अनुपालना में असमर्थ रहा है तो वह प्रत्यक्षत: हस्तक्षेप कर सकता है । साथ ही केन्द्रीय बोर्ड को यह भी अधिकार दिया गया कि इस प्रकार के हस्तक्षेप के द्वारा जो व्यय लगे, उसको राज्य बोर्ड से वसूल कर सकता है ।

7.4.4 राज्य बोर्ड की शक्तियां

जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण के संदर्भ में राज्य बोर्ड को निम्नलिखित शक्तियां प्रदान की गई है

1. अनुभाग 19, राज्य सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह इस अधिनियम के क्रियान्वयन को दिशा में किसी भी क्षेत्र को निषेध क्षेत्र घोषित कर सकता है तथा उसका सरकारी गजट में प्रकाशन करवा सकता है ।
2. अनुभाग 20, राज्य बोर्ड को यह शक्ति प्रदान करता है कि किसी भी क्षेत्र में वह सर्वेक्षण कर सकता है । जल के प्रवाह एवं एकत्रित जल से सम्बन्धित मापदण्ड तय कर सकता है तथा उससे सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करता है ।
3. अनुभाग 21, राज्य बोर्ड को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह जल विश्लेषण के उद्देश्य हेतु किसी भी जलधारा या कुओं से पानी प्राप्त कर सकता है ।

केन्द्र एवं राज्य बोर्डों के पास जो व्यापक सोत रहे उनके फलस्वरूप जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1977 ने संविधि संहिता का रूप ले लिया । इस अधिनियम

में यह शक्ति प्रदान की गई कि वह किसी भी व्यक्ति, उद्योग या स्थानीय निकायों द्वारा उपयोग में लिये जाने वाले पानी पर कर ले सकता है एवं लेवी लागू कर सकता है ।

7.5 वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

विज्ञान एवं तकनीक के विकास के फलस्वरूप समाज को बहुत से लाभ मिलने लगे हैं । व्यक्तियों को उन्नत वस्तुऐं तुलनात्मक रूप से उचित दरों पर प्राप्त होने लगी हैं । किन्तु साथ ही तकनीक के इस विकास ने प्रदूषण की समस्या की तरफ भी हमें धकेल दिया है । साधारण शब्दावली में प्रदूषण का तात्पर्य गलत संख्या में, गलत स्थान पर, गलत पदार्थ की उपस्थिति से है । एक टैंक में काफी बड़ी संख्या में औद्योगिक गैस का भण्डारण कुछ वस्तुओं के उत्पादन के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है । लेकिन यह अगर पर्यावरण में फैल जाये तो हमारे चारों तरफ की मानव प्रजाति एवं पशु जाति के जीवन एवं स्वास्थ्य के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं । साथ ही धूम्रपान का धुआँ, धूल तथा कारखानों से उत्पादन प्रक्रिया के दौरान निकला धुआँ पर्यावरण को काफी मात्रा में प्रभावित कर रहा है ये स्वास्थ्य के विध्वंस का सम्भावित स्रोत भी बन सकता है । वायु प्रदूषण के विरूद्ध पर्याप्त नियंत्रण की दिशा में भारतीय संसद द्वारा यह अधिनियम पारित किया गया । यह अधिनियम 16 मई 1981 से अस्तित्व में आया । इस अधिनियम का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत रखा गया ।

7.5.1 अधिनियम की प्रस्तावना

इस अधिनियम का उद्देश्य वायु प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण तथा इसमें कमी करना रहा है । इस हेतु कुछ आवश्यक कदम उठाने के लिए भी कहा गया है । साथ ही इस अधिनियम में बहुत से शब्दों को भी परिभाषित किया गया है । ये शब्द है - वायु प्रदूषण, कलुषित वायु, स्वीकृत उपकरण, स्वीकृत ईंधन, ऑटो मोबाइल, चिमनी, निस्तारण, औद्योगिक संयंत्र तथा बोर्ड. का तात्पर्य' केन्द्रीय या राज्य बोर्ड से है । अनुभाग 2 (अ) में कलुषित वायु को परिभाषित किया गया है । इसका तात्पर्य पर्यावरण में पाये जाने वाले वे कठोर, तरल या गैस वाले तत्व होते है जिनमें हम शोर को भी सम्मिलित कर सकते है । इनकी इतनी अधिक मात्रा उपस्थित हो जाती है कि मानव प्राणियों के लिए खतरनाक साबित होने लगते है ।

अधिनियम, 1974 जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम के अनुभाग 3 में केन्द्रीय पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड को वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण से सम्बन्धित कार्य एवं शक्तियां संचालित करने का अधिकार भी दिया गया। इसी प्रकार राज्य बोर्डो को भी अधिकार प्रदान किये गये ।

यदि किन्हीं राज्यों में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड नहीं है तो राज्य सरकार वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण राज्य बोर्ड की स्थापना कर सकती है ।

7.5.2 राज्य बोर्ड का गठन

राज्य बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे -

1. पर्यावरण संरक्षण से जुड़े मामलों के विशिष्ट ज्ञान या अनुभव से युक्त एक अध्यक्ष होगा, जिसका मनोनयन राज्य सरकार करेगी । अध्यक्ष पूर्णकालिक भी हो सकता है या अंशकालिक भी ।
2. राज्य सरकार अधिकतम पाँच सरकारी अधिकारियों को मनोनीत कर सकती है ।
3. राज्य सरकार अपने राज्य के अन्तर्गत संचालित स्वशासित इकाइयों के सदस्यों में से अधिकतम पाँच सदस्यों का मनोनयन कर सकती है ।
4. कृषि, मछली व्यवसाय या उद्योग या व्यापार या श्रम या अन्य किसी क्षेत्र से जुड़े तीन गैर सरकारी सदस्यों को सरकार बोर्ड में नियुक्त कर सकती है ।
5. दो सदस्य राज्य सरकार की कम्पनियों या उपक्रमों में से मनोनीत किये जायेंगे ।
6. एक पूर्ण कालिक सदस्य सचिव होगा जिसको कि प्रदूषण नियंत्रण से जुड़े वैज्ञानिक, अभियांत्रिकी तथा प्रबन्धकीय पक्षों का अनुभव होगा, ज्ञान होगा तथा इससे जुड़ी योग्यताएं होगी ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत जिस किसी राज्य बोर्ड का गठन किया जायेगा उसका अपना एक नाम होगा तथा शक्तियों के संचालन हेतु एक सामान्य मुद्रा (सील) होगी । यह बोर्ड किसी भी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है, उसको बेच सकता है इस क्षेत्र से सम्बन्धित कोई भी अनुबन्ध कर सकता है । तथा यह कोई भी मुकदमा दायर कर सकता है ।

7.5.3 केन्द्रीय बोर्ड की शक्तियां एवं कार्य

इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय बोर्ड के निम्मलिखित कार्य उल्लेखित किये गये है-

1. वायु की गुणवत्ता तथा वायु प्रदूषण पर नियंत्रण, निवारण एवं प्रदूषण में कमी हेतु किसी भी मुद्दे पर केन्द्र सरकार को सलाह देना ।
2. वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण हेतु राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों को योजना बनाना तथा उनका क्रियान्वयन करना ।
3. राज्य बोर्ड की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना ।
4. राज्य बोर्डो को तकनीकी सहायता एवं निर्देशन देना ।
5. वायु प्रदूषण से जुड़े व्यक्तियों के प्रशिक्षण हेतु योजना बनाना तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों को संचालित करना ।
6. वायु प्रदूषण से सम्बन्धित तकनीकी आंकडों को एकत्रित करना, संकलित करना एवं प्रकाशित करना ।
7. वायु की गुणवत्ता हेतु स्तर निर्धारित करना ।
8. वायु प्रदूषण से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करना एवं उनका प्रचार-प्रसार करना ।

केन्द्रीय बोर्ड वायु प्रदूषण से सम्बन्धित प्रयोगों हेतु प्रयोगशालाओं की स्थापना कर सकता है या कुछ प्रयोगशालाओं को मान्यता प्रदान कर सकता है । साथ ही इस अधिनियम के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि केन्द्रीय बोर्ड कुछ समितियां बना सकता है तथा उन्हें अपने अधिकार प्रदत्त कर सकता है ।

7.5.4 राज्य बोर्ड के कार्य

राज्य बोर्ड के निम्नलिखित कार्य बताये गये है -

1. वायु प्रदूषण निवारण, नियंत्रण एवं उसमें कमी हेतु एक व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना।
2. वायु प्रदूषण से सम्बन्धित किसी भी मुद्दे पर राज्य सरकार को सलाह देना ।
3. सूचना एकत्रित करना तथा उसका प्रचार-प्रसार करना ।
4. वायु प्रदूषित क्षेत्रों का निरीक्षण करना तथा प्रदूषित क्षेत्रों में वायु की गुणवत्ता की जांच करना
5. औद्योगिक संयंत्रों एवं कारखानों द्वारा वायु प्रदूषण के कुछ नियम निर्धारित करना ।
6. ऐसे उद्योग जिनसे कि वायु प्रदूषण की संभावना हो, के स्थान निर्धारण के संदर्भ में राज्य सरकार को सलाह देना ।
7. केन्द्रीय बोर्ड द्वारा समय-समय पर दिये गये आदेशों को क्रियान्वित करना ।

1 अप्रैल 1988 से यह प्रावधान कर दिया गया कि कोई भी व्यक्ति वायु प्रदूषित नियंत्रित क्षेत्र में किसी भी प्रकार का औद्योगिक संयत्र राज्य बोर्ड की पूर्व. सहमति के बिना स्थापित नहीं कर सकता। संयंत्र की स्थापना से सम्बन्धित आवेदन पत्र की प्राप्ति के चार माह के दौरान राज्य बोर्ड को यह अधिकार है वह स्वीकृति प्रदान करें या अस्वीकृत कर दे । साथ ही राज्य बोर्ड को यह भी अधिकार है कि वह पूर्व में दी गई निश्चित अवधि की स्वीकृति को भी समय पूर्व रद्द कर सकता है तथा पूर्व स्वीकृतियों को आगे बढ़ाने से इन्कार कर सकता है ।

7.5.5 औद्योगिक संयंत्रों के दायित्व [भाग 21(5)]

अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक संयंत्रों के निम्न दायित्व बताये गये है -

1. राज्य बोर्डों के दिशा निर्देशनों के अनुरूप प्रदूषित नियंत्रित उपकरणों को बदलना तथा उनमें सुधार करना।
2. जहां कही भी उद्योग लगाया जाये वहां राज्य बोर्ड के दिशा निर्देशनों के अनुरूप प्रदूषण नियंत्रण उपकरण लगाये जायें तथा उनका सुचारू रूप से संचालन किया जाये ।
3. ये उपकरण निरन्तर रूप से कार्य करते रहे उसकी व्यवस्था की जाये ।
4. जहां कहीं आवश्यक हो चिमनियां बनायी जायें ।

अनुभाग 22 (अ) को, संशोधन अधिनियम 1987 के द्वारा जोड़ा गया । इस अनुभाग के द्वारा बोर्ड को यह अधिकार मिला कि वह किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध न्यायालय में जा सकता है, अगर वह व्यक्ति वायु प्रदूषण फैला रहा है । न्यायालय उस व्यक्ति को बोर्ड के दिशा निर्देश मानने के लिए कह सकता है । अगर व्यक्ति उन दिशा निर्देशों को नहीं मानता है तो न्यायालय के दिशा निर्देशनों के अनुरूप बोर्ड उसको सजा दे सकता है तथा सम्पूर्ण खर्च को सम्बन्धित व्यक्ति से वसूल सकता है ।

अनुभाग 37 बोर्ड को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह उद्योग की बिजली को बन्द करवा सकता है, उस पर रोक लगा सकता है एवं उसको नियंत्रित कर सकता है । अगर उद्योग

वायु प्रदूषण फैला रहा है तो वह उसमें काम आने वाली पानी की आपूर्ति को बन्द करवा सकता है । न्यायालय को यह अधिकार है कि वह किसी भी कम्पनी को 6 महीने से 6 वर्ष तक के लिए बन्द करवा सकता है तथा प्रतिदिन के हिसाब से 5 हजार रुपये जुर्माना कर सकता है अगर कोई कम्पनी फिर भी आदेशों की अवहेलना करती है तो उसके मालिक को दो वर्ष की जेल भी सकती है ।

7.6 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986

समय के साथ यह देखा गया कि पर्यावरण संरक्षण की जटिल समस्या के निवारण में जल एवं वायु प्रदूषण अधिनियम पर्याप्त भूमिका नहीं निभा पा रहे है । इन दोनों अधिनियमों का आग्रह प्रदूषण के विशिष्ट प्रकार तथा आपदाओं की विशिष्ट श्रेणियों तक ही सीमित है । पर्यावरणीय आपदाओं के कुछ अन्य मुख्य क्षेत्रों को इनमें सम्मिलित नहीं किया गया है । साथ ही इनमें औद्योगिक एवं पर्यावरणीय सुरक्षा से सम्बन्धित मुद्दों को भी एक दूसरे से पर्याप्त रूप से जोड़ कर नहीं देखा गया है । द्वितीय बहुत सारी नियंत्रक एजेन्सियों के होने के कारण एक ऐसी केन्द्रीय सत्तायुक्त इकाई की आवश्यकता हुई जो एक सामान्य दिशा निर्देशन प्रदान कर सके । साथ ही पर्यावरणीय सुरक्षा से सम्बन्धित दीर्घकालीन आवश्यकताओं के अध्ययन, उनकी योजना एवं उनके क्रियान्वयन से सम्बन्धित पहलुओं को देखने की भी आवश्यकता महसूस की गयी । फलत : संसद द्वारा पर्यावरणीय संरक्षण अधिनियम 1986, पारित किया गया ।

इस अधिनियम का उद्देश्य ऊपर बताये गये लक्ष्यों को प्राप्त करना था । यह अधिनियम 19 नवम्बर 1986 से अस्तित्व में आया एवं इसका क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण भारत था। इस अधिनियम के अन्तर्गत पर्यावरण की विशिष्ट शब्दावली को व्यापक रूप से एवं कानूनी रूप से परिभाषित किया गया ।

7.6.1 परिभाषाएं,

इस अधिनियम के अन्तर्गत पर्यावरण से सम्बन्धित बहुत सी शब्दावलियों को परिभाषित किया गया है -

1. पर्यावरण के अन्तर्गत जिन चीजों को सम्मिलित किया गया है वे है - जल, वायु एवं भूमि तथा इनके एवं मानव प्राणियों के मध्य का पारस्परिक सम्बन्ध, अन्य जीवित प्राणियों, संयंत्रों, सूक्ष्म जीव जन्तु के मध्य की पारस्परिक अन्तर्गत क्रियाऐं ।
2. पर्यावरण प्रदूषण का तात्पर्य पर्यावरण में किसी भी प्रकार के प्रदूषण से है ।
3. प्रदूषित वातावरण का तात्पर्य, पर्यावरण के लिए हानिकारक किसी भी तरह के कठोर, तरल या गैस तत्वों की उपस्थिति है ।
4. पर्यावरणीय देखरेख का तात्पर्य, पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण इकाईयों की उत्पादन प्रक्रिया तथा उससे जुड़े तत्वों की देख रेख, उनका भण्डारण, परिवहन, प्रयोग, विध्वंस, रूपान्तरण आदि से है ।

5. आपदा तत्वों का तात्पर्य, ऐसे रसायनिक एवं भौतिक, रसायनिक तत्वों के फलस्वरूप उत्पन्न नकारात्मक स्थितियों से है जिनसे कि मानव प्राणियों, वातावरण पर खतरनाक प्रभाव पड़ता हो ।
6. पदाधिकारी का तात्पर्य, किसी भी उद्योग में पर्यावरण से सम्बन्धित मुद्दों को देखने वाले व्यक्ति से है ।

7.6.2 केन्द्र सरकार की सामान्य शक्तियां

इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वह पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरणीय गुणवत्ता में वृद्धि तथा पर्यावरण निवारण एवं नियंत्रण हेतु सरकार किसी प्रकार का कोई भी कदम उठा सकती है । केन्द्र सरकार कुछ अधिकारियों को नियुक्त कर सकती है तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले अधिकारों के संचालन हेतु उन्हें निर्देशित कर सकती है । केन्द्र सरकार को यह अधिकार है कि वह पर्यावरण से सम्बन्धित मुद्दों पर किसी भी व्यक्ति अधिकारी एवं संस्था को लिखित निर्देश दे सकती है । ये सभी इन निर्देशों को मानने के लिए बाध्य होंगे । सरकार सामान्य नियम बनाने हेतु अपनी विज्ञप्तियों को सरकारी गजट में प्रकाशित करवा सकती है ।

7.6.3 अन्य विशिष्ट शक्तियां

पर्यावरण प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण, एवं उसमें कमी हेतु केन्द्र। सरकार को कुछ विशिष्ट शक्तियां प्रदान की गयी है, जो निम्नलिखित है -

1. ऐसे किसी भी व्यक्ति को उद्योग संचालित करने की अनुमति नहीं होगी जो कि निश्चित स्तर के पर्यावरण प्रदूषण से अधिक प्रदूषण फैलाते हों ।
2. आपात् तत्वों को संचालित करने वाले व्यक्तियों को प्रकार्यात्मक सुरक्षा कदम उठाने के लिये बाध्य करना ।
3. कुछ निश्चित अवस्थाओं में अधिकारियों एवं अभिकरणों को सूचनाएं प्रदान करना ।
4. किसी भी संयंत्र में प्रवेश तथा उसके निरीक्षण करने की शक्तियां ।
5. किसी भी प्रकार के सैम्पल लेने तथा उसी से जुड़ी प्रक्रियाओं ले संचालित करने की शक्तियां ।
6. एक या अधिक पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं की स्थापना या कुछ संस्थाओं या प्रयोगशालाओं को पर्यावरणीय प्रयोगशालाओं की मान्यता प्रदान करने की शक्तियां ।
7. इन उद्देश्यों के परीक्षण हेतु एक सरकारी पर्यवेक्षक की नियुक्ति करना ।
8. सरकारी पर्यवेक्षक की रिपोर्ट के तथ्यों को साक्ष्य के रूप में प्रयोग करने सम्बन्धी शक्तियां।
9. इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई कम्पनी या व्यक्ति अपराध करता है तो वह दोषी माना जायेगा तथा उसके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही के अन्तर्गत उसे दण्डित किया जायेगा ।
10. अगर किसी सरकारी विभाग द्वारा इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध किया जाता है तो उस विभाग के अध्यक्ष के विरूद्ध दण्ड देने की क्रिया संचालित की जायेगी।

7.6.4 विविध शक्तियां

1. सरकार या सरकार के किसी भी अधिकारी के विरूद्ध पर्यावरण संरक्षण की दिशा में उठाये गये कदम के विपरीत कोई भी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, अभियोग तय नहीं किया जा सकता, तथा किसी भी प्रकार की कानूनी कार्यवाही का संचालन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार से यह शक्ति अधिकारियों को एक संरक्षण प्रदान करती है ।
2. न्यायालय ऐसे किसी अपराध पर ध्यान नहीं देगा जिसकी कि केन्द्र सरकार द्वारा या किसी व्यक्ति द्वारा 60 दिन पूर्व शिकायत नहीं की गयी हो ।
3. चाही गयी किसी भी प्रकार की सूचना, रिपोर्ट, सांख्यिकी, आँकड़े आदि को, किसी भी व्यक्ति, पदाधिकारी तथा राज्य सरकार को उपलब्ध करवाना आवश्यक होगा ।
4. इस अधिनियम के अनुसार तीन के अन्तर्गत, जो भी सदस्य, अधिकारी एवं कर्मचारी होंगे उन्हें लोकसेवक माना जायेगा ।
5. किसी दीवानी न्यायालय को कोई मुकदमा या कानूनी कार्यवाही संचालित करने का अधिकार नहीं होगा ।
6. केन्द्र सरकार को अधिकार होगा कि वह अपनी सत्ता का प्रत्यायोजन कर सकती है तथा इस अधिनियम में प्रदत्त की गयी शक्तियों के क्रियान्वयन हेतु कानून बना सकती है ।

7.7 निष्कर्ष

इन तीन अधिनियमों के परिप्रेक्ष्य में आज ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण एवं उसमें अभिवृद्धि हेतु ये अधिनियम सक्षम भूमिका निभा सकते हैं। पर्यावरणीय सम्मेलन स्टॉकहोम, जून 1972 में लिये गये निर्णयों से भी यह स्पष्ट होना है कि सभी पर्यावरणीय गुणवत्ता एवं इसके संरक्षण को बढ़ावा देने की ओर उन्मुख है।

7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974 की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
2. राज्य स्तरीय पर्यावरणीय बोर्ड के कार्यों एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।
3. पर्यावरण नियंत्रण में औद्योगिक संयंत्रों के दायित्वों का वर्णन कीजिए।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. जैन सुरेश — एनवॉयरमेन्टल लॉ इन इंडिया नई दिल्ली 1984
2. खोशू टी.एन. — एनवॉयरमेन्ट कन्सर्नस एण्ड स्ट्रेटेजीज आशीश पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली 1988
3. मिश्रा सी. के. — डेवलपमेंट एण्ड एनवॉयरमेन्टल स्ट्रेटेजीज एफ. एस. एल. रीवा ।
4. रिपोर्ट ऑफ सेन्ट्रल बोर्ड फॉर दो प्रिवेंशन एण्ड कन्ट्रोल ऑफ वाटर पॉल्यूशन नई दिल्ली 1979

इकाई- 8

सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में आरक्षण

इकाई संरचना

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 ब्रिटिश शासन और आरक्षण

8.4 संविधान और आरक्षण

8.5 अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षण

8.6 अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण

8.7 काका कालेलकर आयोग

8.8 मण्डल आयोग

8.9 राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की नीति

8.10 न्यायपालिका और आरक्षण

8.11 आरक्षण का समर्थन एवं विरोध

8.12 आरक्षण का लाभ

8.13 पुनर्विचार आवश्यक

8.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.1 उद्देश्य

इस आलेख का उद्देश्य भारत में सामाजिक रूप से पिछड़े के लिए जारी, नौकरियों में आरक्षण का विवेचन करना है ।

8.2 प्रस्तावना ।

भारत में सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग के नाम से पुकारा जाता है, जो सतत् छुआ-छूत, दासता, अशिक्षा और गरीबी के शिकार रहे है । आजादी के पूर्व अंग्रेजी शासन व्यवस्था द्वारा उनके उत्थान के लिए कुछ प्रयास किया गया । कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी व्याप्त सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया । परन्तु आजादी के बाद भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा इन जातियों का जीवन स्तर उठाने और समान की मुख्य धारा के साथ उनको समुचित रूप से संयुक्त करने के लिए समग्र प्रयत्न किये गये है ।

भारतीय संविधान के विशेष प्रावधान के साथ विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान सामाजिक रूप से निर्बलतर वर्ग के कल्याण के लिए विशेष प्रयास किया गया है । पर इसका वांछित प्रभाव नही पड़ा है और अब भी गरीबी तथा सामाजिक अद्य पतन से पीड़ित है । तथ्य यह है कि देश की सामाजिक, आर्थिक प्रगति से ये जातियां आमतौर पर लाभ नहीं उठा पाई है । और उसका फल यह हुआ है कि राजनीतिक स्वाधीनता के बावजूद भी इन्हें आर्थिक सुविधा

एवं सामाजिक न्याय नहीं मिल पाया है । सरकारी सेवाओं में आरक्षण इन्हें सामाजिक न्याय और विकास का मौका देने का सरकार के द्वारा किया गया एक प्रयास है ।

जाति प्रथा की उत्पत्ति प्राचीन समाजों में नहीं हुई । वैदिक काल में चतुर्वर्ण पद्धति का विकास हुआ, इससे बाट में जाति का विकास तथा व्यवस्थीकरण हुआ । वर्ग पद्धति के द्वारा जाति प्रथा को संरचना प्रदान की गयी । इस संरचना के द्वारा जाति प्रथा को धार्मिक कृत्यों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । विशुद्धता, छुआ छूत की विचारधारा के प्रयोग द्वारा जनसंख्या के विशाल मार्ग को निम्न जातियों में वर्गीकरण एवं पृथक्करण किया गया । इससे इन जातियों का आनुवंशिक रूप से शोषण शुरू हुआ जो आज भी जारी है । इसके विभिन्न प्रतिरूप पैदा हो रहे है।

भारतीय समाज में सामाजिक संरचना जाति, धर्म और वंश पर आधारित होती है । इसमें समूह को महत्व दिया जाता है । व्यक्ति को नहीं । विभिन्न जाति एक पूर्ण इकाई है । इसमें सदस्यों में अपने भिन्न प्रथाएं एवं परम्पराओं के अनुरूप सामाजिकरण होना है । जीवन में असुरक्षा की भावना व्यक्ति को परिवार, जाति गांव एवं अन्य संगठनों से सम्बन्ध जोड़ने को बाध्य करती है । एक-दूसरे व्यक्ति को अपने परिवार एवं जाति से निकटता के आधार पर वर्गीकृत करता है । सामाजिक सम्पर्क और राजनीतिक सम्बन्ध भी इसी सोच से जुड़े होते है ।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति सामाजिक वर्गीकरण को महत्वपूर्ण आधार है। यह समझा जाना है कि जाति का विकास मनुष्य के व्यवसाय एवं इसके प्रति आन्तरिक झुकाव से हुआ । बाद में व्यवसाय वंशानुगत हो गया । वंशानुगत व्यवसाय से सामाजिक-आर्थिक एकाधिकार को स्वार्थी तत्वों ने बढ़ावा दिया एवं सामाजिक शोषण का विकास हुआ । इससे जाति प्रथा का विकास हुआ तो शुद्धता-अशुद्धता पर आधारित कठोर सामाजिक नियम को जन्म दिया । इससे सदियों पहले कुछ जातियां अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को निकृष्ट मानने लगी । आज जाति प्रथा की जड़ भारत में स्थिर हो चुकी है एवं मनुष्य-मनुष्य में विभेद पैदा किए हुए है ।

भारत में कितनी जाति विशेष के लोग पाये जाते है । यह कहना मुश्किल है । परन्तु अनुमान पाँच हजार जातियों का है । इस सिलसिले में भारतीय मानक विज्ञान सर्वेक्षण 1985-90 के द्वारा पूरे देश में 4383 जातियों की सूची बनायी गई है । इस सूची में 443 अनुसूचित जातियों (जो पहले अछूत थे) 426 जनजातियों (आदिवासी) और 1051 पिछड़े वर्गो (जो सामाजिक रूप से अछूतों से श्रेष्ठ एवं स्वर्णों से निम्न माने जाते थे) है । स्वर्ण जातियों जिन्हे "द्विज" भी कहा जाता है, की संख्या कम है । हिन्दू समाज, स्वर्ण, पिछड़ी अनुसूचित जाति (हरिजन) अनुसूचित जन जाति (आदिवासी) के नाम से जातिय समूहों में विभाजित है । अब इनका ध्रुवीकरण हो रहा है एवं बेहतर संगठन बन रहे है ।

8.3 ब्रिटिश शासन और आरक्षण

ब्रिटिश सरकार के द्वारा पूरे देश में समान कानून और न्यायतन्त्र लागू किया गया । पूर्व प्रचलित सामाजिक और न्यायिक असमानताओं, जिनमें विभिन्न जातियों के बीच भेद पैदा किया गया था, को समाप्त करके न्यायसंगत जाति निरपेक्ष समानता स्थापित करने का प्रयास

किया गया । मनुस्मृति का न्याय विधान धीरे-धीरे लोप होने लगा । क्योंकि इसमें बाह्मण, क्षेत्रिय और वैश्य वर्ण के लोगों को महत्व दिया गया था । समाज का बहु संख्यक वर्ग शूद्र एवं अछूत माना जाता था एवं इनको शिक्षा एवं प्रशासन से अलग रखा जाता था । मनुस्मृति का विधान है कि बाह्मण चाहे कितना ही अपराध क्यों न करें राजा उसका वध नहीं करेगा । ब्राह्मण को सर्वोच्च सामाजिक स्थान दिया गया था । इस तरह का भेदभाव भारतीय लोगों के लिए समाप्त किया गया । इसके लिए कई कानून पास किए गए । इसमें कास्ट डिजेबिलिटीज रिमूवल एक्ट ऑफ 1850, दि स्पेशल मैरिज एक्ट ऑफ 1872, स्पेशल मैरिज अमेंडमेंट एक्ट ऑफ 1923, रिमूवल ऑफ दिजेविलिटीज एक्ट ऑफ 1937 महत्वपूर्ण है । इन कानूनों से कुछ हद तक सामाजिक परिवर्तन शुरू हुआ ।

ब्रिटिश शासन के दौरान प्रचलित धर्म से ओतप्रोत शिक्षा प्रणाली के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्रणाली की शुरूआत हुई । इस पर उदारवादी विचारधारा का प्रभाव था । इसके द्वारा न्याय के समक्ष सभी व्यक्तियों को समानता, राज्य के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार, इच्छानुसार पेशा चुनाव करने की आजादी, का प्रतिपादन किया गया । इन विचारों के अध्ययन से प्रभावित होकर ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज जैसे जाति विरोधी आन्दोलन शुरू हुए । इनके अतिरिक्त रानाडे और फूले, जिन्होंने 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना की, और मालाबारी कवि नर्मद और अन्य लोगों ने भी जाति व्यवस्था का जमकर विरोध किया । डॉ अम्बेडकर के नेतृत्व मे दलितों के उद्धार का आन्दोलन चला । इस आन्दोलन के उद्देश्य दलित जातियों की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारना, उन्हें शिक्षित करना और उनके लिए विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार हासिल करना था । संघर्ष के बाद उन्हें इन आन्दोलनों में सफलता भी मिली ।

डॉ. अम्बेडकर ने तीनों गोलमेज सम्मेलनों के दलितों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया । प्रथम गोलमेज सम्मेलन दिसम्बर, 1930 में उन्होंने अल्प संख्यक समिति से संविधान में दलित लोगों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की । इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने "साम्प्रदायिक परिनिर्णय" की घोषणा की । इसमें हरिजनों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया था । महात्मा गांधी के द्वारा इसके विरोध में आमरण अनशन किया गया । फलत : 1931 के "पूना समझौता" द्वारा साम्प्रदायिक परिनिर्णय को बदलवाया गया । कांग्रेस के द्वारा आरक्षण की शुरूआत हुई । सरकारी सेवाओं एवं शिक्षण संस्थानों में भी आरक्षण की शुरूआत का लम्बा इतिहास है ।

कुछ ब्रिटिश अधिकारियों ने दलितों और आदिवासियों को शोषण से मुक्ति दिलाने में उत्साह दिखाया । साथ ही भारत में व्याप्त सामाजिक विषमता को उजागर करके इसे विभाजित करने का भी प्रयास किया गया । दलितों और पिछड़ी जातियों के नेताओं ने अपनी मांगे सरकार के सामने रखी । इसके बाद कुछ कल्याणकारी कार्य शुरू हुए । लगभग सौ वर्ष से भारत में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार समाज के दलित एवं पीड़ित वर्गों के कल्याण के लिए विशेष कार्यक्रम चला रही' है । ऐसा पहला कदम मद्रास सरकार द्वारा सन् 1885 में सहायक अनुदान संहिता बनाकर उठाया गया था ताकि दलित वर्गों के विद्यार्थियों को विशेष सुविधाएं प्रदान करने हेतु शैक्षणिक संस्थाओं का वित्तीय सहायता को विनियमित किया जा सके ।

साम्राज्यवादी दौर में शिक्षा का जो विकास हुआ वह समाज के उच्च वर्गों तक सीमित रहा । इससे इन जातियों का सरकारी नौकरियों, शिक्षा तथा व्यवसायों पर प्रभुत्व हो गया । कुछ मध्यम स्तर की जातियों के लोग अपनी हीन स्थिति से दु:खी होने लगे । इन लोगों का सम्पर्क अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पश्चिमी समाज के समानता एवं न्याय के सिद्धान्त से हुआ । इन लोगों ने उच्च जाति के श्रेष्ठ सामाजिक स्तर का विरोध किया । एवं समान सामाजिक स्तर प्राप्ति करने के लिए प्रयास शुरू किया । अंग्रेजी शिक्षा एवं सरकारी सेवा को सामाजिक प्रतिष्ठा एवं प्रभुत्व का प्रमुख जरिया माना जाता था, अत इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा एवं जातियों में द्वेष बढ़ा । विभिन्न जातिय संगठन अपने जाति के विकास के लिए सरकारी संरक्षण चाहने लगे ।

तमिलनाडु (पुराना मद्रास राज्य) में पिछड़े जातियों के उत्थान के लिए काफी संघर्ष हुआ । वहां सिर्फ ब्राह्मण ही सवर्ण के रूप में माने जाते रहे है । अन्य जातियों को गैर-ब्राह्मण या शूद्र कहा जाता था। शैक्षिक क्षेत्र एवं सरकारी सेवाओं में सिर्फ इनका ही वर्चस्व था । इनकी आबादी वहां करीब 3 प्रतिशत रही है । लेकिन सरकारी सेवाओं में इनका बाहुल्य था । कई गैर-ब्राह्मण नेताओं ने अपनी जातियों को उचित प्रतिनिधित्व दिलवाने के लिए वर्तमान शताब्दी के शुरू से ही संघर्ष शुरू किए । इन्हें ब्राह्मण विरोधी कहा गया । इन लोगों ने इसका खण्डन भी किया । इनके द्वारा में प्रकाशित "जस्टिस पार्टी" के मैनिफैस्टों में "गैर-ब्राह्मणों' के साथ हो रहे भेदभाव को उजागर किया गया । गैर-ब्राह्मण नेतागण ब्रिटिश अधिकारियों से अपनी जातियों के कल्याण के लिए आरक्षण की मांग करते रहे । इस दिशा में सेल्फ रिसपेक्ट आन्दोलन जैसे जाति विरोधी आन्दोलनों ने काफी कार्य किया ।

1919 में सरकारी सेवाओं में पुराने मद्रास राज्य के समय 70 प्रतिशत ब्राह्मण कर्मचारी और अधिकारी थे । ब्राह्मणों में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या काफी थी । अत उन्हें सरकारी सेवा में लिया जाता था । जातिवादी संगठन इसे ब्राह्मणों की ऊंची सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ने लगे । वहां से प्रकाशित आन्ध्र पत्रिका, न्याय और द्रविडियन आदि पत्र-पत्रिकाएं गैर-ब्राह्मणों के विचारों को प्रकाशित करती थी । फलत: ब्राह्मण विरोधी भावना पनपी और इसके फलस्वरूप जस्टिस पार्टी का संगठन मजबूरन हुआ। 1919 के भारत अधिनियम के अनुरूप राज्यों में चुनाव कराये गये । मद्रास राज्य में 1916 में गठित "जस्टिस पार्टी" को बहुमत मिला । जस्टिस पार्टी के द्वारा 1921 में, राज्य विधान परिषद् सेवा द्वारा पारित एक संकल्प पर कार्यवाही करते हुए मद्रास सरकार ने सरकारी सेवाओं से गैर-ब्राह्मणों को अधिकतम प्रतिनिधित्व देने के लिए कदम उठाए । 1927 में इस योजना की पुनर्रचना की गई और आरक्षण क्षेत्र का और विस्तार किया गया और राज्य की सभी जातियों को पांच वृहद् वर्गों में विभाजित करके प्रत्येक वर्ग का पृथक कोटा निर्धारित कर दिया गया ।

सन् 1928 में बम्बई सरकार ने पिछड़े वर्गों का पता लगाने तथा उनकी प्रगति के लिए विशेष प्रावधानों की सिफारिश करने के लिए मि. ओ. एच. बी. स्टाटे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया । 1930 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इस समिति ने पिछड़े वर्ग को तीन वर्गों में अर्थात् "दलित वर्ग", "आदिवासी तथा पर्वतीय जनजाति" तथा अन्य "पिछड़े वर्गों" में

वर्गीकृत किया । इस समिति ने पिछड़े वर्ग के उपर्युक्त तीनो वर्गों के लिए शिक्षा तथा सरकारी सेवाओं में विशेष सुविधाएं देने के लिए, प्रावधान करने की सिफारिश की ।

अखिल भारतीय स्तर पर "दलित वर्ग" के कल्याण के लिए प्रथम व्यवस्थित प्रयास का सूत्रपात 1919 के मंटिग्यू चेम्सफोर्ड रिफार्मस द्वारा किया गया और इन वर्गों को अनेक सरकारी निकायों में प्रथम प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया । उस समय सरकारी भाषा में "दलित वर्ग " सर्वग्राही शब्द था । जिसमें "अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्ग" शामिल थे। भारत की 1931 की जनगणना में "दलित वर्ग" वाक्यांश को "ब्रह्मजातियों में परिवर्तित कर दिया गया, जिसमें केवल अस्पृश्य जातियां ली गई थी । आदिवासी तथा पर्वतीय जनजातियों को "आदिम जनजातियों" के अन्तर्गत रखा गया ।

दलित वर्गो के अलावा समाज के बहुत ही पिछड़े वर्ग की एक अन्य श्रेणी "आपराधिक जनजाति" के नाम से थी । उन्हें आपराधिक जनजाति अधिनियम, 1871 के अन्तर्गत अधिसूचित किया गया था उनके पुनर्वास के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये ।

डा. अम्बेडकर द्वारा "हरिजन" शब्द के विरोध से अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग शुरू हुआ । भारतीय अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत "दलित वर्ग" के स्थान पर "अनुसूचित जाति" नाम दिया गया और 1936 में विभिन्न प्रान्तों में अनुसूचित जातियाँ की पृथक सूचियां अधिसूचित की गई । इसके साथ ही "आदिम जनजाति" के स्थान पर "पिछड़ी जनजाति" का नाम दिया गया और उनकी सूचियां उन प्रान्तों में जहां इन जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व था, अधिसूचित की गई। केवल स्वतंत्रता के पश्चात् ही संविधान में "पिछड़ी जनजाति" के लिए "अनुसूचित जनजाति " शब्द का प्रयोग किया गया था ।

भारतीय अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को संघीय विधान पालिकाओं तथा प्रान्तीय संविधान सभाओं में राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया । इसके लिए सहमति महात्मा गांधी और अम्बेडकर के बीच 1932 की पूना संधि में हुई ।

सरकारी सेवाओं में दलित वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देने का प्रथम प्रयास उस समय किया गया था जब भारत सरकार ने जुलाई, 1934 में अनुदेश जारी किए कि इन वर्गों के योग्य उम्मीदवार केवल नियुक्ति के समुचित अवसर से इसलिए वंचित न किए जाएं कि वे खुली प्रतियोगिता में सफल नहीं हो सकते । तथापि, उनके लिए रिक्तियों का कोई निश्चित प्रतिशत निर्धारित नहीं किया गया था । केवल 1943 में अनुसूचित जातियों के लिए रिक्तियों का 8-1/3 प्रतिशत आरक्षण करते हुए आदेश जारी किए गए थे । जून, 1946 में, यह आरक्षण $12_{1/2}$ प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया ताकि इसे अनुसूचितयों की जनसंख्या के अनुरूप रखा जा सके । परन्तु पिछड़ी जनजातियों के लिए कोई आरक्षण नहीं किया गया था । क्योंकि उनका मौजूदा शिक्षा का स्तर उन्हें पर्याप्त संख्या में सरकारी सेवाओं में लिए जाने के लिए बहुत कम था । उनको शिक्षित करने के लिए प्रयास शुरू किए गये ।

8.4 संविधान और आरक्षण

भारतीय संविधान के निर्माता इस बात से आश्वस्त थे कि भारतीय समाज में सैकड़ों वर्षों से सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और तरह-तरह की विषमताओं से जातियों एवं जनजातियों को प्रगति के अवसर' नहीं मिले । उनका अनेक प्रकार से शोषण किया जाता रहा । इन शोषणों के परिणामस्वरूप ही सवर्ण जातियों के द्वारा सामाजिक भेदभाव, अस्पृश्यता, निम्न कोटि के जातिगत बैरों, उनके आर्थिक शोषण और राजनीतिक सहभागिता के अभाव ने उनके लिए आरक्षण का प्रावधान करने को प्रेरित किया । अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों को संविधान को एवं; अनुसूची में शामिल करके देश को कुल आबादी में उनका प्रतिशत के अनुसार आरक्षण का प्रावधान किया गया । बाद में इन वर्गों के हितों को देखते हुए कई संवैधानिक संशोधन भी किए गये । आज इन्हें व्यवस्थापिका, तकनीकी शिक्षा और सरकारी एवं गैर-सरकारी सेवाओं में आरक्षण मिलता है ।

भारत में आरक्षण नीति पर राज्य सरकार और न्यायपालिका के बीच बराबर कानून संघर्ष चलता रहा है । न्यायपालिका के द्वारा व्यक्ति के समानता के अधिकार को महत्व दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप आरक्षण नीति से जाति के आधार पर कुछ लोगों को विशेष सुविधा दी जाती है, इसे न्यायपालिका असंवैधानिक करार देती है। भारतीय संविधान में प्रथम संशोधन जातिगत आधार पर मद्रास सरकार के आरक्षण को उच्चतम न्यायालय द्वारा अवैध करार देने पर (चम्पाकम दोरायराजन बनाम मद्रास राजा,1951) में किया गया था। इस संशोधन के द्वारा संविधान में कमजोर वर्गो के लोगों के लिए किये गये आरक्षण को समानता के सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं माना गया। इसके बाद अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए व्यवस्थापिका के क्षेत्र में दस वर्षो के लिए आरक्षण का प्रावधान मूल संविधान में किया गया। उसे 8वां (1959), 23वां (1960), 45वां (1980) और 67वां (1989) संशोधन के द्वारा 2000ई. तक कर दिया गया। इसके लिए अनुच्छेद 330, 332 और 334 में बराबर संशोधन किया गया है। सरकारी सेवा एवं संशोधन के क्षेत्र में जो आरक्षण का प्रावधान है उसके लिए कोई समय सीमा नहीं है। संविधान में अनुच्छेद 15 (4), 16(4), 17(5), 19(5)' 23, 25, 29, 164, 244, 275, 330,332,334,335, 338, 339, 340, 341 और 342 में हरिजन, आदिवासी और पिछड़े वर्गो के कल्याण के लिए प्रावधान है। इन प्रावधानों के द्वारा उन्हें भारत सरकार और राज्य सरकारों के द्वारा विशेष सुविधा प्रदान की जाती है।

संविधान के अनुच्छेद 46 में उल्लेखित निर्देशक सिद्धान्तों में निम्नलिखित व्यवस्था है "राज्य, समाज के कमजोर वर्गो और विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष सावधानी पूर्वक प्रोत्साहित करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।"

8.5 अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षण

भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(1) और 16(2) में यह कल्पना की गई है कि राज्य के अधीन नौकरियों पर नियुक्ति के संबंध में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता

होगी और किसी नागरिक के लिए धर्म, लिंग, जाति इत्यादि के आधार पर राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न तो अपात्रता होगी और न कोई भेद किया जाएगा। फिर भी संविधान के निर्माताओं ने, कमजोर वर्गो अर्थात् अनुसूचित जातियों और जनजातियों को जिन्हें शताब्दियों से अधिकार और मानव गरिमा से वंचित रखा गया था, प्रशासन में उचित हिस्सा देने की दृष्टि से संविधान में विशेष प्रबन्ध करना उचित समझा। इस तरह अनुच्छेद 16(4) में यह व्यवस्था की गई है कि "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य के पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।" इसी तरह संविधान के अनुच्छेद 335 में यह कहा गया है कि "संघ या राज्य के कार्यों से सम्बन्धित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने मैं प्रशासन कार्य पटुता बनाए रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों पर ध्यान रखा जाएगा।" इस स्पष्ट उपबन्ध के अनुसरण में भारत सरकार तथा विभिन्न राज्यों की सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनो ने अपने-अपने नियन्त्रण के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के लिए आरक्षणों की व्यवस्था की है ।

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) के आदेश द्वारा 13 सितम्बर, 1950 से सेवाओं में आरक्षण करने की शुरूआत की गई । इस संकल्प में भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) की व्यवस्था के अनुसरण में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सेवाओं में आरक्षण की सम्पूर्ण नीति निर्धारित की गई । इस संकल्प के अनुसार खुली प्रतियोगिता द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर भर्ती द्वारा भरी जाने वाली $12_{1/2}$ प्रतिशत रिक्तिया अनुसूचित जातियों के सदस्यों के लिए अलग रखी गई जबकि खुली प्रतियोगिता के अलावा अन्य प्रकार से की जाने वाली भर्ती के मामले में 16-2/3 प्रतिशत रिक्तिया अनुसूचित जनजातियों के लिए । दोनों ही प्रकार के अर्थात् खुली प्रतियोगिता से भिन्न अन्य प्रकार से की जाने वाली भर्ती के मामले में 5 प्रतिशत रिक्तियां आरक्षित की गई । 1961 में हुई जनगणना से ज्ञात हुई इन समुदायों की जनसंख्या के आधार पर भारत सरकार ने दिनांक मार्च, 1970 से आरक्षणों के इन प्रतिशतों मे वृद्धि की । इसके अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण के लिए अखिल भारतीय सेवाओं के लिए क्रमश: 15 एवं 7.5 प्रतिशत आरक्षण खुली प्रतियोगिताओं में है । लगभग इतना ही पदोन्नति में दिया जाता है । राज्य सरकार द्वारा भी इन्हें आबादी के प्रतिशत के बराबर आरक्षण दिया जाता है । यह प्रत्येक राज्यों में अलग-अलग है ।

1968 में अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण का जो प्रतिशत बढ़ाया गया था, वह मूलत: राजनीतिक दबाव के कारण हुआ । जून, 1965 मैं भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति की सूची में परिवर्तन के लिए एक समिति नियुक्त की गयी थी । इसके अध्यक्ष तत्कालीन भारत सरकार के विधि मंत्रालय के सचिव वी. एन. लोकुर थे । समिति ने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1965 में सौंप दी । कमेटी ने इन समुदायों में कुछ जातियों को उन्नत पाया और इन्हें सूची से अलग करने की सिफारिश भी की । इनमें 14 अनुसूचित जाति और

28 जनजाति को अलग करने को कहा गया । इनमें कुछ जातियां तो आबादी के दृष्टिकोण से काफी बड़ी थी । इनमें चमार (बिहार, उत्तरप्रदेश, पंजाब), जाहव (मध्यप्रदेश), धोबी (पं. बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश) (महार) महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश (मालास) आन्ध्र प्रदेश), नामशुद्रा और राजवंशी (पं. बंगाल) के थे ।

इस रिपोर्ट पर काफी तीव्र प्रतिक्रिया अनुसूचित जाति और जनजाति के राजनीतिज्ञ एवं नेताओं के द्वारा उठायी गयी । संसद में विधि मंत्री की काफी झड़पें अनुसूचित जाति के सांसदों के साथ हुई। तब जाकर विधि मंत्री को कहना पड़ा कि किसी जाति को आरक्षण के लाभ से वंचित नहीं किया जाएगा । 1967 का आम चुनाव निकट था अंत राजनेता महत्वपूर्ण हरिजन एवं आदिवासी समाज को आरक्षण के लाभ से वंचित करके अपने चुनावी नतीजे को प्रभावित नहीं करना चाहते थे । लोकुर समिति की रिपोर्ट के बाद 1961 की आबादी के अनुपात में आरक्षण का कोटा बढ़ाने के लिए 1968 में जाकर आरक्षण कोटा में वृद्धि की गई ।

8.6 अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण

संविधान सभा मैं अन्य पिछड़े वर्ग के नेतागण अपने समुदाय के लिए भी आरक्षण की मांग कर रहे थे । लेकिन अन्य पिछड़े वर्गों के राजनीतिक रूप से जागरूक होने और आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण उन्हें केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण का लाभ नहीं दिया गया । केन्द्र सरकार के द्वारा राज्य सरकारों को यह निर्देश दिया गया कि यदि वह चाहे तो अपने स्तर पर इन जातियों की पहचान करके आरक्षण प्रदान करें । दक्षिण भारत के राज्यों में इन्हें शैक्षिक क्षेत्र एवं सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया । इन्हें व्यवस्थापिका में आरक्षण नहीं दिया जाता है । पिछड़ी जाति के नेताओं के द्वारा भारत सरकार पर दबाव डाला गया कि उन्हें भी अनुसूचित जाति और जनजाति की तरह नौकरियों में आरक्षण दिया जाए । भारत सरकार तत्काल कुछ निर्णय लेने की स्थिति में नही थी ।

8.7 काका कालेलकर आयोग

संविधान के अनुच्छेद 340 के अधीन 20 जनवरी, 1953 को प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग, काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित किया गया । संविधान के अनुच्छेद 340 में उल्लेखित है कि: (1) राष्ट्रपति भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं का और जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे है, उनके अन्वेषण के लिए और इन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किए जाने ' चाहिए, उनके बारे में और प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान दिए जाने चाहिए और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान दिए जाने चाहिए उनके बारे में सिफारिश करने के लिए आदेश द्वारा एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जिन्हें वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी ।

इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किए जायेंगे और जिसमें ऐसी सिफारिशें की जायेंगी जिन्हें आयोग उचित समझे ।

राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति उस पर की गई कार्यवाई को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायी जाएगी । भारत सरकार के द्वारा 20 जनवरी, 1950 को काका साहब कालेलकर की अध्यक्षता में प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया । आयोग ने सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए पूरे देश का दौरा किया । राज्य सरकारों एवं जन-साधारण से 182 प्रश्नों की प्रश्नावली के द्वारा विचार एवं तथ्य ज्ञात किया । निम्नलिखित मापदण्ड के आधार पर पिछड़े वर्गों की पहचान की गई ।

1. हिन्दू समाज की पारम्परिक जाति व्यवस्था में निम्न सामाजिक स्थिति ।
2. जाति तथा समुदाय के बड़े वर्ग में सामान्य शैक्षिक विकास की कमी ।
3. सरकारी सेवा में अपर्याप्त अथवा कोई प्रतिनिधित्व न होना ।
4. व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग के क्षेत्र में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व ।

आयोग के द्वारा पूरे देश का भ्रमण किया गया । एकत्रित सामग्री के विश्लेषण के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग की सूची एवं रिपोर्ट को तैयार किया गया । आयोग अपनी अनुशंसा पर एकमत नहीं हो पाया । आयोग के अध्यक्ष काका साहब का मत भी अनुशंसा के अनुरूप नहीं था । एक तरफ तो उन्होंने जातिगत आधार पर आरक्षण! की अनुशंसा की दूसरी तरफ जाति-आधारित आरक्षण को समाज के विकास एवं एकता में बाधक बताया ।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1955 में राष्ट्रपति को सौंप दी । पिछड़ा वर्ग के रूप में 2399 जातियों की सूची तैयार की गयी और 837 को सर्वाधिक पिछड़ा वर्ग के रुप में सूचीबद्ध किया और इनके लिए प्रथम प्रणी सेवा में 25 प्रतिशत, श्रेणी द्वितीय मे 33 प्रतिशत और तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी में 40 प्रतिशत आरक्षण करने की सिफारिश की गई । शैक्षिक क्षेत्र में खासकर तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थाओं में 70 प्रतिशत आरक्षण और आर्थिक सहायता देने के लिए भी आयोग ने अनुशंसा की । लेकिन भारत सरकार ने आयोग की रिपोर्ट संसद में भी नहीं रखी और न कोई कार्यवाही की । राज्य सरकारों को इस दिशा में प्रयास करने को कहा गया । जनता पार्टी ने 1977 के चुनाव में मतदाताओं से यह वादा किया था कि वह कालेलकर कमीशन की सिफारिश को लागू करेंगे, लेकिन सरकार बनाने के बाद नये रूप से जाँच के लिए वी. पी. मंडल की अध्यक्षता में 20 दिसम्बर, 1978 को दूसरे पिछड़े वर्ग आयोग का गठन कर दिया ।

8.8 मण्डल आयोग

मण्डल आयोग के विचारार्थ विषय निम्नलिखित थे :-

1. सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को परिभाषित करने के लिए मापदंड निर्धारित करना ।
2. इस प्रकार परिभाषित नागरिकों के सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गो की प्रगति के लिए किये जाने वाले उपायों की सिफारिश करना ।

3. नागरिकों के उन पिछड़े वर्गो के लिए जिनका संघ या किसी भी राज्य की सेवाओं और पदों में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं है, उनके लिए नियुक्तियों या पदों में आरक्षण की व्यवस्था करने की वांछनीयता या अन्यथा की जाँच करना।

आयोग द्वारा पूरे देश से सामाजिक सूचनाएं एकत्रित की गयी । इसके लिए आयोग के द्वारा देश के प्रत्येक जिले के दो ग्रामों और एक शहरी ब्लॉक के शतप्रतिशत क्षेत्र से चार तालिकाओं (1) परिवार तालिका, ग्रामीण (2) परिवार तालिका, शहरी (3) ग्राम तालिका (4) नगरपालिका तालिका, की मदद से सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक पिछड़ेपन के सूचकों के आंकड़े एकत्र किये। आयोग ने निम्नलिखित सूचकों का उपयोग किया ।

आयोग के द्वारा हिन्दू जातियों और गैर-हिन्दू धर्म के मध्य पिछड़े वर्ग की सूचियों को तैयार करने में अलग-अलग साधनों को अपनाया । हिन्दू जातियों के मध्य पिछड़े वर्ग की पहचान के लिए निम्नलिखित साधनों को अपनाया गया :

1. सामाजिक - शैक्षिक क्षेत्र सर्वेक्षण
2. 1961 की जनगणना रिपोर्ट
3. देश का व्यापक दौरा
4. विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अधिसूचित अन्य पिछड़े वर्गो की सूचियां ।

जाति, केवल हिन्दू धर्म की एक विशिष्ट विशेषता है । अत : गैर-हिन्दू, अन्य पिछड़े वर्ग की पहचान कठिन है । क्योंकि उनके मध्य की विभिन्न श्रेणियों में जाति प्रथा की व्यापकता व्याप्त है, पर धर्म समानतावादी है । अत: आयोग ने गैर-हिन्दू अन्य पिछड़े वर्ग की पहचान के लिए निम्नलिखित मापदण्ड अपनाया:

1. किसी गैर-हिन्दू धर्म में परिवर्तित सभी अछूत ।
2. ऐसे व्यवसायी समुदाय जो अपने परम्परागत और वंशागत व्यवसायों के नाम से जाने जाते है और जिनके हिन्दू प्रतिरूप हिन्दुओं के अन्य पिछड़े वर्गो की सूची में शामिल कर लिए गए है (उदाहरणार्थ - धोबी, तेली, नाई, गूजर, कुम्हार, लौहार आदि) ।

मण्डल आयोग के द्वारा जाति को अन्य पिछड़े वर्गों की पहचान में अधिक महत्व दिया गया । आयोग अपने सर्वेक्षण के आधार पर 3943 जातियों को अन्य पिछड़े वर्ग (ओ. बी. सी.) माना । आयोग की रिपोर्ट 31 दिसम्बर, 1980 को भारत के राष्ट्रपति को दी गयी । आयोग के आँकड़ों के अनुसार अन्य पिछड़ा वर्ग का प्रतिनिधित्व श्रेणी 1 और श्रेणी 2 और श्रेणी 3 एवं श्रेणी 4 में केन्द्र सरकार की सभी सेवाओं में क्रमश : मात्र 4.69, 10.63 और 19.98 प्रतिशत है । उनकी आबादी देश की कुल आबादी का 52 प्रतिशत आँकी गई है । परन्तु उनका सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व अनुसूचित जाति और जनजातियों से भी कम है । अनुसूचित जाति और जनजातियों का प्रतिनिधित्व आजादी के बाद आरक्षण से बढ़ा है । परन्तु अन्य पिछड़े वर्ग इससे वंचित रहे । खुली प्रतियोगिता में इनका मुकाबला सामान्य श्रेणी के प्रतिभाशाली छात्रों से हुआ । फलत : इन जातियों का चयन कम हुआ । अत : मंडल आयोग ने इन जातियों के लिए सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी सेवाओं में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की । यह आरक्षण केन्द्र सरकार की सभी सरकारी सेवाओं, तकनीकी और व्यावसायिक संस्थाओं पर लागू होता ।

इसके अतिरिक्त आयोग ने आर्थिक विकास के लिए वित्तीय तथा तकनीकी सहायताओं की भी सिफारिश की । लेकिन आयोग का सिफारिशों पर पिछले दस वर्षों में कोई कार्यवाई नहीं की गयी ।

8.9 राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की नीति

राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने अगस्त 7,1990 को सिर्फ केन्द्र सरकार की सेवाओं में आयोग की सिफारिश के अनुसार 27 प्रतिशत पद सामाजिक एवं शैक्षिणक रूप से पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षित किए । 13 अगस्त, 1990 को सरकारी आदेश से मण्डल आयोग द्वारा तैयार की गई अन्य पिछड़े वर्गो की सूची को पूर्णत: स्वीकार नहीं किया गया । राज्य सरकार के द्वारा तैयार की गई ओ. बी. सी. की सूची। और मंडल आयोग की सूची (दोनों सूचियों) में जिन जातियों के नाम है उन्हें ही इस आरक्षण का लाभ दिया गया ।

भारत सरकार के आदेश में कहा गया कि मंडल आयोग का कहना है कि सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों को सुविधाएं देने के बारे में वर्तमान सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए सरकार ने आयोग की रिपोर्ट तथा इसकी सिफारिशों पर सावधानी पूर्वक विचार किया है तथा उसका स्पष्ट मत है कि प्रारम्भ में ऐसे वर्गो को केन्द्रीय तथा उनकी सार्वजनिक उपक्रमों की सेवाओं में महत्व दिया जाना अपेक्षित है । तदनुसार, निम्न प्रकार आदेश जारी किए जाते है :-

1. भारत सरकार के अधीन सिविल पदों तथा सेवाओं में 27 प्रतिशत रिक्तियाँ सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित होंगी ।
2. उपर्युक्त आरक्षण उन रिक्तियों पर लागू होगा जो सीधी भर्ती द्वारा भरी जाती है । आरक्षण लागू करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में विस्तृत अनुदेश अलग से जारी किए जाएंगे ।
3. सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से सम्बन्धित जो उम्मीदवार खुली प्रतियोगिता में उसी स्तर के आधार पर भर्ती किये जाते है जो सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए नियम है, तो ये रिक्तियाँ 27 प्रतिशत के आरक्षित कोटे में समायोजित नही की जाएगी ।
4. पहले चरण में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो में केवल वे जातियां तथा समुदाय शामिल किये जाएंगे जो मण्डल आयोग की रिपोर्ट में दी गई सूची में तथा राज्य सरकारों की सूचियों दोनों में ही शामिल है । ऐसी जातियों/समुदायों की एक सूची अलग से जारी की जा रही है।
5. उपर्युक्त आरक्षण 7. 8. 90 से लागू होगा । किन्तु यह उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां इन आदेशों के जारी किए जाने से पहले ही भर्ती प्रक्रिया आरम्भ की जा चुकी है ।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों तथा वित्तीय संस्थाओं, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भी शामिल है, के बारे में इसी प्रकार के अनुदेश क्रमश: लोक कम विभाग तथा वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किए जाएंगे।

केन्द्रीय सेवाओं में अनुसूचित जाति और जनजातियों के क्रमश: 15 और 7.5 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है। यदि अगस्त 1990 के सरकार के आदेश से ओ. बी. सी. को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया जाता तो 49.5 प्रतिशत पद आरक्षित हो जाते। भारत के 13 राज्यों में भी इन्हें

आरक्षण दिया जाना हैं । कुछ राज्यों आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि में 70 के प्रतिशत पद आरक्षित है । अग्रेषित सारणी में भारत के विभिन्न राज्यों में आरक्षित पदों के प्रतिशत को दर्शाया गया है :

सारणी - प्रथम

भारत में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षण का %1991

क्रम संख्या	राज्य	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	ओ. बी. सी.	आरक्षित पदों का प्रतिशत
1.	आन्ध्र प्रदेश	15	6	44	65
2.	बिहार	18	10	24	52
3.	जम्मू-कश्मीर	8	5	42	55
4.	कर्नाटक	15	3	50	68
5.	केरल	8	2	40	50
6.	मध्यप्रदेश,	15	18	29	62
7.	महाराष्ट्र	13	7	14	34
8.	पंजाब	25	5	5	35
9.	उत्तरप्रदेश	18	2	15	35
10.	तमिलनाडु	18	-	50	68
11.	हरियाणा	20	-	48	68
12.	हिमाचल प्रदेश	15	7-1/2	5	27-1/2
13.	असम	7	12	15	34
14.	गुजरात	7	14	10	31
15.	मणिपुर	15	7-1/2	-	22-1/2
16.	मेघालय	58	40	-	98
17.	नागालैण्ड	-	45	-	45
18.	उड़ीसा	16	24	-	40
19.	सिक्किम	-	-	-	-
20.	राजस्थान	16	12	-	28
21.	त्रिपुरा	13	29	-	42
22.	बंगाल	15	5	-	20
23.	अरुणाचल प्रदेश	-	45	-	45
24.	गोआ	2	5	-	7
25.	मिजोरम	-	-	-	-
26.	अंडमान एवं निकोबार	-	16	-	16

27.	पांडिचेरी	16	5	-	21
28.	दमन और द्वीव	2	5	-	7
29.	लक्ष्य द्वीप	-	15	-	15
30.	भारत सरकार	15	7-$_{1/2}$	-	22-$_{1/2}$

(स्त्रोत: विभिन्न आयोगों की रिपोर्ट पर आधारित) ।

अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण करने की घोषणा से उत्तर भारत में जातिय संघर्ष शुरू हो गया। जन-जीवन ठप्प सा हो गया। शिक्षण संस्थाएं करीब 3 महीने बंद रही। सैकड़ों लोग मारे गये और अरबों की सम्पत्ति को नुकसान पहुंचा। सर्वोच्च न्यायालय के 01 नवम्बर, 1990 के समाधान आदेश और विश्वनाथ प्रताप सिंह की जनता दल सरकार के पतन के बाद यह आन्दोलन रूका। वर्तमान में मण्डल आयोग का मामला सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन है। केन्द्र सरकार में नया शासक दल कांग्रेस (इ) आर्थिक आधार को शामिल करने के पक्ष में है पर सरकार अपनी नीति न्यायालय के सामने पूर्णत स्पष्ट नही कर पाई है।

साम्यवादी दलों और भारतीय जनता पार्टी भी अन्य पिछड़े वर्गो के धनिक लोगों को इस लाभ से वंचित रखना चाहती है। आरक्षण विरोधियों का एक तबका जातिगत आधार पर आरक्षण का विरोध करता है तो दूसरा तबका आर्थिक आधार की बात करता है। कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नही है। आरक्षण का विरोध न्यायालय में मुकदमा दायर करके और अशान्ति फैला करके भी किया जाता है। प्राय: दक्षिणी राज्यों में आरक्षण विरोधी लोगों ने न्यायालय की शरण ली और उत्तर भारत में हिंसा एवं उत्पात मचाया। लेकिन आरक्षण का वास्तविक एवं सफल विरोध न्यायालय में किया गया एवं समय-समय पर इसे अवैध करार दिया गया।

8.10 न्यायपालिका और आरक्षण

सामाजिक पिछड़ेपन के सम्बन्ध में न्यायालय संविधान के 16(4) में उल्लेखित "पिछड़ेपन" को "नागरिकों का वर्ग" स्वीकारती है न कि "नागरिकों की जातियों" को। हिन्दू सामाजिक ढांचे में जाति नागरिक की हैसियत निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । अत: नागरिकों के एक वर्ग को जाति के आधार पर सामाजिक रूप से पिछड़ा निर्धारित जाना है । बालाजी बनाम कर्नाटक सरकार मुकदमा (ए. आई. आर.,1963 सुप्रीम कोर्ट-649) में कहा गया है कि "दुर्भाग्यवश जाति नागरिकों के स्तर को निश्चित करने में एक बड़ी भूमिका अदा करती है। इसलिए इस प्रश्न को सुलझाने में कि कोई एक वर्ग सामाजिक रूप से पिछड़ा है या नहीं यज्ञ अप्रासंगिक नहीं होगा कि उन नागरिकों के ग्रुप की जाति पर भी विचार किया जाये।" जाति का महत्व है, परन्तु उसकी महत्ता को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखा जाना चाहिए।

एम.एम. राजेन्द्रन बनाम तमिलनाडु सरकार (ए. आई. आर., 1968 सुप्रीम कोर्ट-1212) के द्वारा तमिलनाडु सरकार के जातिगत आधार पर आरक्षण को अवैध करार दिया गया। न्यायालय ने कहा "अगर आरक्षण केवल जातियों के आधार पर ही दिया जाता है, और सामाजिक तथा आर्थिक पिछड़ापन को नहीं देखा जाता तो यह धारा 1 (1) का उल्लंघन होगा।"

त्रिलोकीनाथ टिस्कू बनाम जम्मू कश्मीर सरकार के मामले में (ए.आई.आर.,1969 सुप्रीम कोर्ट-I) में कोर्ट ने कहा कि "जाति या समुदाय के सभी सदस्य बेशक एक समय सामाजिक, आर्थिक या शैक्षिक मान्यताओं की श्रेणी में पिछड़े हों और उस आधार पर उन्हें पिछड़ा वर्ग करार कर दिया जाए, परन्तु यह इसलिए नहीं वे एक जाति या समुदाय के सदस्य है, परन्तु इसलिए कि वे एक वर्ग के है।"

पेरियाकेरूपनी के मामले में (ए.आई.आर., 1971 सुप्रीम कोर्ट-2303) सुप्रीम कोर्ट ने जातिगत आधार को स्वीकार करते हुए कहा कि "इस देश में बहुतसी जातियां है। जो सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी है। उनकी उपस्थिति की अवहेलना करना सच्चाई की अवहेलना करना है।" इसके विपरीत थामस के मामले में (ए. आई. आर., 1975 सुप्रीम कोर्ट-563) एक न्यायाधीश ने कहा "सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग जाति पर आधारित ग्रुप से अलग है। लेकिन जाति को एक महत्वपूर्ण कारक स्वीकारा गया।"

न्यायालय जाति के स्थान पर कोई अन्य सर्वमान्य कारक नहीं सुझाता। बालाजी के मामले में धन्धा (आकुपेशन) को कारक मानने का सुझाव दिया गया। त्रिलोकी नाथ के मामले में न्यायालय ने सरकारी सेवाओं में कम प्रतिनिधित्व को निर्णायक कारक नहीं माना। जानकी प्रसाद के मामले में सुप्रीम कोर्ट मात्र गरीबी और जमीन के आधार को पिछड़ापन का कारक नहीं मानता। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप टंडन वाले मामले में सुप्रीम कोर्ट ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी को पिछड़ापन का आधार नहीं माना परन्तु पहाड़ी क्षेत्रों को स्वीकार किया गया। अतः पिछड़ेपन निर्धारित करने का निश्चित मापदण्ड नहीं है।

कर्नाटक सरकार ने 1985 में सुप्रीम कोर्ट से भविष्य के लिए पिछड़ेपन निर्धारित करने के कारण निर्धारित करने का आग्रह किया था। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। सम्भवत: मण्डल आयोग सम्बन्धी मामलों पर विचार करते हुए न्यायालय कोई निश्चित सुझाव दे। आरक्षण के विरोध में सवर्ण जाति के लोग जातीय आधार पर संगठित होकर इसका विरोध करते है एवं जातिवाद को बढ़ावा दे रहे है। इससे जातीय संघर्ष बढ़ा है। इससे बिहार (1978) गुजरात (1985) और पूरे देश (1990) में आरक्षण विरोधी आन्दोलन हुआ। आरक्षण समर्थक भी एकजुट हो रहे है।

8.11 आरक्षण का समर्थन एवं विरोध

सवर्णो के द्वारा आरक्षण नीति के विरोध में जितने भी हुए है, उससे पिछड़ेवर्गों के मन में यह बात बैठ गई है कि उन्हें सरकार से विशेष सुविधा प्राप्त करते रहने के लिए एकजुट होना पड़ेगा । इस प्रक्रिया में कई वृहतर जातिय संगठन बने जैसे पिछड़ावर्ग, हरिजन, आदिवासी महासंघ; गुजरात का पिछड़ावर्ग, हरिजन, आदिवासी, मुस्लिम और क्षत्रियों का संघ (भाअम); इन जातिय संगठनों द्वारा सरकार पर जातिगत आधार पर आरक्षण जारी रखने के लिए दबाव डाला जाता है। अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ेवर्गो के लोगों द्वारा भी आरक्षण के समर्थन में प्रदर्शन किये गये है और किये जाते रहे है । फलत आरक्षण समर्थक और विरोधी में टकराव बढ़ा है । इससे सामाजिक तनाव एवं हिंसा को बढ़ावा मिला है ।

पिछले कुछ वर्षों में जाति आधारित आरक्षण को आरक्षण विरोधियों द्वारा चुनौती दी गई है । उनका तर्क है कि अब जाति व्यवस्था टूट रही है और सभी जातियों में गरीब है, अत: गरीबी के आधार पर आरक्षण का लाभ दिया जाए । लेकिन उन लोगों ने इस बात को नकारा है कि गरीब सवर्ण को शुरू से अच्छा संस्कार,........ माहौल और जातिय लोगों का सहयोग मिलता है । इसका अभाव कमजोर वर्ग के लोगों में देखा गया है । अत: जातिगत आरक्षण को आर्थिक आधार देकर सामाजिक न्याय स्थापित नहीं किया जा सकता है । अपनी जाति के कुछ गरीबों के हितों के प्रति काफी सवर्ण बुद्धिजीवी सचेत है । उनकी आँखों में कुछ (मात्र 0.5 प्रतिशत) कमजोर वर्ग के लोग विकास के प्रतिमान बन जाते है । इस आधार पर योग्यता एवं कुशलता की समाप्ति की दुहाई देते है । लेकिन स्थिति यह है कि जब तक छुआछूत, ऊंच-नीच का भेद, सामाजिक शोषण और अत्याचार समाज नहीं होगा, जातिगत आधार पर सामाजिक रूप से पिछड़ेवर्ग के लोगों को सरकारी सेवाओं में आरक्षण का लाभ मिलेगा ।

8.12 आरक्षण का लाभ

सामाजिक रूप से पिछड़ा जातियाँ आरक्षण का भरपूर लाभ नही उठा पाई है । गत पिछले 44 वर्षों में देश के अनुसूचित जाति और जनजाति जो देश के कुल आबादी के 22.5 प्रतिशत है एवं जिन्हें 22.5 प्रतिशत आरक्षण भी प्राप्त है इसके बावजूद भी सरकारी सेवाओं में 7 प्रतिशत आ पाये । इससे स्पष्ट है कि सरकार इन्हें आरक्षण का कोटा भरने योग्य शिक्षित नहीं कर पाई है । भले ही साक्षरता की दर इनमें बढ़ी है । पर उच्च शिक्षा में उनकी संख्या नगण्य है । सिर्फ अन्य पिछड़े वर्ग जो आर्थिक रूप से सम्पन्न और राजनीतिक रूप से संगठित है, रहे हैं, जिन राज्यों में इन्हें आरक्षण प्राप्त है, आरक्षण से लाभान्वित हुए है । केन्द्रीय सेवाओं में इन्हें अब तक आरक्षण नहीं मिला है । अत इनकी संख्या केन्द्रीय सेवाओं में नगण्य ही रही है ।

8.13 आरक्षण नीति: पुनर्विचार आवश्यक

आरक्षण का लाभ सूचीबद्ध जातियों के शिक्षित और सम्पन्न वर्ग के लोग उठा गे है और इस वर्ग के अत्यन्त गरीब लोग इससे वंचित है । अत: आवश्यक है कि आयकर दाता या दो पुस्तों से आरक्षण का लाभ उठाने वालों को यह सुविधा दी जाए । साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ जातियाँ ही आरक्षण का लाभ उठा रही हैं अत विकसित जातियों को आरक्षण पाने वाली जातियों की सूची से अलग कर दिया जाए । इसके लिए राजनेताओं को आरक्षण के सभी पहलुओं पर गम्भीरता से विचार करना होगा ।

8.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नौकरियों में आरक्षण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य क्या है? स्पष्ट कीजिए ।
2. भारतीय संविधान में आरक्षण का क्या प्रावधान है? वह किस प्रकार परिचालित है? विवेचना कीजिए ।
3. भारत में अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की क्या व्यवस्था है? चर्चा कीजिए ।
4. "मण्डल आयोग और साझा सरकारी के नीति-विकल्प" विषय पर एक लेख लिखिए।

8.15 संदर्भ ग्रन्थ

1. माई: गैलेन्टर : कम्पिटींग इक्यूटी, आक्सफोर्ड, नई दिल्ली,1984
2. श्यामा नन्द सिंह : रिजर्वेशन प्राबलेम्स एण्ड प्रोस्पेक्ट, उप्पल, नई दिल्ली, 1991.
3. श्यामा नन्द सिंह : रिजर्वेशन पॉलिसी कन्सटीट्यूशनल ऑस्पेक्ट, स्टेट एण्ड सोसाइटी, जनवरी-जून, 1987.
4. श्यामा नन्द सिंह : पॉलिटिक्स ऑफ जीव रिजर्वेशन इन इण्डिया, मैनस्ट्रिम, 29 जुलाई, 1989.
5. श्यामा नन्द सिंह : रिजर्वेशन फार अदर बैकवर्ड क्लासेज, पालिटिकल साइंस रिव्यू, सितम्बर, 1990.
6. भारत सरकार : द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट (अध्यक्ष, वी.पी मंडल) नई दिल्ली, 1980.

इकाई - 9

भारत में कल्याणकारी नीतियां- स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक.सुरक्षा विशेष संदर्भ में

इकाई संरचना

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 भारत में कल्याणकारी नीतियां
9.3 स्वास्थ्य
9.4 शिक्षा
9.5 सामाजिक सुरक्षा
9.6 इकाई सारांश
9.7 अध्यास कार्य
9.8 संदर्भ ग्रंथ

9.8 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान पाएंगे कि -

1. भारत में कल्याणकारी नीतियां क्या हैं?
2. स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्या प्रयास हुए हैं?
3. शिक्षा के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई हे?
4. सामाजिक सुरक्षा हेतु क्या किया गया है?

9.1 प्रस्तावना:

भारत एक कल्याणकारी राष्ट्र के रूप में समाज के विभिन्न वर्गों के हितों की रक्षा एवं उन्नति के लिए कटिबद्ध है. हमारा संविधान भी सबको समान न्याय, समानता एवं समान अवसर का अधिकार प्रदान करता है. इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही ' जनहित ' सरकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है. इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए देश के सुनियोजित विकास मैं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्रमुखता से दी गई है ।

भारत में गरीबी उन्मूलन एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों को लगातार प्राथमिकता दी गई है । गरीबों के जीवन स्तर को सुधारने एवं निम्नतर स्तर पर संगठनात्मक प्रक्रिया को सशक्त बनाने के उद्देश्य से नई पंचायत राज व्यवस्था का सूत्रपात हुआ है । एक बहुआयामी सामाजिक सहायता योजना को बड़े पैमाने पर प्रारम्भ किया गया है । इसमें राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय पारिवारिक सहायता योजना, मातृत्व सुरक्षा योजना, ग्रामीण सामूहिक बीमा योजना, स्कूली बच्चों के लिए मध्यान्ह भोजन व्यवस्था, गृहहीनों के लिए गृह निर्माण योजना आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है । ये योजनाएं रोजगार वृद्धि की उन अन्य योजनाओं से हटकर है जो पहले से चल रही है । यथा- जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना,

सुनिश्चित रोजगार योजना, एकीकृत ग्रामीण विकास। योजना इत्यादि । भारत में कल्याणकारी नीतियों के विश्लेषण हेतु यह आवश्यक है कि कल्याणकारी नीतियों की सामान्य विवेचना प्रस्तुत करते हुए स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में जो प्रयास हुए हैं, उनकी पृथक-पृथक व्याख्या की जाए । प्रस्तुत इकाई में उप शीर्षकों के माध्यम से उक्त सभी बिंदुओं को विश्लेषित किया गया है ।

9.2 भारत में कल्याणकारी नीतियां:

भारत में सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन में लंबे शोषणकारी विदेशी शासन तथा कुछ सांस्कृतिक कारण विशेष रूप से पृष्ठभूमि में रहे हैं । जिससे देश की कल्याण आवश्यकताएं बहुत अधिक तथा गरीबी उन्मूलन का कार्य बहुत विशाल है । कल्याण कार्यक्रमों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक सभी तरह की असमर्थताओं के अनुसार कार्य करना होता है । कल्याण कार्यक्रम के अंतर्गत किए जाने वाले कार्यों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों की अलग- अलग तरह की जरूरतों को पूरा करना है, जिनकी जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 16 .48, 8.08, 52.0 एवं 16.47 है । इस प्रकार कल्याण कार्यक्रम न केवल विशाल है, बल्कि दृष्टिकोण तथा कार्यों की दृष्टि से अत्यन्त विविधतापूर्ण भी है । इन गतिविधियों में छात्रों को छात्रवृत्ति देना, सब तरह के विकलांग व्यक्तियों का उपचार तथा पुनर्वास करना, सहायता एवं राहत देने के लिए जातियों एवं समुदायों पर आधारित मामले निपटाना, उपेक्षित वर्गों की सामाजिक आर्थिक दशा सुधारने के उद्देश्य से गठित अनेक आयोगों का काम काज देखना, समाज के वंचित वर्गों की महिलाओं एवं बालिकाओं की भलाई की योजनाएं चलाना, वृद्धजनों की देखभाल करना, बेसहारा बच्चों के लिए योजनाएं चलाना, भिखारियों को मदद तथा काम धंधों का प्रशिक्षण देना, सामाजिक कानून लागू करना, नशीले पदार्थ के सेवन पर रोक लगाना तथा मद्य निषेध लागू करना, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का संचालन करना, मानसिक रूप से पीड़ित लोगों के लिए सेवाएं चलाना, विकलांग तथा वंचित लोगों के पुनर्वास तथा प्रशिक्षण के लिए अनेक संस्थानों का प्रबंध देखना और अनुदान आदि के माध्यम से इन गतिविधियों में स्वयंसेवी संगठनों का अधिक से अधिक सहयोग लेना आदि सम्मिलित है ।

कल्याण गतिविधियों की यह सूची यद्यपि अधूरी है, परन्तु इससे हमारे देश की आबादी की कल्याण संबंधी आवश्यकताओं तथा उन्हें पूरा करने के लिए सरकार द्वारा किए वाले कार्यों की व्यापकता और जटिलता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

देश की लगभग तीस प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन कर रही है। ग्रामीण तथा जनजातीय क्षेत्रों में गरीबी अत्यन्त व्यापक है ।

समाज कल्याण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । जिसमें सब तरह के प्रयासों और स्थितियों के लिए स्थान है । उसका अंतिम लक्ष्य आज भी ऐसे न्यायसंगत तथा संतुलित समाज की रचना करना है। जिसमें राष्ट्रीय विकास का लाभ प्रत्येक व्यक्ति को मिले ।

9.3 स्वास्थ्य:

व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण सम्पदा, देश के सामाजिक, आर्थिक उत्थान का एक महत्वपूर्ण तथा निर्णायक घटक और मानव जाति की एक मौलिक आवश्यकता है । समाज प्रदत्त स्वास्थ्य सेवाओं और प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है । देश में प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय स्वास्थ्य लक्ष्यों को परिभाषित किया है । भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास भोरें समिति (1946) की सिफारिशों के आधार पर किया गया है । जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को ग्रामीण स्वास्थ्य तंत्र की श्री माना गया है । भारत उन राष्ट्रों में एक है जिसने हैल्थ केयर को देश के सामाजिक - आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण अंग माना है एवं विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में स्वास्थ्य तंत्र की मजबूत नींव तैयार करने का लक्ष्य, रखा है । पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ किए गए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत स्वास्थ्य संबंधी विविध पक्षों- रोगों की रोकथाम, चिकित्सकीय शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य के ढांचागत समायोजन।, इत्यादि पर ध्यान केन्द्रित किया गया । छठी योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को अधिक सघन मनाते हु ए न्यूनतम ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया तथा एक दीर्घकालीन योजना 'सन् '2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य' बनाई गई । छठी योजना की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी- 1983 में राष्ट्रीय' स्वास्थ्य नीति की घोषणा । यह नीति अल्माटा घोषणा के परिप्रेक्ष्य में घोषित की गई थी । जिसमें 17 विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रावधान किया गया था, जिनमें प्रमुख थे- वर्तमान स्वास्थ्य तंत्र को अत्यधिक कुशल बनाने हेतु स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और विकेन्द्रीकरण करना, उपचार केन्द्रों की स्थापना करते समय भौगोलिक विशिष्टताओं, जन-घनत्व दूरी, परिवहन सुविधाओं आदि का ध्यान रखना, स्वास्थ्य सेवाओं के अनुकूलतम उपयोग को सुनिश्चित करना, बायो मेडिकल उपकरणों की मरम्मत एवं रखरखाव की प्रक्रिया विकसित करना, स्वास्थ्य संबंधी अधो:सरंचना को विकसित एवं सशक्त बनाना इत्यादि । सातवीं योजना पहली योजना की अपेक्षा ग्रामीण हैल्थ केयर पर अधिक केन्द्रित थी । जबकि आठवीं योजनाओं की प्राथमिकताओं में सशक्त आधारभूत संरचना विकसित करना, बाल तथा मातृत्व स्वास्थ्य केन्द्रों को अधिकाधिक संख्या में स्थापित करना तथा स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी को प्रोत्साहित करना आदि थे ।

पिछले पचास वर्षों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए एक विशाल तंत्र खड़ा किया गया है । पहली पंचवर्षीय योजनाओं में केन्द्र सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय का योजना खर्च 65 करोड़ रुपए था जो आठवीं योजनाओं में 100 गुना बढ़कर 6,500 करोड़ रुपए हो गया । देश के 5,75,936 गांवों और 5,000 विकास खण्डों के लिए मार्च 1994 तक 2,321 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, 21,555 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और 131, 471 उप केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है । प्रत्येक 1000 की आबादी पर एक जन स्वास्थ्य रक्षक केन्द्र, 5000 आबादी पर उप केन्द्र, 30,000 की 'आबादी पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और एक लाख की आबादी पर सामुदायिक स्वास्थ्य

केन्द्र है । इनके अंतर्गत वर्ष 1991 के आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 12,416 विशेषज्ञ चिकित्सक 21,418 सामान्य चिकित्सक, 5717 ब्लॉक एक्सटेंशन एजुकेटर, 14470 पुरुष हैल्थ असिस्टेंट, 21,233 महिला हैल्थ असिस्टेंट 64000 पुरुष बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता और 1,21,765 महिला बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता नियुक्त किए जा चुके हैं । इस विशाल तंत्र के लिए समस्त वित्तीय संसाधन भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा दिए जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में भी फैमिली वेलफेयर सेन्टर, हेल्थपोस्ट, डिस्पेंसरियां और उच्च स्तर के सरकारी अस्पतालों का जाल मौजूद है । ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में सभी को विशेष कर गरीब जनता को प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी इसी विशाल तंत्र की है ।

समाज का सर्वांगीण विकास तभी सार्थक कहा जा सकता है जब प्रत्येक गांव में नागरिकों को स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त हो, वर्तमान में देश उस स्थिति से ऊपर उठता जा रहा है । जिसमें नवजात शिशु और गर्भवती माताएं टिटनस जैसे जानलेवा रोगों की शिकार हो जाती थी । अब पोषक आहार योजनाओं, टीकाकरण एवं अन्य कार्यक्रमों जाल बिछता जा रहा है । लेकिन 1991 से नवीन आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन के कारण हेल्थ केयर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । यह नीतियां कल्याण सेवाओं पर होने वाले व्यय में शनै : शनै : कटौती करने, हेल्थ केयर में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने तथा स्वैच्छिक संगठनों को भी हेल्थ केयर की जिम्मेदारी सौंपने के पक्ष में है । हेल्थ केयर पर ढांचागत समायोजन का दुष्प्रभाव यह पड़ा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा दवाओं के मूल्य में वृद्धि कर दी गई । कल्याण क्षेत्र के निवेश में कटौती की गई, सरकारी अस्पतालों में भी शुल्क लिए जाने के कारण इनकी सेवाएं गरीबों के लिए महंगी हो गई ।

सामान्य स्वास्थ्य, स्वास्थ्य सेवाओं के तीन पक्षों- निदानात्मक, निवारक एवं प्रगतिमूलक -से संबंधित है । निदानात्मक पक्ष के अंतर्गत रोग तथा व्याधि के निदान की बात की जाती है । निवारक पक्ष के अंतर्गत उन स्वास्थ्य सेवाओं के प्रयासों का विश्लेषण किया जाता है जिनसे संक्रामक तथा परजीवी रोगों से रक्षा की जा सके । प्रगति मूलक पक्ष के अंतर्गत स्वास्थ्य को समृद्ध करने का प्रयास किया जाता है । भारत संदर्भ में जब इन स्वास्थ्य सेवाओं का मूल्यांकन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास में निवारक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया है । जिससे समाज का उच्च वर्ग भी लाभान्वित हुआ है । उपचार केन्द्र मुख्यत: पश्चिमी मॉडल पर आधारित है, जो शहरोन्मुख तथा पूंजी संघन है तथा यह मॉडल देश की वास्तविक आवश्यकताओं और सामाजिक आर्थिक स्थितियों के अनुरूप नहीं है । इसके परिणाम स्वरूप देश में दो प्रकार का स्वास्थ्य तंत्र विकसित हुआ है । ग्रामीण क्षेत्र में उपकरण विहीन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा शहरी क्षेत्रों में सुसज्जित अस्पताल, जो कुल संसाधनों का एक बड़ा भाग ले जाते हैं । स्वास्थ्य सेवाओं का संगठन भी काफी जटिल एवं केन्द्रीकृत है ।

अत: स्वास्थ्य के क्षेत्र में किए गए विविध प्रयासों के बावजूद लक्ष्य अभी भी दूर प्रतीत होता है । समाज के कमजोर वर्गों के लिए स्वास्थ्य सेवाएं सहजता से उपलब्ध नहीं है । इस दिशा में ठोस कार्य किए जाने की आज भी आवश्यकता महसूस होती है ।

9.4 शिक्षा:

समाज के कल्याण के संदर्भ में जब भी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं की चर्चा होती है तो रोटी, कपड़ा एवं मकान की तात्कालिक जरूरतों के बाद सबसे अधिक बल समाज में सबको शिक्षित बनाने और शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने पर दिया जाता है । यह सर्वमान्य तथ्य है कि यदि संपूर्ण समाज शिक्षित या कम से कम साक्षर हो जाए तो शेष बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करना और अधिक सरल हो जाएगा । इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षा के कारण समाज में जो जागृति उत्पन्न होगी उससे अन्य समस्याओं की विशालता एवं विकरालता भी कम हो जाएगी । हमारे संविधान निर्माताओं ने शिक्षा को मूल अधिकारों में सम्मिलित किया है । इसे समवर्ती सूची में रखा है, जिससे केन्द्र एवं राज्य सरकारें परस्पर पूरक होकर शिक्षा के प्रसार में योगदान कर सके । समाज में समानता एवं सामाजिक न्याय के लिए भी शिक्षा को रणनीति का महत्वपूर्ण अंग माना है ।

शिक्षा की आवश्यकता पूरी करने, संविधान के संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने के उद्देश्य से कई प्रयास हुए और पंचवर्षीय योजनाओं से इस दिशा में पर्याप्त प्रगति भी हुई । पहली ग्रे सातवीं योजनाओं की अवधि 1950- 51 से 1990- 91 के दौरान भारत में शिक्षा सुविधाओं का पर्याप्त हुआ है । इन चार दशकों में न केवल औपचारिक एवं शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा का विस्तार हुआ है । अपितु अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में भी दी जने वाली सुविधाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है ।

यह सत्य है कि आज भी हमारे देश की 45 प्रतिशत से अधिक आबादी अनपढ़ है । इसमें महिलाओं का प्रतिशत तो और भी ज्यादा है । अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जाति के संदर्भों में यह प्रतिशत और भी इसी क्रम में ज्यादा है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रयास नहीं हुए हैं । वास्तविकता यह है कि जनसंख्या वृद्धि की गति इतनी अधिक रही है कि अनुपातिक दृष्टि से हम पिछड़ गए हैं ।

1950- 51 में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या केवल 2.23 लाख थी जो अब बढ़कर 7.44 लाख हो गई है । इसी प्रकार इन विद्यालयों में अध्यापकों की संख्या मैं भी लगभग 4 गुना वृद्धि हुई है । इस अवधि में यह 6.24 से बढ़कर 28.36 लाख हो गई है। यह तथ्य कम उत्साहजनक नहीं है कि देश की 95 प्रतिशत आबादी के लिए एक किलोमीटर की दूरी में कोई न कोई प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हो गया है । इसके अतिरिक्त आपरेशन ब्लैक बोर्ड जैसे अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा की आवश्यक सुविधाओं को बेहतर बनाने के प्रयास किए जाते रहे हैं। पढ़ाई बीच में छोड़ने की प्रवृत्ति में कमी लाने के उद्देश्य से दोपहर का भोजन देने, पोशाक एवं पाठ्य सामग्री वितरण एवं अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास छात्रवृत्ति एवं कई सुविधाएं मुहैया करवाई जा रही है । स्कूली शिक्षा से वंचित रह गए बच्चों को बाद में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर देने के लिए अनौपचारिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है । अब तो अनिवार्य शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा का अंग मान लिया गया है ।

विद्यालयों एवं अध्यापकों की संख्या में वृद्धि के बावजूद शैक्षिक पिछड़ेपन को समस्या हल न होने की स्थिति को सुधारने के लिए नई शिक्षा नीति 1986 में घोषित की गई और वर्ष 1992 में संशोधित शिक्षा नीति में कई नई कार्य नीतियों का प्रावधान किया गया । इसके मुख्य पहलू इस प्रकार है-

- विद्यालय बीच में छोड़ने की -समस्या के समाधान की दृष्टि से बच्चों के प्रवेश के साथ-साथ उन्हें पढ़ाई जारी रखने को प्रोत्साहित करने पर बल देना ।
- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के घटक के रूप में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम लागू करना ।
- शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों के स्थान पर पिछड़े जिलों को इकाई मानकर उन पर विशेष ध्यान देना क्योंकि अच्छी साक्षरता दर वाले राज्यों में कुछ जिले ऐसे हैं जो बहुत पिछड़े हुए हैं ।
- पढ़ाई से वंचित रहने वाले, वर्गों विशेष लड़कियों तथा विद्यालय न जा सके वाले, बच्चों का पता लगाकर उन्हें शिक्षा के ढांचे के अंतर्गत लाना ।
- विद्यालयों की दशा में सुधार ।
- शिक्षा से जुड़ी अन्य गतिविधियां चलाना जिससे समाज तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता बढ़ाई जा सके ।
- शिक्षकों की क्षमता और कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था
- उन्नत शिक्षण विधियों तथा उपकरणों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना ।

देश की कुल साक्षरता दर से भी अधिक महत्वपूर्ण महिला साक्षरता है । कहा जाता है कि एक पुरुष के शिक्षित होने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है । लेकिन एक महिला के साक्षर होने से पूरा परिवार साक्षर होता है । महिलाओं की शिक्षा का देश के सकल विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उनकी साक्षरता देश की जनसंख्या में वृद्धि की दर, शिशु एवं बाल मृत्यु दर, विवाह की आयु जीवन आयु तथा बच्चों के भविष्य से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है । फिर भी महिला साक्षरता की स्थिति सोचनीय है ।

1991 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता की कुल दर 52.11 प्रतिशत है । इनमें शहरी पुरुषों में साक्षरता प्रतिशत 81 प्रतिशत है, 63.9 प्रतिशत शहरी महिलाएं साक्षर है । गांवों में पुरुषों की साक्षरता 57.8 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता का प्रतिशत मात्र 30.3 प्रतिशत है इन महिलाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की साक्षर महिलाओं का प्रतिशत क्रमश: 23.76 एवं 18.19 प्रतिशत है ।

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं । इसके बावजूद स्वतंत्रता के 50 वर्षों पश्चात भी शिक्षा एवं साक्षरता के क्षेत्र में चिंताजनक आंकड़े प्रस्तुत होते हैं । समाज में समानता एवं सभी वर्गों का कल्याण शिक्षा के अभाव में असंभव प्रतीत होता है । अधो: संरचनात्मक विकास के साथ समाज के सभी वर्गों में इसके प्रति सामान्य जागरूकता बढ़ने पर इस दिशा में ज्यादा उपलब्धियां प्राप्त की जा सकेगी ।

9.5 सामाजिक सुरक्षा

सामाजिक सुरक्षा एक प्रावैगिक अवधारणा है । जिसका समावेश प्रत्येक देश के राष्ट्रीय कार्यक्रम में किया गया है । जिससे कि निर्धनता, बेरोजगारी एवं बीमारी जैसे समस्याओं का समाधान किया जा सके । सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक अवधारणा है । स्वतंत्रता के पश्चात से ही समानता के लक्ष्य के साथ विकास करना देश की विकास संबंधी सभी गतिविधियों का मूल मंत्र रहा है । सामाजिक न्याय एवं समानता के इसी दृष्टिकोण ने इस देश में एक के बाद दूसरी सरकारों को परम्परागत सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों को नवीन से नवीन रूप देने को प्रेरित किया गया है । इसका उद्देश्य विभिन्न वर्गों के अधिक से अधिक लोगों को इन प्रणालियों के दायरे में लाना है । जिससे वो भी देश के विकास के लाभों में भागीदार बन सके ।

देश की कुल श्रम शक्ति का 90 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा असंगठित क्षेत्र में हैं । ये लोग कुल राष्ट्रीय आय में 60 प्रतिशत के बराबर योगदान करते हैं । इन्हें उपयुक्त सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाना बड़ा ही व्यापक कार्य है । अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों की रिपोर्टों में सामाजिक सुरक्षा के 'मुद्दे को बार-बार सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती रही है । इस विश्व संस्था ने सामाजिक सुरक्षा की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार दुनिया के दो अरब से अधिक श्रमिकों में से सिर्फ 80 करोड़ अर्थात् 40 प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा के दायरे में आते हैं । शेष 60 प्रतिशत को इस प्रकार की सुरक्षा उपलब्ध नहीं है । इनमें से 77 प्रतिशत भारत तथा अन्य विकासशील देशों में है ।

इस संदर्भ में संविधान के चौथे अध्याय में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत अनुच्छेद 41 का उल्लेख करना उचित होगा । जिसमें कहा गया है कि ' राज्य अपनी आर्थिक तथा विकास की सीमाओं के तहत लोगों को काम करने एवं शिक्षा दिलाने का अधिकार प्रदान और साथ ही बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता एवं इसी तरह की किसी लाचारी की हालत में सार्वजनिक सहायता की व्यवस्था करेगा । यहां यह भी उल्लेखनीय है कि संविधान निर्वाह योग्य पर्याप्त मजदूरी प्राप्त करने, खाली समय का भरपूर आनंद लेने और सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में खुलकर भाग लेने (अनुच्छेद 43) के मामलों में कृषि, उद्योग या किसी अन्य क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों में कोई भेद नहीं करता । भारत में सामाजिक सुरक्षा का पहला कानून 1923 का श्रमिक मुआवजा अधिनियम है जो स्वतंत्रता के कई वर्षों पूर्व बना था । इसमें सेवा काल के समय दुर्घटना होने या मृत्यु होने पर मजदूर या उसके परिवार को मुआवजा देने की व्यवस्था है । स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक बीमा, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक सहायता के अनेक कानून बने हैं । 1948 का कारखाना अधिनियम, 1951 का बागान मजदूर अधिनियम, 1961 का मातृत्व लाभ अधिनियम, 1952 का कर्मचारी भविष्य निधि और उपबंध अधिनियम, 1972 का ग्रेच्युटी अधिनियम, 1979 का अंतर्राष्ट्रीय कामगार कानून जैसे कई महत्वपूर्ण कानून सामाजिक सुरक्षा की आधुनिक अवधारणा को ध्यान में रखकर बनाए गए । इन कानूनों के अतिरिक्त विभिन्न वर्गों के संगठित श्रमिकों के कल्याण के लिए भी अनेक कार्यक्रम, कोष और परिषदें गठित की गई हैं ।

भारत में सामाजिक सुरक्षा की विभिन्न योजनाओं में कई विशेषताओं के बावजूद निम्नलिखित कुछ कमियां भी हैं-

1. सामाजिक, सुरक्षा संबंधी, श्रम, विभाजन काफी असंतोषजनक, है, क्योंकि, इन उपायों, में, श्रमिकों तथा, असंगठित क्षेत्र के रोजगार प्राप्त व्यक्तियों के लिए कोई प्रावधान नहीं है ।
2. सामाजिक सुरक्षा उपायों के बारे में श्रमिकों एवं कर्मचारियों को पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है । इसकी जानकारी समय-समय पर श्रमिकों की शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड द्वारा श्रम शिक्षक प्रशिक्षण के माध्यम से दी जाना चाहिए । कर्मचारी राज्य बीमा का उद्योग वार तथा क्षेत्रवार विस्तार किया जाना चाहिए । विभिन्न अधिनियमों के प्रभावी क्रियान्वयन पर भी समय सीमा निर्धारित की जाना चाहिए । जिससे श्रमिकों को समय पर लाभ प्राप्त हो सके।
3. वृद्धावस्था पेंशन योजना विभिन्न राज्यों में अलग- अलग तरह की है । भ्रष्टाचार, पक्षपात एवं विलंब संबंधी शिकायतें इस योजना में विद्यमान हैं । निर्धनता की रेखा के नीचे के केवल 20 प्रतिशत वृद्धों को ही यह लाभ मिल रहा है । इस योजना में समरूपता तथा विस्तार की आवश्यकता है । पेंशन की मासिक राशि भी वर्तमान कीमतों पर कम है ।
4. ऐच्छिक बीमा राशि भी बहुत कम है । इसके अंतर्गत प्रौढ़ जनसंख्या का केवल 8 प्रतिशत भाग हे । आता है । खेतिहर श्रमिकों के दुर्घटना बीमा तथा समूह बीमा की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है ।

एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपायों पर किया जाने वाला खर्च सकल राष्ट्रीय उत्पाद का केवल 20 प्रतिशत है और इसमें भी संगठित क्षेत्र के श्रमिक अधिक लाभान्वित होते हैं, जो कुल शक्ति का दसवां भाग है । अतएव इस दिशा में सकारात्मक रुख अपनाते हुए और कार्य किए जाने की आवश्यकता है ।

9.6 इकाई सारांश:

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात से कल्याणकारी सरकार की अवधारणा को स्वीकार किया गया है । समाज के कमजोर, गरीब एवं बेसहारा लोग जिनको न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित रहना पड़ता है, सरकार ऐसे सभी वर्गों की उन सभी आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति हेतु वचनबद्ध है । यदि अब तक प्रयासों का विश्लेषण करें तो इसे किसी भी स्थिति में कमजोर प्रयास नहीं कहा जा सकता । तथापि यदि लक्ष्यों संदर्भ में देखा जाए तो स्वतंत्रता के 50 वर्षों के पश्चात भी गंभीर प्रयासों की आवश्यकता होती है ।

देश में स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु एक विशाल स्वास्थ्य तंत्र खड़ा किया गया है । साथ में सन् 2000 तक सभी को स्वास्थ्य जैसे लक्ष्य भी रखे गए हैं । परन्तु अभी भी अधिक विक्रेन्द्रीयकृत व्यवस्था के माध्यम से यह स्वास्थ्य सुविधाएं एवं सेवाएं अंतिम व्यक्ति तक पहुंचाने हेतु अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता है ।

शिक्षा संपूर्ण समाज की विकास गति का द्योतक, है. । विशाल धनराशि के व्यय के, पश्चात भी आंकड़े अत्यधिक उत्साहवर्धक नहीं हैं । समाज के सभी कमजोर एवं पिछड़े वर्गों की शिक्षा का प्रतिशत उल्लेखनीय रूप से कम है । शिक्षा व्यवस्था को लोकतांत्रिक विक्रेन्द्रीयकरण

के तहत गठित स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के नियंत्रण एवं निरीक्षण में लाने से ग्रामीण संदर्भो में अच्छे आगत की संभावना बड़ी है।

सामाजिक सुरक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों हेतु आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होती है । भारत में कई अधिनियमों एवं कानूनी प्रावधानों के माध्यम से इस दिशा में प्रयास हुए हैं । तमाम कानूनी प्रावधानों के बावजूद समाज का एक बड़ा वास्तविक जरूरतमंद वर्ग ऐसी कई योजनाओं से अनभिज्ञ है जो सामाजिक सुरक्षा प्रदान कर सकती है ।

अंततः भारत ने पिछले वर्षों से सामाजिक-आर्थिक समानता हेतु कई कल्याणकारी नीतियां बनाई एवं इस दिशा में कई महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है । इन सभी प्रयासों के बावजूद भारत में कल्याणकारी नीतियों के क्रियान्वयन के पक्ष में विद्यमान कमियों के उचित निराकरण पर देश ज्यादा जल्दी उपेक्षित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा ।

9.7 अभ्यास कार्य

1. भारत में कल्याणकारी नीतियों की विवेचना कीजिए भारत में इस दिशा में किए गए उल्लेखनीय प्रयासों का विश्लेषण कीजिए?
2. कल्याणकारी नीतियों की व्याख्या भारत में स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा के लिए विशेष संदर्भो में कीजिए?

9.8 संदर्भ ग्रंथ:

1. अब्दुल अजीज डेवलपमेंट प्रोग्राम्स फार वीकर सेक्शन्स, प्रिंटवेल पस्ति पब्लिशर्स, जयपुर, 1989.
2. बिंदेश्वरी पाठक, (सं), सोशल जस्टिस एण्ड डेवलपमेंट ऑफ वीकर सेक्शन्स, इंटर - इंडिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1997
3. बी. जी. फर्नान्डीज, प्लानिंग इन इंडिया, अनमोल पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 1996
4. जगन सरकार, सोशल प्राब्लम एण्ड वेलफेयर इन इंडिया, आशीष पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1992
5. पी. आर. शुक्ला (सं) डेवलपमेंट डिटरमिनेट्स एण्ड अल्टरनेटिव्स, अकाशदीप पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1992
6. आर. सी. दत्त (सं), प्राब्लम्स कार इंडियाज डेवलपमेंट, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1994
7. आर. एस. त्रिपाठी, (सं) सोशल एण्ड इकोनामिक डेवलपमेंट इन इंडिया, आशीष पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, 1996
8. टी. आर. नगप्पा टूवर्डस टोटल लिट्रेसी, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई 'दिल्ली, 1997

इकाई - 10

ऊर्जा संरक्षण एवं परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का पुनर्सजन (कोयला, बिजली एवं तेल)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 वर्तमान युग में ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता एवं मांग

10.2.1 कोयला, 10.2.2 बिजली, 10.2.3 तेल एवं प्राकृतिक गैस ।

10.3 मुद्दे एवं विषय

10.4 समस्याएं एवं समाधान

10.5 समाधान: नए विकल्प एवं अक्षय ऊर्जा स्रोतों का विकास

10.6 ग्रामीण ऊर्जा कार्यक्रम

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.10 बोध प्रश्न

10.0 उद्देश्य

- o वर्तमान युग में भारत जैसे विकासशील देश में ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता एवं मांग ।
- o प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत की विश्व के अन्य विकसित देशों से भारत की तुलना ।
- o वर्तमान आपूर्ति किस प्रकार पूरी होती है तथा भविष्य में मांग की पूर्ति किस प्रकार होगी ।
- o ऊर्जा उत्पादन की दृष्टि से भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याएं एवं समाधान का विश्लेषण।

10.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण के युग में यदि भारत को विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा होना है और सतत् आर्थिक विकास की ओर उन्मुख होना हैं तो ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी ही होगी। विकास प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए ऊर्जा अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है । अत: आर्थिक विकास की गति में तेजी लाने के लिए एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी इसका काफी महत्व है ।

10.2 वर्तमान युग में ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता एवं मांग

भारत में तात्कालिक ऊर्जा मांग के 2/3 भाग की पूर्ति छह व्यापारिक स्रोतों- कोयला, लिग्नाइट, तेल, प्राकृतिक गैस, हाईडल और परमाणु से होती है 1/3 भाग की पूर्ति गैर सरकारी व्यापारिक स्रोतों से होती है जैसे- जलावन लकड़ी, कृषि अवशेष एवं पशु विष्टा । हाल के कुछ

वर्षों में कुछ अन्य गैर परम्परागत स्रोतों (सौर, वायु, बायोमास, भूतापीय) से ऊर्जा प्राप्ति के प्रयास भारत में आरम्भ हो चुके हैं । लेकिन इनका योगदान बहुत कम है। ऊर्जा परिदृश्य में प्रमुख भूमिका निभाने वाले तत्व हैं- तेल, प्राकृतिक गैस, कोयला । हाइडल व परमाणु बिजली का भी कुछ योगदान है। ऊर्जा स्त्रोतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों एवं गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत । परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों में कोयला, पेट्रोलियम और जल विद्युत प्रमुख स्त्रोत हैं ।

10.2.1 कोयला

कोयला परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का प्रमुख साधन है । जो वर्तमान में 78.6 प्रतिशत जरूरत पूरी करता है । भारतीय संविधान के अनुसार कोयला खानों तथा खनिज विकास को संचालित करने का समस्त भार केन्द्र तथा राज्य सरकारों पर है । कोयला संसाधन के समस्त विकास का भार केन्द्र सरकार पर है, क्योंकि यह प्रथम परिशिष्ट में सूचीबद्ध है । भारतीय कोयला'संसाधन विश्व के आठ प्रतिशत भण्डार हैं । विश्व का चौथा प्रमुख देश है भारत कोयला उत्पादन, की दृष्टि से । प्रमुख तीन हैं- अमरीका, चीन व आस्ट्रेलिया । 2000-2001 में कोयले का कुल उत्पादन 309 मिलियन टन था । भारत में कोयले के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं- आंध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व उड़ीसा जो कुल उत्पादन का 87 प्रतिशत भाग उत्पादित करते हैं । (I999-2000) (सीसीओ-2000)

ऊर्जा उत्पादन आंकड़े

Million tones of oil equivalent

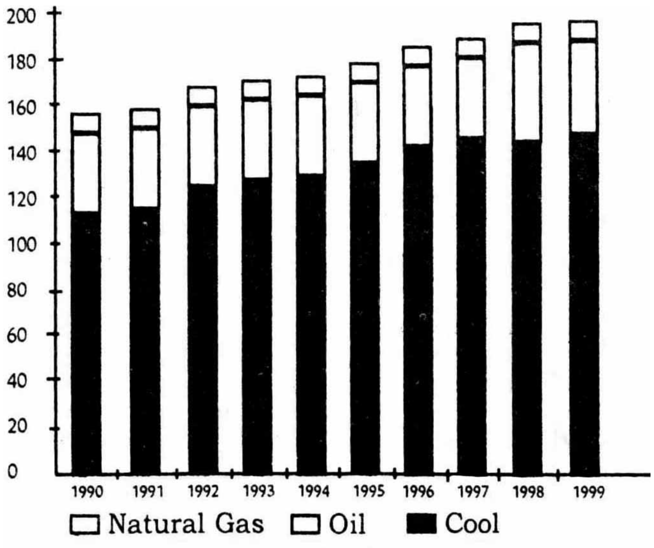

Figure 1 Energy Production trends
sources CCO (2000) (and earlier issues), MOPING (2000)

कोयला 70 प्रतिशत से अधिक ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति करता है । भारत के पास कोयले के विशाल भण्डारण होने के बावजूद भी भारत को कोयले का आयात करना पड़ता है,। आयात की मात्रा 1991-1992 में 6 मिलियन टन से 1999-2000 से बढकर 20 मिलियन टन हो गया ।

(16 प्रतिशत वृद्धि प्रति वर्ष) । आयात में वृद्धि के आकड़ों को देखते हुए भारत को अपनी कोयला खानों की उत्पादकता तथा कोयले की गुणवत्ता में सुधार करने की आवश्यकता है:-

ऊर्जा खपत के आंकड़े,(प्रतिशत में) 1999-2000

विभाग	**कोयला**	**प्राकृतिक गैस**	**पेट्रोलियम पदार्थ**	**ऊर्जा**	**कुल**
कृषि	0	1.3	9.5	89.2	100
उद्योग	73.1	2.4	13.6	10.9	100
यातायात	0	0	98.5	1.5	100
घरेलू	0	1.1	71.3	27.6	100
अन्य	0	33.9	60.9	5.2	100

सबसे अधिक 50 प्रतिशत ऊर्जा खपत उद्योगों में होती है । कोयला एवं लिग्नाइट औद्योगिक ऊर्जा खपत की आधी जरूरत को पूरी -करता है । यातायात दूसरी सबसे अधिक खपत करने वाला विभाग है । (22 प्रतिशत)

कोयला आपूर्ति की वर्तमान स्थिति

भारत में कुल उद्योग का 98 प्रतिशत भाग गोंडवाना कोयला क्षेत्र से प्राप्त होता है । भारतीय योजना के अनुसार भारत अब चीन और अमरीका के बाद विश्व का तीसरा बड़ा कोयला उत्पादक राष्ट्र बन गया है । आज भारत के कोयला उद्योग में 2000 करोड़ रुपए की पूंजी विनियोजित है । 17 लाख लोगों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रोजगार मिला हुआ है । भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण के अनुसार देश में कोयले का कुल भण्डार 21159.36 करोड़ टन है जो 12 सौ मीटर की गहराई तक 0.5 मीटर या इससे अधिक मोटी परत के रूप में विद्यमान है ।

दसवीं योजनावधि

इस योजना के अंतर्गत कुल 473 मिलियन टन कोयला उत्पादन की संभावना है ।

कोयले का उपभोग-

कोयले के उपभोग का सबसे बड़ा क्षेत्र ऊर्जा का है । जिसमे कुल उत्पादन के 70 प्रतिशत कोयले की आपूर्ति की जाती है । दसवीं योजना के अंतिम वर्ष 2006-2007 में क्रमश: 2 करोड़ 91 लाख टन तथा 4 करोड़ 47 लाख टन कोयले की आपूर्ति ऊर्जा क्षेत्र को किए जाने की संभावना है ।

वर्तमान खनन पद्धतियों, सुरक्षा नियमों और पर्यावरणीय उत्तरदायित्वों का पालन करते रहने पर इनमें से सामान्यत: 50 प्रतिशत कोयला भण्डार की खनन योग्य हो सकते हैं । कोयला भण्डार एवं उसके उत्पादन का अनुपात 4:1 है । भारत में वर्तमान कोयला उत्पादन 300 मिलियन टन प्रति वर्ष है । कोयला खानों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात प्राप्त कोयला उत्पादन वर्ष 2011 तक भारत में 1000 मिलियन टन कोयले का वार्षिक उत्पादन संभव है । समस्याओं के रहते (तकनीकी जानकारी, पर्यावरण, प्रदूषण आदि) यदि हम दृढ़ता से कोयला उत्पादन बढ़ाने का प्रयास करें तो वर्ष 2010 तक कोयले का वार्षिक उत्पादन 5000 मिलियन टन तक बढ़ाना संभव है ।

तालिका-2

मांग उपलब्धता-अपूर्णता (मिलियन टन)

विवरण	2001 -02	2006-7	2011-12
मांग	406.70	653.00	835.00
उपलब्धता	346.60	418.00	572.00
अपूर्णता	60.10	235.00	263.00

मांग आपूर्ति के लिए भारत में अगले 15 वर्षों के भीतर कोयले का वार्षिक उत्पादन बढ़ाकर 500 मिलियन टन से अधिक करना होगा ।

हालांकि भारत की वर्तमान ऊर्जा मांग को पूरा करने का सस्ता स्रोत है लेकिन इससे प्रदूषण फैलता है, इसलिए उपयोग कम करने के लिए दबाव बढ़ता जा रहा है । इसलिए हमें अन्य स्त्रोत का सहारा लेना पड़ेगा ।

10.2.2 बिजली

बिजली दो प्रकार से उत्पन्न की जाती है-

1. जल विद्‌युत जो पानी से उत्पन्न की जाती है, और
2. ताप या थर्मल जो कोयला, पेट्रोल, गैस व परमाणु शक्ति से उत्पन्न की जाती है ।

आबादी का सबसे सम्पन्न 20 प्रतिशत लोग कुछ ऊर्जा का 55 प्रतिशत इस्तेमाल करते हैं जबकि सबसे गरीब लोग केवल 5 प्रतिशत । विश्व बैंक की विकास रिपोर्ट के अनुसार 1994 में भारत की ऊर्जा खपत तेल की मात्रा में 248 किग्रा. प्रति व्यक्ति थी । भारत की प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद 340 डॉलर है । इस तरह प्रति व्यक्ति बिजली खपत और प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गहरा संबंध में ।

हमारे देश में बिजली उत्पादन की स्थापित क्षमता करीब 86000 मेगावाट है जो कि स्वाधीनता के समय की तुलना में 50 गुणा अधिक है । हमारी प्रति व्यक्ति 400 किलोवाट वार्षिक की खपत है जबकि विश्व की 2400 किलोवाट है ।

भारत में प्रति व्यक्ति खपत केवल 350 यूनिट है जबकि अमरीका में 11296, मलेशिया में 2078 व चीन में 687 है । आजादी के 57 वर्ष बाद भी हम प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत में सबसे नीचे है ।

यदि बिजली की खपत को विश्व की वार्षिक औसत (2400 किलोवाट) की तुलना में 1500 किलोवाट प्रति वर्ष, प्रति व्यक्ति पहुंचाना है तो भारत को 450 हजार मेगावाट उत्पादन क्षमता जुटानी होगी ।

भारतीय बिजली क्षेत्र के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती मांग पूर्ति के बीच अंतर को कम करने की है। नवीं योजना के दौरान हमें 55,000 मेगावाट की अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता होगी । लेकिन व्यवहारिक तौर पर केवल 40,000 मेगावाट अतिरिक्त बिजली पैदा की जा सकेगी । इस उत्पादन क्षमता तथा इससे संबद्ध सम्प्रेषण और वितरण नेटवर्क तैयार करने के लिए भी 200,000 करोड़ रुपए की विशाल वित्तीय संसाधनों की जरूरत होगी ।

ताप बिजली और पन बिजली का अनुपात असमान है और पन बिजली कुल स्थापित क्षमता का केवल 24 प्रतिशत है भारत के पास विशाल पन बिजली क्षमता है (130 गीगावाट) । इसलिए पन बिजली उत्पादन पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए । भारत को व्यापक पैमाने पर बड़ी पन बिजली परियोजनाएं व छोटी पन विद्युत परियोजनाओं पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए । पन बिजली संयंत्र (छोटा, बड़ा व मध्यम) एक व्यावहारिक विकल्प है क्योंकि यह प्रदूषण मुक्त है, ज्यादा से ज्यादा उत्पादन क्षमता रखता है तथा भारत में इसकी अपार संभावनाएं हैं ।

पन बिजली इकाइयाँ

1975 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान परिषद के अनुसंधानकर्ताओं ने 3500 मीटर की ऊंचाई पर (Valley of flowers) में परिष्कृत चक्की व मोटर पार्ट्स के उपयोग से एक किलोवाट क्षमता की एक पन बिजली इकाई स्थापित की । गैर सरकारी संगठनों से मिलकर पन चक्की सह बिजली इकाइयां स्थापित की जा सकती हैं । डीजल संचालित चक्कियां घरों के नजदीक ही स्थापित की जा सकती हैं व सरकार इनके लिए सब्सिडी भी देती है । स्थानीय लोगों के लिए अत्यन्त लाभदायक व 4 - 5 घंटे रोशनी उपलब्ध कराने में सक्षम है ।

पन चक्कियां

5 किलोवाट तक विद्युत उत्पादन की सहायता हेतु एक योजना आरम्भ की । देश में 2, 50,000 पन -चक्कियां हैं और उत्तरांचल में 70,000 है । प्रति सैकण्ड 20 से 200 लीटर पानी इस्तेमाल करती है पर इनको जनता का सहयोग नहीं मिला जिसके निम्न कारण हैं: -

1. आवास स्थलों से दूर होने के कारण बिजली को दूसरी जगह ले जाने के लिए लंबे तार बिछाने पड़ते हैं ।
2. पूरे वर्ष उत्पादन बहुत कम करती हैं । क्षमता भी सिर्फ 5 किलोवाट है ।
3. एक पन चक्की यदि शीघ्रता से कार्य करेगी तो दूसरी पनचक्कियां काम न मिलने के कारण घाटे में जाने लगेगी ।
4. बाढ़ नियंत्रण, गाद निकासी, स्वचालित नियंत्रण कक्ष व विद्युत प्रसारण के लिए आवश्यक ढांचे का निर्माण अत्यन्त महंगा है । विकल्प यह हो सकता है कि गांव में छोटी इकाइयां स्थापित करने के बजाय हाईड्रोलिक हेड व सभी पन चक्कियों का इस्तेमाल करते हुए एक बड़ी इकाई स्थापित की जाए परन्तु इसके लिए पन चक्की मालिकों और ग्रामीण समुदाय में एकता स्थापित हो ।

सूक्ष्म पन बिजली पर्यावरण संगत भी है व पुनर्स्थापना की समस्याएं भी नहीं हैं । सघन आबादी वाले गांव में इसकी प्रति किलोवाट लागत 50 से 70 हजार होगी । सामुदायिक भागीदारी व स्थानीय जरूरतों को पूर्ण करने हेतु दृढ़ इच्छा शक्ति हो तो पन बिजली घर अत्यन्त सफल होंगे ।

हिमालय क्षेत्र में व अन्य पर्वतीय इलाकों में 50 किलोवाट से निम्न क्षमता वाली सक्षम पन बिजली इकाइयों की स्थापना की पर्याप्त गुंजाइश है । इनका रख रखाव भी आसान है ।

बिजली उत्पादन का सीधा प्रभाव आर्थिक प्रगति पर पड़ता है । स्वतंत्रता के बाद बिजली उत्पादन में 50 गुणा वृद्धि हुई है । परन्तु यह सामयिक स्तर पर आर्थिक विकास क्षमता के अनुरूप पर्याप्त नहीं है ।

भावी ऊर्जा मांग निर्धारण के लिए जनसंख्या में संभावित वृद्धि के अनुरूप कृषि उत्पादन, बिजली की खपत, यातायात साधनों का विस्तार, औद्योगिक प्रगति आदि का मूल्यांकन कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे लक्ष्य क्या होने चाहिए ।

भारत में बिजली की मांग 9 से 10 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है ।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1977-2002) के अंतर्गत अतिरिक्त बिजली क्षमता का लक्ष्य 52,000 मेगावाट है । जिसके लिए 241,000 करोड़ रुपयों का पूंजी निवेश होगा । सरकार द्वारा इस स्तर पर पूंजी निवेश संभव नहीं है । अत: निजी पूंजी निवेशकों एवं बिजली विकासकों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से इस उद्योग के द्वारा सितम्बर 1991 में सरकार ने खोल दिए थे ।

हाइडल

व्यापारिक स्तर पर भारतीय नदी तंत्रों से 60 प्रतिशत लोड फेक्टर के आ पर 8404 मेगावाट हाइडल बिजली उत्पादन संभव है । वर्ष 1966-97 तक 20,846 मेगावाट क्षमता का विकास भारत में किया गया अक्षय स्रोत होने के कारण इनके संचालन के कच्चे माल (कोयला, गैस, डीजल आदि) की ढुलाई भी नहीं करनी होती है और बिजली उत्पादन खर्च भी कम आता है ।

भारत में पिछले कुछ वर्षों से 15 मेगावाट, 3 मेगावाट और 100 किलोवाट क्षमता के हाइडल संयंत्र निर्मित किए जा रहे हैं ।

परमाणु बिजली

परमाणु ऊर्जा के लिए यूरेनियम और थोरियम दो मूल स्त्रोत हैं । 1993 के अनुसार भारत में यूरेनियम के 66,360 मेट्रिक टन भण्डार थे । 'वर्किंग ग्रुप ऑन एनर्जी पॉलिसी ने अपनी 1979 की रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया था कि तत्कालीन यूरेनियम भण्डारों से 8000 मेगावाट बिजली का उत्पादन किया जा सकता है ।

(Fast breeder Technology) अपनाने पर स्वदेशी यूरेनियम भण्डारों से 30,000 मेगावाट न्यूक्लियर बिजली उत्पादन करना संभव है ।

विकसित देशों के मुकाबले भारत की न्यूक्लियर भागीदारी कम है (2.6 प्रतिशत) ।जबकि हमारे पास न्यूक्लियर भण्डार की कमी नहीं है। इस बिजली उत्पादन का मूल्य अन्य स्त्रोतों की कम है।

भारत में उपलब्ध स्वदेशी ऊर्जा स्त्रोतों के उपरोक्त आकलन से यह निकलता है कि भारत को ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए न्यूक्लियर बिजली पर ही भरोसा करना होगा क्योंकि इसकी क्षमता स्पष्ट दिख रही है ।

बिजली उत्पादन में कोयले की अहम भूमिका

वर्तमान में 60 प्रतिशत बिजली का उत्पादन कोयला पर आधारित है । संसद में विचाराधीन कोयला खान संशोधन विधेयक 2001 में कोयला खनन क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए मौजूदा प्रतिबंध खत्म करने का प्रावधान है ।

10.2.3 तेल व प्राकृतिक गैस:

ऊर्जा परिदृश्य में दूसरी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला तत्व है तेल व प्राकृतिक गैस :

तालिका

क्षेत्र	भण्डार(1989-90)	प्रीत प्राप्ति (1996-97)
कैम्बे	10:1	25:1
अपर असम	13:1	32:1
मुंबई हाई	15:1	22:1

केम्पबेल और लहरी के अनुसार 2005 - 10 के बीच परम्परागत तेल ऊर्जा के उपयोग में तीव्र वृद्धि होगी । तत्पश्चात उत्पादन घटने लगेगा, जिससे कीमतें आसमान छूने लगेगी । यह वृद्धि इतनी अधिक होगी कि 1973 - 79 के तेल संकट का मूल्य 30 डालर प्रति बेरल भी सस्ता लगेगा । अभी से तेल विशेषज्ञों के प्रक्षेपणों से सीख लेकर विश्व की बड़ी तेल कम्पनियों में विलीन प्रक्रिया आरम्भ हो गई हैं । इसका मुख्य उद्देश्य तेल के संभावित बढ़ते मूलरों का अधिक से अधिक लाभ उठाना है ।

भारतीय विकल्प

भारत एक तेल आयातक देश है । 1970 - 71 में भारत ने 131. 90 करोड़ का तेल आयात किया जो 1996 - 97 (दिसम्बर) में 23, 318 करोड़ हो गया व आर्थिक विकास के साथ निरन्तर बढ़ रहा है । वर्ष 1994 के अनुमान के अनुसार भारत में स्थापित निकासी योग्य तेल भण्डार 794.6 मिलियन टन थे जो 30 मिलियन टन प्रति वर्ष उत्पादन (वर्तमान में 23 मिलियन टन) के हिसाब से 24 वर्षों में समाप्त हो जावेंगे । इस प्रकार हमारे देश के प्राकृतिक गैस भण्डार भी (वर्ष 1995 में 659. 7 मिलियन क्यूबिक मीटर) 34 वर्षों में समाप्त हो जाएंगे । यदि गैस के भण्डार पर ध्यान नहीं दिया गया और उत्पादन का वर्तमान तरीका जारी रहा तो भारत के गैस भण्डार 25 वर्षों में समाप्त हो जाएंगे ।

10.3 मुद्दे एवं विषय (issues & concerns)

यद्यपि जी.डी.पी की घटती हुई तीव्रता ऊर्जा क्षेत्र में एक सुखद परिणाम है । तथापि कुछ ऐसे विचारणीय मुद्दे हैं जिन पर हमें ध्यान देना चाहिए । उदाहरण के लिए ऊर्जा संरक्षण, पर्यावरणीय मुद्दे एवं ऊर्जा से 'संबन्धित प्रभावों'का मनुष्य की सेहत से संबंध ।

ऊर्जा संरक्षण

तेल एवं कोयला का आयात 1990 -91 के अंतराल में क्रमश: 7 प्रतिशत एवं 16 प्रतिशत था । भविष्य में आयात की मात्रा में और वृद्धि होने की संभावना है । आंकड़े बताते हैं कि तेल आयात भविष्य में 75 प्रतिशत ऊर्जा खपत की पूर्ति करेगा तथा कोयला उद्योग 22 प्रतिशत

कोयला खपत की पूर्ति करेगा (TERI 2000) ।. वर्तमान में. भारत प्राकृतिक गैस का तनिक भी आयात नहीं करता है, क्योंकि मांग और खपत एक दूसरे को पूरा करते हैं । परन्तु भविष्य में प्राकृतिक गैस तथा LNG (तरल प्राकृतिक गैस) की मांग के बढ़ने की संभावना है । आयात की दिशा में वृद्धि इस बात को दर्शाता है कि बाहरी मूल्यों की भेद्यता तथा मांग असंतुलन देश के ऊर्जा संरक्षण को हानि पहुंचाते हैं ।

तेल के आयात पर निर्भरता का अभिप्राय है मध्य पूर्वी एशिया पर आयात की । यह क्षेत्र अशांति एवं युद्ध का अखाड़ा है । ऊर्जा सप्लाई की निरन्तरता संदिग्ध लगती है । हमें तेल के क्षेत्र में दूसरों के ऊपर निर्भरता को रोकना होगा । यह हम तभी कर सकते हैं जब उपयुक्त राजस्व नीति अपनाएं, मांग कम करें, तेल के वैकल्पिक स्रोतों को ढूंढें जैसे प्राकृतिक गैस व नवीनीकरण योग्य ऊर्जा ।

नई तकनीकों जैसे यातायात (कार, ट्रक आदि) के साधनों में "ऊर्जा सेल" का इस्तेमाल, कोयले का गेसिफिकेशन व आयात की हुई प्राकृतिक गैस का वैकल्पिक स्त्रोत। नई तकनीकों के इस्तेमाल से जैसे (IGCC - integrated gasification combined cycle technology) तथा PFBC(pressurized Fluidized combustion) भी कोयले की खपत की गुणवत्ता बढ़ाने में योगदान देगा । इसकी वजह से कोयले के आयात में भी कमी आएगी ।

पर्यावरणीय मुद्दे

ऊर्जा का उत्पादन एवं खपत पर्यावरण के संतुलन को प्रभावित करता है । कोयले के दोहन एवं खनन से जमीन का बहुत नाश होता है । क्योंकि खानों में आग फैल जाती है । खनन का सारा कार्य वन क्षेत्र में होता है, क्योंकि अधिकतर कोयले की खाने वन क्षेत्र में ही पाई जाते है । प्राकृतिक गैस की खोज से भी पर्यावरण भौतिक, रासायनिक तथा जैविक स्वरूप को आघात पहुंचायेगा प्राकृतिक तेल तथा गैस के दोहन में प्रमुख समस्याएं कचरे के रूप में तरल पदार्थों का निकास ठोस कचरा पदार्थों का निकास, गंदे पानी एवं ज्वलनशील गैसों के निकास के लिए जो जल को प्रदूषित करते हैं । (TERI 2000) एक और प्रमुख समस्या है "फ्लाईएश" का निकास । भारत में प्रति वर्ष 80 - 100 मिलियन टन "फ़्लाईएश" का उत्पादन होता है । जिसमें से 90 प्रतिशत "फ्लाइएश" स्तरी के रूप में "ऐशपौडस" में डाल दी जाती है जिसमें काफी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है । बंजर भूमि का विकास होता है तथा घुलनशील साल्ट्स व भारी खनिजों की भी 'लीचिंग' होती है । भारत में फ्लाईएश की खपत केवल दस प्रतिशत है । अत: पर्यावरण और अन्य मुद्दों को ध्यान में रखते हुए गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों को विकसित करने जा प्रयास करना चाहिए ।

10.4 समस्याएं एवं समाधान

ऊर्जा के वर्तमान साधन सीमित है। विश्व में 4 करोड़ 86 लाख 65 हजार टन कोयला तथा 23 लाख टन गैस भण्डार हैं । गैस भण्डार 41 हजार मेगाटन है । परन्तु 4 - 6 दशकों से ज्यादा यह हमारा साधन देने वाले नहीं हैं ।

भविष्य की समस्या

वर्ष 1994 के अनुमान के अनुसार भारत में स्थापित निकासी योग्य तेल भण्डार 764.6 मिलियन टन थे जो 30 मिलियन टन प्रति वर्ष उत्पादन (वर्तमान में 23 मिलियन टन) के हिसाब से 24 वर्षों में समाप्त हे जाएंगे । इसी प्रकार भारत के प्राकृतिक गैस भण्डार भी (वर्ष 1995 में 659.7 बिलियन क्यूबिक मीटर) 34 वर्षों में समाप्त हो जाएंगे । यदि गैस के भण्डार एवं उसकी वितरण व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया गया और उत्पादन का वर्तमान तरीका जारी रहा तो भारत के गैस भण्डार 25 वर्षों में समाप्त हो जाएंगे । वर्तमान साधन अत्यन्त खर्चीले हैं, पर्यावरण को बिगाड़ने वाले हैं और दूर-दराज के क्षेत्रों में उपलब्ध भी नहीं हैं । अत: घरेलू ईंधन हेतु गैर पारम्परिक साधनों का उपयोग ही एक विकल्प रह जाता है जो तेल, गैस तथा कोयला का विकल्प सिद्व हो सकता है ।

10.5 समाधान: नए विकल्प एवं अक्षय ऊर्जा स्रोतों का विकास

नए वैकल्पिक साधन ऐसे होने चाहिए जिनमें निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हो-

1. यह साधन अनन्त हों, कोयले तथा पेट्रोल की तरह न हो ।
2. रख-रखाव का खर्चा कम हो ।
3. विदेशी मुद्रा की बचत हो ।
4. राष्ट्रीय अर्थतंत्र को मजबूती दे सके ।

ऐसे स्रोतों में हम सूर्य- ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बायोगैस, भूतापीय ऊर्जा, ज्वालामुखी से प्राप्त ऊर्जा, ज्वार भाटे से प्राप्त ऊर्जा तथा कूड़े-करकट मे प्राप्त ऊर्जा को शामिल कर सकते हैं ।

सौर ऊर्जा

सूर्य ऊर्जा का अनंत भण्डार है । यह ऊर्जा प्रदूषण रहित अपशिष्ट है । पदार्थ रहित व स्वस्थ तथा सभी को समान रूप से उपलब्ध है । भारत में वर्ष भर में 250 से 320 दिनों तक सूर्य की भरपूर धूप हमें प्राप्त होती है । हमारी संपूर्ण ऊर्जा आवश्यकता की 20 हजार गुणा शक्ति सूर्य प्रदान कर सकता है ।

सौर ऊर्जा अन्य साधनों से प्राप्त ऊर्जा की तुलना में 36 गुणा अधिक ऊर्जा देने में सक्षम है । जबकि केवल उसका 10 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी पर आता है । सोलर फोटोवोल्टेइक केन्द्र खोल कर एक से ढाई किलोवाट तक विद्युत उत्पादन किया जा सकता है । सौर ऊर्जा के प्रयोग से प्रति दिन 3.4 लाख टन्न लकड़ी की बचत हो सकती है ।

पवन ऊर्जा

भारत में पवन ऊर्जा की क्षमता 20 हजार मेगावाट है । एक पवन चकी प्रति मिनट 200 किलोवाट बिजली पैदा कर सकती है । गुजरात में लाम्बा स्थान पर एशिया का सबसे बड़ा पावर प्रोजेक्ट तैयार किया गया है । जिससे इवा की 50 टरबाइनें 200 किलोवाट बिजली उत्पादन करती है । इस समय देश में 5 पवन फार्म हैं, जिनकी क्षमता 3.63 मेगावाट है जो 45 लाख ऊर्जा तैयार करते हैं ।

पानी

भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुण्ड और चम्बल घाटी परियोजनाओं ने देश के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है । बांध बनाकर जल प्रवाह रोककर और तेज गति से गिरा कर पानी का उपयोग बिजली उत्पादन के लिए किया गया है ।

बायोगैस

बायोगैस के प्रयोग से प्रति वर्ष 13.3 करोड़ टन लकड़ी की बचत हो सकती है । भारत में 20 करोड़ टन बायो गैस उपलब्ध है । इतनी गैस से 10.5 करोड़ टन फाइरोलाइज्ड ईंधन प्राप्त हो सकता है । जो 27.5 करोड़ बेरल तेल के बराबर है । बायोगैस के प्रयोग से कृषि उत्पादन की वृद्धि होगी । करोड़ों रुपए की विदेशी मुद्रा बचेगी, वन संरक्षण होगा तथा तेल आयात भी कम करना पड़ेगा । महिलाओं को भी बायोगैस के अनेक लाभ हैं । आंखों और फेफड़ों की बीमारियों से मुक्ति, पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति इत्यादि । 1981 - 82 में " नेशनल प्रोजेक्ट फार डलवपमेंट " की स्थापना हुई । सरकार ने 1983 में उन्नत चूल्हों का अभियान चलाकर प्रति वर्ष 700 किग्रा. लकड़ी बचाना शुरू किया । एक उन्नत चूल्हा 30 लाख टन लकड़ी की बचत करता है ।

अन्य स्रोत

पृथ्वी के तल में उच्च तापीय चट्टानों में 30 लाख मेगावाट विद्युत क्षमता वाली ऊर्जा है । कच्छ, केम्बै और हुगली के मुहाने पर आने वाले ज्वार से प्रति घंटा 4,560 किलोवाट बिजली पैदा की जा सकती है ।

इस प्रकार गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग से अनेक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं । शुद्ध जलवायु परमाणु प्रदूषण से मुक्ति (चेरनोबिल त्रासदी आदि), जंगलों के विनाश से मुक्ति, समुद्र में तेल के फैलाव से होने वाली विभिषिकाओ से मुक्ति आदि ।

10.6 ग्रामीण ऊर्जा कार्यक्रम

भारत की 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है । ग्रामीण जनता की कुल खपत में अव्यावसायिक ऊर्जा का 65 प्रतिशत । मानवीय एवं पाशविक ऊर्जा का 15 प्रतिशत तथा व्यावसायिक ऊर्जा का 20 प्रतिशत अंशदान है ।

विद्युत उत्पादन की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्र में वहां की आवश्यकता के अनुसार विद्युत उपलब्ध नहीं हो पाती है लेकिन ऊर्जा के अन्य स्रोत (अपरम्परागत) है जिनसे ग्रामीणों की समस्त आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं । बायोगैस कार्यक्रम, पशु ऊर्जा कार्यक्रम, ऊर्जा ग्राम तथा विशेष क्षेत्र प्रदर्शन कार्यक्रम आदि देश की ग्रामीण ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चलाए जा रहे हैं । ग्रामीण क्षेत्र में मुख्यत: दो कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं- '

बायोगैस संयंत्र की स्थापना तथा उन्नत चूल्हा कार्यक्रम । इसमें अनेक समस्याएँ हैं-

1. जनजागृति का अभाव व लोगों की ज्यादा रुचि का न होना ।
2. वित्त की समस्या ।
3. प्रत्येक गांव में लागू नहीं हुआ ।
4. संयंत्रों की स्थापना की शासकीय प्रक्रिया सरल नहीं ।

देश में बायोगैस संयंत्रों की कुल अनुमानित क्षमता के 22.52 प्रतिशत का उपयोग हो रहा है । यदि प्रत्येक राज्य की क्षमता 50 प्रतिशत उपयोग हो तो देश की ग्रामीण जनसंख्या की ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्र में उन्नत चूल्हे आवश्यकता की तुलना में 23 प्रतिशत ही उपलब्ध हैं । 21 वीं सदी में विद्युत आपूर्ति जब मांग के अनुरूप कम हो जाएगी तब यही गैर परम्परागत ऊर्जा साधन हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाएंगे। ।

ग्रामीण पुनर्गठन और अपारम्परिक ऊर्जा:

अपारम्परिक और अक्षय ऊर्जा स्रोतों के प्रसार की संभावना और उपलब्धियां

प्रौद्योगिकी	संभावना	उपलब्धि
बायोगैस	1.2 सी. आर.	31लाख
पवन	4500 मेगावाट	1267 मेगावाट
लघु पन बिजली	1500 मेगावाट	1341 मेगावाट
बायोमास	19500 मेगावाट	273 मेगावाट
सौर फोटोवाल्टाइक	20 मेगा वर्ग किमी.	47 मेगावाट पी.

एम.एन.ई.एस. 2001 वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली: अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय

उन्नत चूल्हे

ये उन परिवारों के लिए उपयोगी है जिनके पास बायोगैस संयंत्रों के लिए पर्याप्त संसाधन (मवेशी, भूमि या जल) उपलब्ध नहीं होते । ये लकड़ी की खपत तो कम करते ही हैं, रसोई से उठने वाले धुएं को भी रोकते हैं । इन चूल्हों की कार्य क्षमता 20 से 30 प्रतिशत के बीच होती है । जिससे रसोई में 40 प्रतिशत ईंधन बचता है ।

सौर फोटोवाल्टाइक

सौर फोटोवाल्टाइक प्रोद्यौगिकी मोड्यूलर है और इसे कई उपयोगों के लिए अपनाया जा सकता है। सौर लालटेन और घरेलू प्रकाश प्रणालियां देश में काफी लोकप्रिय है । इसके अलावा पानी को पम्प करने में भी इसे उपयोग में लिया जाता है । पीने का पानी व सिंचाई का पानी, दोनों का इस्तेमाल करने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है ।

बायोमास गैसिफिकेशन

उचित कीमत पर आसानी से सुलभ होता है (यथा चावल, मिल, काफी/ मकई प्रसंस्करण इकाइयां, चीनी मिल आदि) या जलाऊ लकड़ी के इस्तेमाल वाले उपयोगों में गैसिफायर प्रणालियों के सुनिश्चित आर्थिक फायदे होते हैं । उत्पादक गैस के प्रयोग से बड़े चूल्हों में जलाऊ लकड़ी की खपत में कम से कम 50 प्रतिशत बचत होती है । दोहरे ईंधन के माध्यम से चलाए जाने वाले जेनरेटरों में इनके प्रयोगों से 80 प्रतिशत तक डीजल बचता है । संस्थागत भोजन पकाना, उच्च तापमान की भट्टी, रेशम लपेटने के लिए कटिजे बेसिन भट्टी सुखाना 40 किग्रा./ घंटे के बॉयलर, 100 प्रति वर्ग इंच वाष्प, गैसिफायर आधारित बिजली संयंत्र आदि जैसे प्रयोग आते हैं।

अन्य प्रौद्योगिकियां

अक्षय ऊर्जा प्रोद्यौगिकियों में माइक्रो जल तथा पवन ऊर्जा की चर्चा की जा सकती है । इनका इस्तेमाल बिजली बनाने और ग्राम विद्युतीकरण के लिए 'अकेले' माध्यम के तौर पर किया जा सकता है ।

लागत तुलना

देश में ऊर्जा के पारम्परिक स्वरूपों पर भारी सब्सिडी है और अक्षय ऊर्जा के साथ इनकी लागत की तुलना करें तो सब्सिडी के कारण यह महंगी पड़ती है । सब्सिडी को अगर छोड़ भी दें, तो भी अक्षय ऊर्जा की लागत मिट्टी तेल और ग्रिड बिजली जैसे पारम्परिक ईंधनों कि कम कीमत से भी काफी अधिक होती है । रसोई गैस, हाई स्पीड डीजल और मिट्टी के तेल 30 प्रतिशत से 60 प्रतिशत के बीच सब्सिडी है, जिसकी वजह से ग्रामीण उपभोक्ता इन्हीं संसाधनों को पसंद करते हैं ।

दूसरी ओर अक्षय ऊर्जा प्रोद्योगिकियों की पूंजीगत लागत अधिक होती है और अधिकांश पर मिलने वाली सब्सिडी 50 प्रतिशत से कम है । अक्षय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देने के लिए यह जरूरी है कि लागत के हिसाब से प्रोद्योगिकी अन्य वाणिज्यिक व परम्परागत ईंधनों की होड़ कर सकें ।

अक्षय ऊर्जा स्रोतों के लागत घटाने और प्रोद्योगिकी सस्ती करके अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या की पहुंच के भीतर लाने की दिशा में काम करने की स्पष्ट जरूरत है । अक्षय प्रोद्योगिकी को बढ़ावा, सब्सिडीकृत वाणिज्यिक ईंधन बाजार को ध्यान में रखते हुए अभिनव तथा उदार व्यवस्था कायम करने पर निर्भर करता हैं । उत्पाद गुणवत्ता, कारगर आपूर्ति (ऋण तथा बिक्री बाद सेवाएं) तथा अक्षय ऊर्जा स्रोत से उच्च गुणवत्ता युक्त ऊर्जा सेवाओं या प्रावधान, समय की जरूरत है । संस्थागत मोर्चे पर यह जरूरी है कि गैर सरकारी और निजी संगठनों की अक्षय ऊर्जा प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने में अहम भूमिका हो ।

10.7 सारांश

वर्तमान समय में ऊर्जा की मांग को परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत (बिजली कोयला एवं तेल) बड़ी कठिनता से पूरा कर पाते हैं । भविष्य में तो इन स्त्रोतों से मांग पूर्ति करना असंभव है । इसलिए गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विकास आवश्यक है । भारत में इनकी अपार संभावनाएं हैं । ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तथा पर्यावरण संतुलन' को बनाए रखने के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत ढूंढना और भी आवश्यक हो गया । ग्रामीण ऊर्जा कार्यक्रम को संबल देने हेतु अक्षय ऊर्जा स्रोतों को विकसित करना ही अब एक मात्र विकल्प रह गया है ।

10.8 शब्दावली

पन बिजली: पानी से उत्पल की जाने वाली बिजली

पन चकियां : पानी की सहायता से चलने वाली चक्कियां

राष्ट्रीयकरण: राष्ट्र की सम्पत्ति

जी. डी. पी.: सकल घरेलू उत्पाद, वर्ष भर में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों को जोड़ा जाता है

ऊर्जा सेल: सेल में ऊर्जा को सुरक्षित रखकर, उसको प्रयोग में लाना

बायोगैस: गोबर, खाद तथा मानव विष्टा से प्राप्त ऊर्जा

संसाधन : सामग्री, कच्चे माल जिसमें उर्वरक आदि आते हैं ।

सब्सिडी: किसी भी वस्तु के मूल्य के एक अंश का भाग सरकार द्वारा वहन करना ।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें:

1. संसाधन भूगोल (कौशिक, गौतम)
2. Planning Commission 2001 (Draft Approach to the 10th five year plan 2002 - 2007)
3. MNES (Ministry of non-conventional Energy Sources, 2001)
4. TERI (Tata Energy Research Institute) 2001

10.10 बोध प्रश्न

1. गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत क्या है और किस प्रकार भविष्य में उत्पल होने वाले ऊर्जा संकट को हल कर सकते हैं?
2. भारत के ग्रामीण ऊर्जा कार्यक्रम पर एक टिप्पणी लिखिए ।
3. देश की वर्तमान ऊर्जा आपूर्ति को बिजली, कोयला और तेल किस प्रकार पूरा करते हैं?

ISBN : 13/978-81-8496-285-7